हिन्दी साहित्य में हास्य रस

(आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० बरसाने लाल चतुर्वेदी एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

नई सड़क, दिल्ली।

प्रकाशक
रामकृष्ण शर्मा
हिन्दी साहित्य ससार,
नई सडक, दिल्ली ।

मूल्य ७॥)
अथवा
"सात रुपये पचास नये पैसे"

मुद्रक
नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चांदनी चौक,
दिल्ली-६

दो शब्द

हँसना जितना सरल है, हास्य का विश्लेषण करना उतना ही कठिन है। हिन्दी साहित्य में हास्य रस प्रारम्भ से ही उपेक्षित रहा है। मैंने इस रस को प्रतिष्ठित पद पर आसीन करने का प्रयास किया है। भारतेन्दु काल से आधुनिक काल तक के हास्य साहित्य की प्रवृत्तियो का विवेचन कर उपलब्धियो को लिपिवद्ध किया है।

भारतेन्दु कालीन हास्य साहित्य जो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ में प्रच्छन्न था, उसे प्रकाश में लाया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी-हास्य का इतिहास एव आलोचना का सगम है।

अन्तिम दो परिशिष्ट मूल प्रबन्ध मे नही थे। प्रथम परिशिष्ट में उर्दू-साहित्य में हास्य की परम्पराओ का दिग्दर्शन कराया गया है तथा द्वितीय परिशिष्ट में पिछले सात वर्ष के हास्य साहित्य का लेखा-जोखा किया गया है। तदुपरान्त भी जो लेखक रह गये हो, उनसे मैं क्षमा-याचना करता हूँ। हास्य काव्य का हास्य के विभिन्न प्रकारो में वर्गीकरण किया गया है इसलिए कुछ हास्य रस के कवियो की पुनरावृत्ति हो जाना स्वाभाविक था।

हिन्दी के हास्य साहित्य पर यह प्रथम शोध-प्रबन्ध है। मेरा विश्वास है कि इस प्रबन्ध पर दृष्टिपात करने से यह भावना मिट जायगी कि हिन्दी वाले हँसना नही जानते। अन्य भाषाओ की भाँति हिन्दी साहित्य में भी उच्च-कोटि के हास्य का अभाव नहीं है।

मुझे इस प्रबन्ध के प्रणयन में डा० सत्येन्द्र, पडित जगन्नाथ तिवारी, डा० भगवत्स्वरूप मिश्र से समय-समय पर सुझाव मिलते रहे है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। बाबू गुलाबराय, राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त एव प० बनारसी दास चतुर्वेदी प्रभृति ने क्रमश भूमिका लिखकर एवं सम्मतियाँ देकर मेरा उत्साह बढाया है, मैं उनका आभारी हूँ।

वृन्दावन के स्वर्गीय प० राधाचरण गोस्वामी के पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य समिति पुस्तकालय भरतपुर, विद्यासागर पुस्तकालय एव सेठ बी० एन० पोद्दार हा० सै० स्कूल लाइब्रेरी मथुरा, नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय, आगरा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं जिनमें मुझे विभिन्न ग्रन्थ एव पत्रिकाओ की फाइलें प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त हुई। इन पुस्तकालयो के अधिकारी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

आकाशवाणी के दिल्ली, प्रयाग एव लखनऊ के अधिकारियो के प्रति भी मै आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने उक्त केन्द्रो पर प्रसारित हास्य रस सम्बन्धी पाण्डुलिपियाँ मेरे अध्ययन के लिए सुलभ कर दी। इस सम्बन्ध में श्री महेन्द्र की सहायता विशेष उल्लेखनीय है।

श्री केदारनाथ चतुर्वेदी, श्री प्रयागनाथ एव रघुनाथ प्रसाद शास्त्री ने भी प्रूफ संशोधन एव अन्य सुझावो द्वारा सहायता की है, इन सब का भी मै आभारी हूँ।

अन्त मे मै श्री रामकृष्ण शर्मा जैसे उत्साही प्रकाशक का कृतज्ञ हूँ जिन्होने इतने कम समय में लगन के साथ इस प्रबन्ध को प्रकाशित किया।

रामजीद्वारा,
मथुरा।
२५-५-५७

बरसानेलाल चतुर्वेदी

पूज्यनीया, ममतामयी, माता जी
स्व० श्री चन्दादेवी चतुर्वेदी
की
पुण्य स्मृति
को
सादर समर्पित

भूमिका

जो मनुष्य अपने जीवन मे कभी नही हँसा उसके लिए रम्भा-शुक सम्वाद की शब्दावली में ही कहना पडेगा—'वृथा गत तस्य नरस्य जीवतम् ।' वह मनुष्य नही वह पुच्छ-विषाणहीन द्विपद पशु है क्योकि हँसना मनुष्य का विशेषाधिकार है । कुछ बन्दर भी हँसते हैं किन्तु सचेतन मनुष्य की हँसी कोरी किलकारी नही होती । वह न तो स्वास्थ्य और यौवन के प्रभाव से उत्पन्न अर्धविकसित कलिका की सी सहज मुस्कराहट होती है और न वह गुलगुलाने की सी कृत्रिम खिलखिलाहट । हास्य रस की हँसी में एक मानसिक आधार होता है जो इसके साररूप आनन्द से व्याप्त होता है ।

और रसो के आधारभूत अनुभव दुखद भी हो सकते है किन्तु हास्य का लौकिक और साहित्यिक अनुभव आनन्दरूप ही होता है । वह रसराज शृङ्गार का सहायक और सखा ही नही वरन् स्वय रसराज कहलाने की क्षमता रखता है । मनोनुकूल अनुभव होने के कारण ही उसको शृङ्गार का सहायक माना गया है । हास्य से शृङ्गार में सम्पन्नता आती है और उसकी श्रीवृद्धि होती है । वह शृङ्गार का भी शृङ्गार है ।

जिस आधार पर रसवादियो के परमगुरु आचार्य विश्वनाथ के वृद्ध पितामह नारायण पादाचार्य ने अद्भुत रस की सब रसो में व्यापकता मानी है वैसा ही आधार लेकर वैसी ही उक्ति के सहारे हम हास्य रस को सब रसो में शीर्ष स्थान दे सकते हैं । आचार्य धर्मदत्त ने अपनी पुस्तक में पडित प्रवर नारायण पादाचार्य को उद्धृत करते हुए बतलाया है कि रस का सार चमत्कार में है और चमत्कार का सार अद्भुत रस में है इसलिए अद्भुत रस की व्याप्ति सब जगह मानना चाहिए ।

"रस सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते ।
तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्राद्भुतो रसः ॥"

इसी प्रकार हम भी कह सकते है कि रस का सार आनन्द में है और हास्य आनन्द से ओत-प्रोत है। इसलिए हास्य सब रसो में शीर्ष स्थान पाने का अधिकारी है। इस उक्ति को यदि स्वर्गीय आचार्य शुक्ल जी के तर्कबाणो मे काट भी दें तो हास्य-रस का जीवन के लिए जो मूल्य है और लोकसग्रह में जो उसकी उपादेयता है वह नही भुलाई जा सकती। हास्य के बिना जीवन भोग्य नही रह जाता। हास्य-प्रिय व्यक्तियो के लिए आपत्तियो के पहाड भी राई-से नगण्य हो जाते है। उनको घोर-गहनतम कालिमा में भी रजत रश्मियो की झलक मिल जाती है। हँसमुख व्यक्ति का व्यक्तित्व लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है। उसकी बात में फूल से झडते दिखाई पडते है और वह जिधर जाता है उधर प्रकाश की एक लहर दौड जाती है। इसकी शुभ्रता और उज्ज्वलता के ही कारण उसके देवता प्रमथेश (शिव) माने गये। वे देवताओ में श्वेत है और गिरिराज हिमालय पर वे निवास करते है। वे विरूपताओ और विषम-ताओ के निधान होते हुए भी शिव है। हास्य के आलम्बन में विषमताएँ विकृ-तियाँ और असगतियाँ होती है किन्तु वह अनिष्टकारी नही होता। अनिष्ट की दशा में विषमताएँ भयानकता का रूप धारण कर लेती है और उनके घट जाने पर वह करुणा का जनक होता है। हास्य के माध्यम से जीवन की कुंठाओं, घृणाओ और द्वेष भावनाओ को भी निरापद विकास मिल जाता है। हास्य की इसी महत्ता को स्वीकार करते हुए संस्कृत के नाटककार नायक के जीवन की कठिनतम दुरूह परिस्थितियो में हल्कापन लाने के लिए विदूषक की सृष्टि कर देते थे। विदूषक को पेटू और ब्राह्मण ही क्यो रखते थे? इसका भी एक रहस्य था, वह यह कि ब्राह्मण ही एक ऐसा निस्पृह और निर्द्वन्द्व व्यक्ति हो सकता था कि वह जीवन की विषमतम परिस्थितियो को हास्य की उपेक्षा दृष्टि से देख सके। विदूषक के प्रिय वयस्य राजा की कल्पित और वास्तविक कठिनाइयो [illegible] उत्पन्न करने के लिए उसके पेटूपन पर अधिक जोर दिया जाता था। [illegible] की विषम वेदना और रहस्योद्घाटन का दुःसह [illegible] और [illegible] की पुकार? वह विषमतामयी स्थिति एक सुखद [illegible] शोभा देती थी।

हास्य में हर्ष या आनन्द तो अवश्य है किन्तु उसकी शास्त्रीय और वैज्ञा-[illegible] हँसी-खेल नहीं है। प्रेम की भांति उसके सम्बन्ध में भी [illegible] हँसि-खेल [illegible]। [illegible] अपने जन्मसिद्ध [illegible] द्वारा वे हास्य

के कुशल विवेचक और सिद्धान्त प्रतिपादक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्होंने हास्य रस के सिद्धान्तारणव में अवगाहन करने का प्रयत्न किया है और उसमें से कुछ बहुमूल्य रत्न हमारे सामने रक्खे हैं। भारतीय साहित्यशास्त्र के अनुकूल जितने भेद हो सकते थे उनका उल्लेख किया गया है और कहीं कहीं योरोपीय साहित्य शास्त्र में प्रचलित भेदों से उनका तादात्म्य भी किया गया है। लेखक रूढ़िवादी नहीं है। उनका मत है कि परिस्थितियों के साथ हास्य के आलम्बन बदलते हैं और लोगों की मनोवृत्तियों में भी अन्तर आता है। इसी के साथ हास्य की परिभाषाएँ भी बदलती हैं फिर भी उन्होंने असंगति को ही हास्य का मूलाधार माना है। बर्गसाँ आदि दार्शनिकों की परिभाषाएँ भी असंगति की शब्दावली में घटाई जा सकती हैं। लेखक अधिकांश में योरोपीय पंडितों से प्रभावित है। इसका कारण भी है कि हमारे यहाँ जितना शृंगार का विवेचन हुआ उतना और रसों का विवेचन नहीं हुआ है। प्राचीन लोगों के इस विषय में उदासीन रहने के कारण हो सकते हैं किन्तु खेद की बात है कि नवीन आचार्यों ने भी इस विषय में बहुत कम अंशदान किया है। इस ग्रन्थ का मूल्य यही है कि वह हिन्दी पाठकों का इस सम्बन्ध में कुछ नेत्रोन्मीलन कर सकेगा और इस दिशा में पाश्चात्य पंडितों के किये हुए प्रयत्न का दिग्दर्शन करा सकेगा। पहले आचार्यों की असमर्थता का एक कारण भी था, वह यह कि उनके सामने हास्य सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के लक्ष्य ग्रन्थ उपस्थित न थे। अब ईश्वर की दया से हिन्दी के साहित्य क्षेत्र की प्रत्येक दिशा में प्रयुक्त हास्य के विभिन्न प्रकारों का, यहाँ तक कि व्यंग्य-चित्रों पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखक ने पैरोडी आदि हास्य के प्रकारों की परिभाषा ही देकर सन्तोष नहीं किया है वरन् उसके भेद उपभेद भी बताकर विषय को पहले से अधिक पल्लवित किया है। सामग्री यहाँ दी गई है वह स्थाली पुलाक न्याय है। हिन्दी के लक्ष्य ग्रन्थों के आधार पर अंग्रेजी के सिद्धान्त ग्रन्थों का सहारा लेते हुए हास्य सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थों को तैयार करने की आवश्यकता है। यह ग्रन्थ भी इस दिशा में एक आंशिक प्रयत्न है।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से यह भ्रान्त धारणा दूर हो जाती है कि हिन्दी में हास्य व्यंग्य की कमी है। हिन्दी का गिरन्त-साहित्य हास्य की दृष्टि से पर्याप्त मात्रा में पुष्ट है। उसके विश्लेषणात्मक गवेषणा की आवश्यकता है। हिन्दी में स्नेह हास्य (जिसको अंग्रेजी में Humour कहते हैं) की अपेक्षाकृत कमी है। लेखकों का ध्यान इस ओर जाना चाहिए। हिन्दी में दूसरी

भाषाओं से अनुवाद अवश्य होना चाहिए। किन्तु उन अनुवादों में भारतीय मनोवृत्ति और प्रकृति एवं संस्कृति की रक्षा होना आवश्यक है। विदेशी भाषाओं के हास्य को हिन्दी में उतारना इसी प्रकार हिन्दी के हास्य का चमत्कार हिन्दी में लाना बहुत कठिन कार्य है। अंग्रेजी तथा योरोपीय भाषाओं से अनुवाद की अपेक्षा भारतीय भाषाओं के हास्य व्यंग्यात्मक ग्रन्थों का अनुवाद होना अधिक वांछनीय है। हास्य का जो शास्त्रीय विवेचन हो वह प्रान्तीय आधार पर न होकर भारतीय आधार पर हो।

प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी ग्रन्थों का आधार उपस्थित करने में तथा समृद्ध योरोपीय भाषाओं में हास्य विषयक सैद्धान्तिक विचारधारा का दिग्दर्शन कराने में सहायक होगा। इसलिए इस ग्रन्थ का हम हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी जगत में यह ग्रन्थ उचित आदर प्राप्त कर सकेगा।

गोमती-निवास,
दिल्ली दरवाजा,
आगरा।
२५-५-५७

गुलाबराय

विषय-सूची

परिशिष्ट—२

अनुक्रमणिका

: १ :

हास्य की महत्ता

हँसना मनुष्य का स्वाभाविक लक्षण है। भोजन में विविध भाँति के व्यंजनों का समावेश होने पर भी यदि उसमें लवण का अभाव हो तो सारा भोजन लावण्यहीन, फीका बन जाता है उसी प्रकार जीवन में समस्त वैभवों के होते हुए भी यदि हँसी का अभाव हो तो जीवन भार-स्वरूप बन जाता है। जीवन के आस्वादन के लिए परिमित हँसी आवश्यक है। हँसी जीवन का विटामिन है। इसके बिना जीवन-रस की परिपुष्टि नहीं। यदि मनुष्य और कुछ न सीख कर केवल हँसना सीख ले—दूसरों को देख कर हँसना नहीं, अपने आप पर हँसना—तो वह सहज ही संसार और घर-गृहस्थी के भार तथा दुःख-झंझटों को झेल सकता है।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक 'थेकरे' ने हास्यप्रिय लेखक की उपयोगिता के विषय में लिखा है—"हास्यप्रिय लेखक, आप में प्रीति, अनुकम्पा एवं कृपा के भावों को जागृत कर उनको उचित और नियंत्रित करता है। असत्य दम्भ तथा कृत्रिमता के प्रति घृणा और कमजोरी, दरिद्रों, दलितों और दुखी पुरुषों के कोमल भावों के उदय कराने में सहायक होता है। हास्यप्रिय साहित्य सेवी निश्चय रूप से ही उदारशील होते हैं। वह तुरन्त ही सुख दुःख से प्रभावित हो जाते हैं। वह अपने पार्श्ववर्ती लोगों के स्वभाव को भली भांति समझने लगते हैं एवं उनके हास्य, प्रेम, विनोद और अश्रुओं में सहानुभूति प्रगट कर सकते हैं। सबसे उत्तम हास्य वही है जो कोमलता और कृपा के भावों से भरा हो।"*

---

* The humorous writer professes to awaken and direct your love, your pity, your kindness, your scorn for untruth, pretension, imposture for linderness for the weak, the poor, the oppressed, the unhappy. A literary man of the humorous turn is pretty sure to be of philanthropic nature, to

हास्य के विरोधी बहुधा यह तर्क उपस्थित करते हैं कि हास्य की उत्पत्ति असम्बद्धता के कारण होती है और असम्बद्धता तिरस्कार करने योग्य दोष है इसलिए विनोद को उत्तेजना देना मानो बुद्धि-विकलता को उत्तेजना देना है। श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर कृत मराठी के 'सुभाषित आणि विनोद' के हिन्दी के रूपान्तर में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा है—"असबद्धता-शब्द में साधारणत थोड़ी-सी गौणता अवश्य मानी जाती है परन्तु सब प्रकार के अपवादास्पद विकारों को मन में आने से रोक कर केवल मन की प्रसन्नता से असबद्धता या सवादिता ढूँढ निकालना बुद्धि-शक्ति के लिए जितना शोभन है, उचित स्थानों पर उपयुक्त असबद्धता असवादिता ढूंढ निकालना भी बुद्धि-शक्ति के लिए उतना ही शोभास्पद है।" इस कथन के औचित्य पर किसी को सन्देह के लिए स्थान नहीं है। उदाहरण-स्वरूप स्याही स्वच्छ नहीं होती पर जिस प्रकार लिखने के लिए उसका उपयोग करने में कोई दोष या हानि नहीं है उसी असबद्धता के दूषित होने पर भी उसका व्यवहार दोषास्पद नहीं हो सकता। तात्पर्य यह कि असबद्धता के गुणों और दोषों का विचार केवल योजना के हेतु अथवा योजना से होने वाले परिणाम पर ध्यान रख कर किया जाना चाहिए।

हास्य और विनोद का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है—(१) सामाजिक दृष्टि से और (२) व्यक्तिगत दृष्टि से।

सामाजिक दृष्टि से

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के मन से ही समाज का मन बनता है। जिस प्रकार व्यक्ति की बुद्धि और नैतिक कल्पनाओं की वृद्धि होती है उसी प्रकार सारे समाज की बुद्धि और नैतिक कल्पनाओं की वृद्धि होती है। जिन बातों की सहायता से इन दोनों विषयों में समाज अधिक सुशिक्षित हो सकता है वे बातें समाज के लिये लाभदायक होंगी। प्रत्येक व्यक्ति के मन का झुकाव किसी विशिष्ट बात की ओर होता है जिसके फलस्वरूप उसकी विशिष्ट रुचि बनती है। समाज का निर्माण विभिन्न रुचि वाले मनुष्यों से

---

h[illegible] great sensibility to be easily moved to pain or pleasure, [illegible] to appreciate the varieties of temper of people round about him and sympathise in their laughter, love, amusement and tears. The best humour is that which is flavoured [illegible] tenderness and kindness —(Humour and Humourists—Thackeray)

मिल कर होना है इसलिए समाज की शिक्षा अनेकांगी होती है। समाज में प्रायः सभी अंगों की वृद्धि होने की आवश्यकता हुआ करती है और इसीलिए उसे अनेक अंगों की शिक्षा की भी आवश्यकता होती है। यदि कोई मनुष्य कोई बढ़िया सुभाषित अकेला ही पढ़ अथवा सुन ले तो उस में होने वाला लाभ बहुत ही परिमित होता है पर यदि वही सुभाषित दस आदमी साथ मिल कर पढ़ें या सुनें तो उसका लाभ अपेक्षाकृत कहीं अधिक होगा। एक व्यक्ति को तो उससे केवल शिक्षा मिलती है पर यदि दस आदमी साथ मिल कर उस सुभाषित का आनन्द लें तो उन्हें अलग-अलग शिक्षा तो मिलेगी ही, साथ में उनका मेल होगा और उनमें संघ-शक्ति उत्पन्न होगी। हास्यविनोद-शीलता एक सामाजिक गुण है और उसका प्रचार एक दूसरे के सम्पर्क के कारण बढ़ता है। सामाजिक हास्य विनोद से सामाजिक सद्गुण और समाज-हित वाली दृष्टि की वृद्धि होती है।

समाज सुधार का माध्यम

हास्य द्वारा समाज-सुधार का कार्य बहुत दिनों से होता चला आया है। असामाजिक व्यक्ति, समाज की प्रचलित कुरीतियां एवं अन्य विकृतियां सदैव से हास्य रस के आलम्बन बनते आये हैं। वीरगाथा काल में कायर, भक्ति काल में पाखण्डी, रीतिकाल में सूम तथा आधुनिक काल में नेता आदि हास्य के आलम्बन बनाये गए हैं। फ्रेंच दार्शनिक बर्गसां ने लिखा है—"हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें सामाजिकता की झलक हो। भय, जो यह उत्पन्न करता है, इसके सनकीपन पर रोक लगती है। यह मनुष्य को सदैव अपने पारस्परिक आदान-प्रदान के उन निम्नस्तरीय कार्यों के प्रति सचेत रखता है। संक्षेप में ये यान्त्रिक क्रिया के फल स्वरूप किए जाने वाले व्यवहार को मृदुल बनाता है"।[1]

---

1 Laughter must be something of this kind, a sort of social gesture. By the fear which it inspires, it restrains eccentricity, keeps constantly awake and in mutual contact certain activities of a secondary order which might retire into their shell and to go to sleep, and, in short, softens down whatever the surface of the social body may retain of mechanical inelasticity.

—(Laughter—Page 20. By HENRI BERGSON)

मनुष्य हास्यास्पद बनने से बचता है और जहाँ तक होता है जानकर कोई ऐसा कार्य नहीं करता जिससे कि वह हास्यास्पद बन जाय। व्यंग्य के कोड़े से समाज की बड़ी-बड़ी विकृतियाँ दूर हो जाती हैं। भारतेन्दु काल में अधिकतर लेखकों ने अंग्रेजी पर यथेष्ट व्यंग्य बाण छोड़े हैं। दमन के उस युग में वे हास्य एवं व्यंग्य माध्यम से ही अपने दिल के फफोले फोड़ सकते थे इसीलिए उस समय के व्यंग्य में तिक्तता की मात्रा अधिक पाई जाती है। कबीर ने अपने समय से पाखंडियों तथा धर्मान्धों पर व्यंग्य बाण छोड़े हैं। हास्य के प्रसिद्ध लेखक जी० पी० श्रीवास्तव ने हास्य की उपयोगिता पर लिखा है—"तो बुराई रूपी पापों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा गंगाजल नहीं है। यह वह हथियार है जो बड़े-बड़ों के मिजाज चुटकियों में ठीक कर देता है। यह कोड़ा है जो मनुष्यों को सीधी राह से बहकने नहीं देता। मनुष्य ही नहीं, धर्म और समाज का भी सुधारने वाला है, तो यही है। स्पेन के सर बेंटीज ने डानक्यूजोर की रचना करके योरप भर के खुदाई फौजदारों की हस्ती मिटा दी। इंगलैंड के शेक्सपीयर ने अपने शाइलाक द्वारा सूदखोरों की हुलिया बिगाड़ दी। फ्रांस के मोलियर ने अपने पंके और मरफूरिए नामक चरित्रों से तत्वज्ञानियों की खिल्ली उड़वा कर अरिस्टाटिल से मतभेद करने वालों को फाँसी के तख्ते पर से उतार लिया"।[1] वास्तव में 'अनीति ढूंढ निकालने का काम विनोद की सहायता से जितनी अच्छी तरह हो सकता है उतनी अच्छी तरह और किसी प्रकार नहीं। 'यदि हम केवल अप्रसन्न होकर अनीति की निन्दा करें तो बहुत सम्भव है कि वह बिगड़ैल घोड़े की तरह उलटे और अनिष्ट कर डाले। विनोद की मुलायम सलाई से अनीति की दोषयुक्त दृष्टि में अंजन लगाया जा सकता है और वह दोष धीरे-धीरे दूर किया जा सकता है।' इस तत्व को आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व यूनानी प्रहसनकार अरिस्टोफेनीस ने समझा था। उसके प्रहसनों में बड़े-बड़े आदमियों, सामाजिक रीति-नीतियों और राजकीय विषयों पर टीकाएँ और टिप्पणियाँ होती थीं। कहते हैं, सायराक्यूज के अत्याचारी राजा 'दि आनीसियस' ने एक बार तत्ववेत्ता प्लेटो से एथेन्स की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। इस पर प्लेटो ने उसके पास केवल अरिस्टोफेनीस के '[illegible]" नामक प्रहसन की एक प्रति भेज दी थी। इस प्रकार आज से दो हजार वर्ष पहले प्रहसन [illegible] गुण-दोष पर टीका करने के मुख्य साधन [illegible] थे। पाश्चात्य साहित्य के हास्यरस लेखकों की कृतियाँ या

अभाव का अनुभव करते हुए लिखा है—"समाज के चलते जीवन के किसी विकृत पक्ष को, या किसी वर्ग के व्यक्तियो की बेढंगी विशेषताओ को हँसने हँसाने योग्य बनाकर सामने लाना बहुत कम दिखाई पड़ रहा है।"[1] वास्तव में समाज के मैल के लिए हास्य साबुन का कार्य करता रहा है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

यदि ससार के सब लोगो को यह बात अच्छी तरह से मालूम हो जाय कि हास्य का हमारे स्वास्थ्य पर कितना अच्छा प्रभाव पडता है तो फिर आधे से अधिक डाक्टरो, वैद्यो और हकीमो आदि के लिए मक्खियाँ मारने के सिवा और कोई काम ही न रह जाय। हास्य वास्तव मे प्रकृति की सबसे बडी पुष्टई है। हास्य से बढकर बलवर्द्धक और उत्साहवर्द्धक और कोई चीज हो ही नही सकती। हास्य से ही हमारे शरीर में नवीन जीवन और नवीन बल का सचार होता है और हमारे आरोग्य की वृद्धि होती है। श्री केलकर के अनुसार—"जिस समय मनुष्य नहीं हँसता, उस समय श्वासोच्छ्वास की क्रिया सीधी और शान्तरीति से होती हैं और हँसने के समय उसमें एक दम व्यत्यय हो जाता है। परन्तु उस व्यत्यय का परिणाम श्वासोच्छ्वास की इन्द्रियो और शरीर के रक्त प्रवाह पर अच्छा ही होता है।"[2] हास्य के कारण वक्ष-कपाट पर एक-एक करके कई आघात होते है। इनमें से प्रत्येक आघात के समय रक्त-वाहिनी नलियो में का रक्त हृदय तक पहुँचने से रुकता है। यही कारण है कि बहुत देर तक हँसने से मनुष्य का चेहरा किसी अश में तमतमा उठता है। पर हास्य-क्रिया के बीच-बीच में जल्दी-जल्दी जो श्वासोच्छ्वास होता है, उसकी सहायता से फेफडे में हवा पहुँचती है जो उसे फुला देती है। इसका परिणाम यह होता है कि रक्त वाहिनी नलियो में का रक्त हृदय की ओर बढता है। हृदय की ओर जोर से रक्त जाने और रुकने की क्रियाओं के बराबर एक-एक करके होते रहने से रक्त में प्राण वायु का अधिक-सचार होता है और उसके प्रवाह की गति भी बढ जाती है।

इसके अतिरिक्त हास्य का एक अप्रत्यक्ष प्रभाव भी पडता है। जब मनुष्य हँसता है तो उसके मस्तिष्क पर रक्त का दबाव कम पडता है। बालक के रूठ जाने पर लोग मुह चिढा कर उसकी नकल उतार कर अथवा और किसी प्रकार से उसे हँसाते है। इसका कारण यही है कि हँसी आने के साथ

१ हि० सा० का इतिहास—(सस्करण स० २००२) पृष्ठ ४७४

२. हास्यरस-मूल श्री केलकर—अनुवाद श्री रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ १४८

ही दिमाग पर खून का दबाव कम हो जाता है और मनोवृत्ति बदल जाती है। अंग्रेजी में एक कहावत है—"Laugh and grow fat" (हँसो और मोटे हो)।

स्पार्टा के भोजनालय में वहाँ के सुप्रसिद्ध नेता लाइकरगस ने हास्य देवता की मूर्ति स्थापित कर रक्खी थी, क्योंकि उसका मत था कि "हास्य में हमारी पाचन शक्ति को बढ़ाने का जितना अधिक गुण है उतना और किसी पदार्थ में नहीं है।

लिंकन सदा अपने टेबुल पर हास्य विनोद की एक न एक पुस्तक रखा करता था। जब कभी वह काम करते-करते कुछ थक जाता था, कुछ खिन्न हो जाता था अथवा उसे जी ऊँबता हुआ जान पड़ता था, तब वह उसी पुस्तक को उठाकर उसके कुछ प्रकरण या पृष्ठ पढ़ जाता था। इससे उसकी सारी शिथिलता और सारा खेद दूर हो जाता था और वह बड़े आनन्द से फिर अपने काम में लग जाता था। मन को स्वाभाविक और सरल स्थिति में लाने और उसका स्थिति-स्थापकता वाला गुण नष्ट होने से बचाने के लिए ही ईश्वर ने हास्य एवं विनोद की सृष्टि की है।

आत्म-स्वभाव का निरीक्षण

दूसरे पर हँसना जितना आसान है उतना अपने पर नहीं। हास्य एक प्रकार का प्रकाश उत्पन्न करता है जिससे बुराइयों रूपी अन्धकार नष्ट होता है। दूसरे पर हँसने वाला मनुष्य उस उजाले में अपनी बुराइयों को भी देख पाता है जिन असंगतियों पर हम दूसरे पर हँसते हैं यदि आत्मनिरीक्षण करके अपनी असंगतियों पर भी हँसें तो हमारा कल्याण हो सकता है। हम प्राय: लोगों को यह कहते सुनते हैं, "हमें आप ही आप हँसी आती है" उसे अपने ऊपर भी कभी न कभी हँसी आयेगी ही।

कष्ट सहने की क्षमता

जीवन-पथ में प्राय: अनेक ऐसे ऊबड़-खाबड़ स्थान मिलते हैं जिनमें लोगों को ठोकरें, धक्के और झटके लगते हैं। जो लोग हँसना और प्रसन्न रहना नहीं [illegible] ठोकरों, धक्कों, झटकों आदि से बहुत कष्ट पाते हैं, परन्तु सदा प्रसन्न रहने वाले लोगों के लिए ऐसे अवसर पर आनन्द और हास्य मानो [illegible] और वे उन ठोकरों और धक्कों आदि का कुछ [illegible]। ऐसे लोगों की जीवन-यात्रा बड़ी ही सुगम और सुख-

पूर्ण हुआ करती है। जब हम किसी अप्रिय घटना आदि के कारण अस्वाभाविक परिस्थिति में पहुँच जाते हैं, तब हास्य और आनन्द हमें फिर तुरन्त अपनी स्वाभाविक परिस्थिति में ले आता है। जीवन में जितने क्षत होते हैं उन सबके लिए हास्य बढ़िया मरहम का काम देता है। कहीं बाहर जाने के लिए जल्दी-जल्दी स्टेशन पर पहुँचे और पहुँचते ही गाड़ी छूट गई, ऐसा प्रसग सभी लोगों को कभी न कभी आता ही है। अब गाड़ी छूट जाने के कारण खिन्न होकर चार आदमियों के समक्ष मुंह लटकाकर बैठने वाले एक मुहर्रिमी को लीजिये और दूसरे एक ऐसे आदमी को लीजिये जो गाड़ी छूटती हुई देख कर तनिक भी दु:खी नहीं होता और हँसता कहता है—"वाह, हम तो दौड़-धूप करके इतनी दूर से आपके वास्ते यहाँ तक चलकर आये और आपने हमारे लिए एक मिनट की भी मुरौवत न की। यह कहाँ की भलमनसाहत है।" अब इन दोनों मनुष्यों की तुलना कीजिए और बतलाइए कि दोनों के समान कठिनाई और अड़चन का सामना करने पर भी इनमें से सुखी कौन है और दु:खी कौन? घोड़ा-गाड़ी से उतरते समय अपनी धोती पावदान में फँस जाने और फलतः जल्दी उतर सकने के कारण गाड़ीवान को व्यर्थ गालियाँ देने वाले और क्रुद्ध होकर प्रकाण्ड ताण्डव करने वाले लोग जिस प्रकार इस ससार में कम नहीं हैं उसी प्रकार ऐसे लोग भी कम नहीं हैं जो ऐसे अवसर पर एकाध विनोद की बात कह कर अड़चन का वह क्षण हँस कर बिता देते हैं। अन्धेरी रात में रास्ते में ठोकर खाकर गिर पड़ने के कारण नगर-पालिका को गालियाँ देकर अपने आपको दु:खी भी किया जा सकता है और हँसते हुए यह कह कर अपना रास्ता भी लिया जा सकता है—"आजकल हमारे यहाँ की नगरपालिका ने रोशनी का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया है कि उसकी लालटेन देखने के लिए घर से एक लालटेन साथ लाने की आवश्यकता होती है।" ससार में छोटी-मोटी कठिनाइयों या सकटों का जितना परिहार विनोद से होता है उतना क्रोध, दु:ख आदि से नहीं होता। सुकरात की कर्कशा स्त्री ने जब पहले उसे गालियाँ दीं और फिर उनके सिर पर गरम पानी डाल दिया तो उसने कह दिया—"बिजली चमकने और बादल गरजने के बाद पानी बरसता ही है।" हम सब लोग यदि इतने विनोदशील न हों फिर भी सब लोग सासारिक कठिनाइयों और सकटों के बहुत से अवसर इसी प्रकार हँसकर टाल सकते हैं। अनेक प्रकार की परिस्थितियों और विशेषत कठिन परिस्थितियों का सामना मनुष्य मात्र के लिए विषम होता है क्योंकि उन में एक ओर सर्वशक्तिमान परिस्थिति होती है और दूसरी ओर अल्प शक्तिमान मनुष्य। और जब तक हम जीते रहेंगे तब तक

यह विषम समस्या बराबर बनी रहेगी। जब यह भली भाँति समझ में आ जायेगी तब मनुष्य को विश्वास हो जायगा कि जिस अवसर पर और कोई शक्ति काम नही कर सकती, उस अवसर पर विनोद रूपी मायावी शक्ति की आराधना और सहायता से ही हम उस विषम द्वन्द्व में विजय प्राप्त कर सकते हैं।

साधारणतः प्रत्येक बात का परिणाम दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो प्रत्यक्ष होता है और पदार्थ सृष्टि पर पड़ता है और दूसरा वह जो प्रत्यक्ष होता है और अपने मन पर पड़ता है। यह निर्विवाद है कि इनमें विनोद के द्वारा प्रत्यक्ष परिणाम नष्ट नही हो सकता परन्तु मन पर पड़ने वाला प्रभाव विनोद की सहायता से बहुत कुछ कम किया जा सकता है। इस विषय में प्रसिद्ध विद्वान् 'सली' का मत है।[1]

स्वभाव में कोमलता

प्रसिद्ध तत्ववेत्ता कारलाइल ने एक स्थान पर कहा है कि[2] जो मनुष्य अपने जीवन में एक बार भी खिलखिला कर और खुले मन से हँसा हो, वह कदापि अत्यन्त बुरा नही हो सकता। विनोद को हम चाहे सद्गुण कहें चाहे न कहें पर इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि अनेक प्रकार के दूसरे सद्गुणों के होते हुए भी जब तक मनुष्य में विनोद-प्रियता न हो तब तक वह पूर्ण सद्गुणी

---

1. In much of this alleviating service of humours, the laugh which liberates us from the thraldom of the monetary, is a laugh at ourselves Indeed, one may safely say that the benefits here alluded to presuppose a habit of reflective self quizzing The blessed relief comes from the discernment of the preposterous in the foregoing of our claims, of a folly in yielding to the currents of sentiment which diffuse their [illegible] over the realm of reality

The coming of the smile announces a shifting of the [illegible] of [illegible], the maladjustment which a moment ago seemed to be [illegible] on the side of the world showing itself now to [illegible] ell —(Sully P 329)

2. [illegible] has once wholly and heartily laugh- [illegible] irreclaimably bad In cheerful souls, [illegible] — Carlyle

नही कहा जा सकता। जब तक सद्गुणो और सुस्वभाव का जोड न हो तब तक काम ही नही चल सकता। सुस्वभाव की सबसे अधिक उत्पत्ति विनोद शीलता के कारण होती है। विनोदी मनुष्य अपने स्वाभाविक गुणो से अकारण दूसरो का चित्त नही दुखाता। इस प्रकार वह स्वय भी प्रसन्न रहता है और दूसरो की प्रसन्नता का कारण भी होता है। शुद्धभाव के विनोद से स्नेहियो का स्नेह और कुटुम्ब के लोगो का पारस्परिक प्रेम अधिक दृढ होता है। परस्पर केवल आदरपूर्वक व्यवहार करने वाले स्नेहियो का स्नेह विनोद-युक्त आदर से व्यवहार करने वाले स्नेहियो के स्नेह की अपेक्षा कम रम्य, कम सुखकर और कम स्थायी होता है। अग्रेजी कवि 'टैनीसन' ने कहा है कि गृहस्थी में अच्छा हास्य सूर्योदय के समान होता है। विद्यालयो के सम्बन्ध मे भी यही बात है। यदि शिक्षक और छात्र परस्पर विनोद करें तो यह न समझना चाहिए कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध को छुट्टी मिल गई। यही नही, बल्कि जो शिक्षक विद्वान होने के अतिरिक्त विनोदप्रिय भी होता है, शिष्यो के लिए वही सबसे अधिक प्रिय और मान्य होता है।

उपसंहार

अन्त में यह प्रश्न रह जाता है कि क्या हास्य दोषरहित है ? ऐसी बात नही है। 'अतिसर्वत्र वर्जयेत' वाली उक्ति हास्य एव विनोद पर भी चरितार्थ होती है। हर समय हँसी-दिल्लगी करने से स्वभाव में एक-देशीयता आती है और एक-देशीयता का आना दोष है। यह बात निर्विवाद है कि मनुष्य में गम्भीरता की बहुत बडी आवश्यकता है। यदि विनोद अधिक किया जाय तो इन दोनो गुणो को बहुत कुछ चोट पहुँचने की सम्भावना है। जिन लोगो को हम बहुत विनोद-प्रिय समझते हैं उनमें से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हे ससार की सभी बातें तुच्छ जान पडती हैं। वे सब बातो की दिल्लगी ही उडाया करते हैं। उन्हे किसी बात में कोई सार नही जान पडता। ऐसे लोगो को ससार में कोई चीज पवित्र अथवा वन्दनीय नही जान पडती। जिस प्रकार किसी दरबार में मसखरे के हँसी-ठट्ठा करते रहने पर भी राजा साहब अपनी गद्दी पर और दरबारी लोग अदब-कायदे से अपनी-अपनी जगह पर बैठे रहते है, उसी प्रकार विनोद के होते हुए भी मनुष्य के मानसिक दरबार में श्रेष्ठता, गम्भीरता, विचारशीलता अथवा सत्य-प्रियता में से किसी एक न एक सद्गुण का मन प्रवृत्ति पर पूर्ण रूप से अधिकार रहना चाहिए। विनोद चाहे कितना ही प्रिय और इष्ट क्यो न हो तो भी उसके मूल्य या महत्व की एक निर्दिष्ट सीमा होनी चाहिए। यदि

यह विषम समस्या बराबर बनी रहेगी। जब यह भली भाँति समझ मे आ जायेगी तब मनुष्य को विश्वास हो जायगा कि जिस अवसर पर और कोई शक्ति काम नही कर सकती, उस अवसर पर विनोद रूपी मायावी शक्ति की आराधना और सहायता से ही हम उस विषम द्वन्द्व मे विजय प्राप्त कर सकते हैं।

साधारणत प्रत्येक बात का परिणाम दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो प्रत्यक्ष होता है और पदार्थ सृष्टि पर पडता है और दूसरा वह जो प्रत्यक्ष होता है और अपने मन पर पडता है। यह निर्विवाद है कि इनमे विनोद के द्वारा प्रत्यक्ष परिणाम नष्ट नही हो सकता परन्तु मन पर पडने वाला प्रभाव विनोद की सहायता से बहुत कुछ कम किया जा सकता है। इस विषय मे प्रसिद्ध विद्वान् 'सली' का मत है।[1]

स्वभाव में कोमलता

प्रसिद्ध तत्ववेत्ता कारलाइल ने एक स्थान पर कहा है कि[2] जो मनुष्य अपने जीवन में एक बार भी खिलखिला कर और खुले मन से हँसा हो, वह कदापि अत्यन्त बुरा नहीं हो सकता। विनोद को हम चाहे सद्गुण कहे चाहे न कहे पर इतना अवश्य मानना पडेगा कि अनेक प्रकार के दूसरे सद्गुणों के होते हुए भी जब तक मनुष्य में विनोद-प्रियता न हो तब तक वह पूर्ण सद्गुणी

1. In much of this alleviating service of humours, the laugh which liberates us from the thraldom of the monetary, is a laugh at ourselves Indeed, one may safely say that the benefits here alluded to presuppose a habit of reflective self quizzing The blessed relief comes from the discernment of the preposterous in the foregoing of our claims, of a folly in yielding to the currents of sentiment which diffuse their [illegible] over the realm of reality

The coming of the smile announces a shifting of the [illegible], the mal-adjustment which a moment ago seemed to [illegible] on the side of the world showing itself now to [illegible] ell —(Sully P 329)

2. [illegible] has once wholly and heartily laughed [illegible] irreclaimably bad In cheerful souls, [illegible] — Carlyle

नही कहा जा सकता। जब तक सद्गुणो और सुस्वभाव का जोड न हो तब तक काम ही नही चल सकता। सुस्वभाव की सबसे अधिक उत्पत्ति विनोद शीलता के कारण होती है। विनोदी मनुष्य अपने स्वाभाविक गुणो से अकारण दूसरो का चित्त नही दुखाता। इस प्रकार वह स्वय भी प्रसन्न रहता है और दूसरो की प्रसन्नता का कारण भी होता है। शुद्धभाव के विनोद से स्नेहियो का स्नेह और कुटुम्ब के लोगो का पारस्परिक प्रेम अधिक दृढ होता है। परस्पर केवल आदरपूर्वक व्यवहार करने वाले स्नेहियो का स्नेह विनोद-युक्त आदर से व्यवहार करने वाले स्नेहियो के स्नेह की अपेक्षा कम रम्य, कम सुन्दर और कम स्थायी होता है। अंग्रेजी कवि 'टैनीसन' ने कहा है कि गृहस्थी में अच्छा हास्य सूर्योदय के समान होता है। विद्यालयो के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि शिक्षक और छात्र परस्पर विनोद करे तो यह न समझना चाहिए कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध को छुट्टी मिल गई। यही नही, बल्कि जो शिक्षक विद्वान होने के अतिरिक्त विनोदप्रिय भी होता है, शिष्यो के लिए वही सबसे अधिक प्रिय और मान्य होता है।

उपसंहार

अन्त मे यह प्रश्न रह जाता है कि क्या हास्य दोपरहित है ? ऐसी बात नही है। 'अतिसर्वत्र वर्जयेत' वाली उक्ति हास्य एव विनोद पर भी चरितार्थ होती है। हर समय हँसी-दिल्लगी करने से स्वभाव में एक-देशीयता आती है और एक-देशीयता का आना दोप है। यह बात निर्विवाद है कि मनुष्य में गम्भीरता की बहुत बडी आवश्यकता है। यदि विनोद अधिक किया जाय तो इन दोनो गुणो को बहुत कुछ चोट पहुँचने की सम्भावना है। जिन लोगो को हम बहुत विनोदप्रिय समझते है उनमें से कुछ लोग ऐसे भी होते है जिन्हे ससार की सभी बाते तुच्छ जान पडती है। वे सब बातो की दिल्लगी ही उडाया करते है। उन्हे किसी बात में कोई सार नही जान पडता। ऐसे लोगो को ससार में कोई चीज पवित्र अथवा वन्दनीय नही जान पडती। जिस प्रकार किसी दरबार में मसखरे के हँसी-ठट्ठा करते रहने पर भी राजा साहब अपनी गद्दी पर और दरबारी लोग अदब-कायदे से अपनी-अपनी जगह पर बैठे रहते है, उसी प्रकार विनोद के होते हुए भी मनुष्य के मानसिक दरबार में श्रेष्ठता, गम्भीरता, विचारशीलता अथवा सत्य-प्रियता में से किसी एक न एक सद्गुण का मन. प्रवृत्ति पर पूर्ण रूप से अधिकार रहना चाहिए। विनोद चाहे कितना ही प्रिय और इष्ट क्यो न हो तो भी उसके मूल्य या महत्व की एक निर्दिष्ट सीमा होनी चाहिए। यदि

सद्गुणो के साथ विनोद का मेल होगा तो मानो दूध में मिसरी भी पड जायगी अथवा उनकी जोडी में वैसी ही उज्ज्वलता और दैदीप्यता आ जायगी, जैसी स्फटिक पर सूर्य की किरणें पडने से आती है।

बुद्धिमान, राजनैतिक, तत्ववेत्ता, शूर-वीर, सहृदय, विद्वान, व्यवहार-चतुर, पण्डित, सद्-असद्-विवेकी अथवा ऐसे और लोगो के लिए तो हमारे हृदय में आदर होता ही है पर यदि उन लोगो में से प्रत्येक में सौभाग्य से विनोद-प्रियता भी हो तो हमारी आदर-बुद्धि में एक प्रकार के मधुर प्रेम का भी छींटा पड जाता है। केवल आदर-बुद्धि के कारण, जो लोग हमें पराये या दूरत सेव्य जान पडते हैं, वे ही उक्त प्रेम उत्पन्न होने के कारण हमारे साथ एक-दिल हो जाते हैं और उनके सद्गुण आकर हममें सक्रमित होते हैं।

❀

: २ :

हास्य-रस का शास्त्रीय विवेचन

रस की कल्पना संस्कृत में हुई है। अंग्रेजी साहित्य में रस का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता। वस्तुत परिपुष्ट भाव का नाम ही रस है। अंग्रेजी में भाव को 'इमोशन' कहते हैं। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में ही इसका प्रथम बार नियमबद्ध उल्लेख हुआ है। आचार्य भरत का कहना है कि 'द्रुहिण' नामक किसी आचार्य द्वारा इसका आविष्कार हुआ। वे लिखते हैं—"ह्यष्टौ रसा प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना।" इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अभिनय देखने से दर्शकों में जो तन्मयता आती है, रस की कल्पना उसी के आधार पर हुई प्रतीत होती है।

अग्नि-पुराण के अनुसार मुख्य रस चार माने जाते हैं—शृङ्गार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। इन चारों के आधार से शेष रसों की उत्पत्ति होती है। शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुणा, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक का आविर्भाव हुआ।[1] भरतमुनि ने भी पहले चार रस की उत्पत्ति मानी है—शृङ्गार, रौद्र, वीर और वीभत्स,[2] तथा उन्होंने भी शृङ्गार से हास्य की उत्पत्ति मानी है।[3] भरतमुनि के अनुसार—"शृङ्गार रस की अनुकृति हास्य है।" अनुकृति का अर्थ है अनुकरण अथवा नकल करना। नकल हँसी की जड़ है। किसी की बातचीत, चाल-ढाल, वेष-भूषा आदि की नकल जब विनोद के लिए की जाती है तब हँसी का प्रादुर्भाव होता है। यह हास्य और व्यापक होता है, इसी कारण बाद में यह भी रस माना जाने लगा। उदाहरण

---

१. "शृङ्गाराज्जायते हास्यो रौद्रात्तु करुणो रसः।
वीराच्चाद् भुतनिष्पत्तिः स्याद् बीभत्साद् भयानकः" ॥ —(अग्निपुराण)

२. "तेषामुत्पत्तिहेतवश्चत्वारो रसः शृङ्गारो रौद्रोवीरो बीभत्स इति"।
—(नाट्य शास्त्र)

३. शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो।

सद्‌गुणो के साथ विनोद का मेल होगा तो मानो दूध में मिसरी भी पड जायगी अथवा उनकी जोडी में वैसी ही उज्ज्वलता और दैदीप्यता आ जायगी, जैसी स्फटिक पर सूर्य की किरणें पडने से आती है।

बुद्धिमान, राजनैतिक, तत्ववेत्ता, शूर-वीर, सहृदय, विद्वान, व्यवहार-चतुर, पण्डित, सद्-असद्-विवेकी अथवा ऐसे और लोगो के लिए तो हमारे हृदय में आदर होता ही है पर यदि उन लोगो में से प्रत्येक में सौभाग्य से विनोद-प्रियता भी हो तो हमारी आदर-बुद्धि में एक प्रकार के मधुर प्रेम का भी छींटा पड जाता है। केवल आदर-बुद्धि के कारण, जो लोग हमें पराये या दूरत सेव्य जान पडते हैं, वे ही उक्त प्रेम उत्पन्न होने के कारण हमारे साथ एक-दिल हो जाते हैं और उनके सद्‌गुण आकर हममें सक्रमित होते हैं।

: २ :

हास्य-रस का शास्त्रीय विवेचन

रस की कल्पना संस्कृत में हुई है। अंग्रेजी साहित्य में रस का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता। वस्तुतः परिपुष्ट भाव का नाम ही रस है। अंग्रेजी में भाव को 'इमोशन' कहते हैं। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में ही इसका प्रथम बार नियमबद्ध उल्लेख हुआ है। आचार्य भरत का कहना है कि 'द्रुहिण' नामक किसी आचार्य द्वारा इसका आविष्कार हुआ। वे लिखते हैं—"ह्यष्टौ रसा प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना।" इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अभिनय देखने से दर्शकों में जो तन्मयता आती है, रस की कल्पना उसी के आधार पर हुई प्रतीत होती है।

अग्नि-पुराण के अनुसार मुख्य रस चार माने जाते हैं—शृङ्गार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। इन चारों के आधार से शेष रसों की उत्पत्ति होती है। शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुणा, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक का आविर्भाव हुआ।[1] भरतमुनि ने भी पहले चार रस की उत्पत्ति मानी है—शृङ्गार, रौद्र, वीर और वीभत्स,[2] तथा उन्होंने भी शृङ्गार से हास्य की उत्पत्ति मानी है।[3] भरतमुनि के अनुसार—"शृङ्गार रस की अनुकृति हास्य है।" अनुकृति का अर्थ है अनुकरण अथवा नकल करना। नकल हँसी की जड़ है। किसी की बातचीत, चाल-ढाल, वेष-भूषा आदि की नकल जब विनोद के लिए की जाती है तब हँसी का प्रादुर्भाव होता है। यह हास्य और व्यापक होता है, इसी कारण बाद में यह भी रस माना जाने लगा। डाक्टर

१ "शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणो रसः।
वीराच्चाद् भुतनिष्पत्तिः स्याद् वीभत्साद् भयानकः" ॥ —(अग्निपुराण)

२ "तेषामुत्पत्ति हेतवश्चत्वारो रसः शृङ्गारो रौद्रोवीरो वीभत्स इति"।
—(नाट्य शास्त्र)

३. शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो।

रामकुमार वर्मा ने भरत के उक्त सूत्र में कि हास्य शृङ्गार से प्रेरणा पाता है, ग्रपना सशोधन रक्खा है। हास्य केवल शृङ्गार से प्रेरणा नही पाता, जीवन की ग्रनेक परिस्थितियो से वल ग्रहण करता है। इस विपय पर ग्रागे निवेदन किया गया है।

दशरूपककार ने सर्वप्रथम शान्तरस को स्थान देकर इस विकास को जन्म दिया था। तदुपरान्त हमें साहित्य-दर्पण में वात्सल्य रस पर पर्याप्त विवेचन मिल जाता है। इस प्रकार रसो की सस्या १० हो गई है। नवीन रसो की कल्पना एव उद्भावना वरावर होती रही है ग्रौर ग्रव भी हो रही है। हास्य रस के उद्रेक के सम्वन्ध में 'धनजय' ने कहा है—

"विकृता कृति वाग्विशेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हास स्यात् परिपोषोस्य हास्याभि प्रकृति स्मृत ॥"

—(दशरूपक, ४ प्रकाश, पृष्ठ ७५)

इसके ग्रनुसार हास्य का कारण ग्रपनी ग्रथवा दूसरे की विचित्र वेष-भूषा, चेष्टा शव्दावली तथा कार्य-कलाप है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी हास्य के उद्रेक के सम्वन्ध में कहा है—

"विकृताकार वाग्वेपचेष्टादे कुहका वदेत्।
हास्यो हास स्थायिभाव श्वेत प्रमथ देवत ॥"

—(साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, पृष्ठ २१४)

उक्त लक्षण के ग्रनुसार वाणी, चेप्टा तथा ग्राकार ग्रादि की विकृति से हास्य रस का ग्राविर्भाव होता है। धनजय एव विश्वनाथ के लक्षणो में केवल ग्रन्तर यह है—धनजय के लक्षण में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वेष-भूषा, चेष्टा, शव्दावली तथा कार्य-कलाप में विचित्रता ग्रपनी भी हो सकती है ग्रौर ग्रन्य की भी। यथा—

"रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनस प्रवणायितम्।
वागादिवै कृताच्चेतो विकसो हास उच्यते ॥"

—(साहित्यदर्पण)

उपर्युक्त श्लोक में भी वाणी ग्रादि के विकार पर वल दिया गया है ग्रौर इसी के कारण हास वनाया गया है।

स्थायी भाव

जो भाव चिरकाल तक चित्त में रहता है, एव जो काव्य, नाटकादि में आद्योपान्त उपस्थित रहता है, प्रभावशीलता और प्रधानता में औरो से उत्कर्ष रखता है, साथ ही जिसमें विभावादि से सम्बन्धित होकर रस रूप मे परिणत होने की शक्ति रहती है, स्थायी भाव कहा जाता है। भरत मुनि ने स्थायी भाव की परिभाषा अपने नाट्यशास्त्र में इस प्रकार की है—

"यथा नाराणां नृपतिः शिष्यनां च यथा गुरु. ।
एवंहि सर्वभावाना भावः स्थाय महानिह ॥"

—(नाट्य शास्त्र)

अर्थात् जैसे मनुष्यो में राजा, शिष्यो में गुरु, वैसे ही सब भावो में स्थायी भाव श्रेष्ठ होता है।

हास्यरस का स्थायी भाव हास माना है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार-"वागादिवैकृतैश्चेतोविकासो हास इष्यते" अर्थात् वाणी, वेष, भूषणादि की विपरीतता से जो चित्त का विकास होता है, वह हास कहलाता है।

देव जी के 'शब्द-रसायन' में भी स्थायी भावो का वर्णन करने वाला एक दोहा है, जिसमें हास्यरस को स्थायी भाव माना है—

"रति हाँसी अरु सोक रिस, अरु उछाह भय जानु ।
निन्दा विसमय शान्त ये, नव थिति, भाव बखानु ॥"

हास्य के विभाव

विभाव, कारण, निमित्त और हेतु पर्याय हैं—

"विभाव कारणं निमित्त हेतुरिति पर्यायाः ।"

—(नाट्य शास्त्र)

हास्य की उत्पत्ति के कारण वस्तुमात्र में देखी हुई विकृति अथवा विपरीतता, व्यग्य दर्शन, परचेष्टा अनुकरण, असम्बद्ध प्रलाप आदि हैं। साहित्य-दर्पणकार ने लिखा है—

"विकृता कार वाक्चेष्टं ममालोक्य हसेज्जन. ।
तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥"

—(साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, पृष्ठ १५१)

जिनकी विकृति-आकृति, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि को देख कर लोग हँसे वह यहा आलम्बन और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं।

हास्य-रस के अनुभाव

जो स्थायी भावो का अनुभव कराने में समर्थ हो, अनुभाव कहलाते हैं—

"अनुभावयन्ति इति अनुभावा।"

अमरकोपकार ने "अनुभाव" शब्द का अर्थ किया है—"अनुभावो भाव बोधक" अनुभाव वास्तव में शारीरिक चेष्टाएँ हैं। इन्ही के द्वारा आदि स्थायी-भाव काव्य में शब्दो द्वारा और नाटक में आश्रय की चेष्टाओ द्वारा प्रकट होते हैं। अनुभाव रस-उत्पन्न हो जाने की सूचना भी देते हैं और रस की पुष्टि भी करते है। आचार्य विश्वनाथ ने हास्य रस के अनुभाव इस प्रकार बताये हैं—

"अनुभावोऽक्षिसकोच वदन स्मेरतादय·।"

—(साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, पृष्ठ १५८)

नयनो का मुकुलित होना और वदन का विकसित होना इसके अनुभाव है।

हास्य-रस के संचारी भाव

साहित्यदर्पणकार ने सचारीभावो की व्याख्या इस प्रकार की है—

"विशेपादिभिमुख्येन चरणाद्वयभिचारिण।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नालयास्त्रिशच्च तद्विद॥"

जो विशेपतया अनियमित रूप से चलते हैं वे व्यभिचारी कहलाते हैं। ये स्थायी भाव में समुद्र की लहरो की भाति आविर्भूत तथा तिरोभूत होकर अनुकूलता से व्याप्त रहते हैं। सचारी भावो को अन्तर-सचारी वा मन सचारी भी कहा है। इन्ही को व्यभिचारी भाव भी कहा है क्योकि एक ही भाव भिन्न-भिन्न रसो के साथ पाया जाता है। इनकी सख्या कुल मिलाकर ३३ मानी गई है। महाकवि देव ने एक चौंतीसवाँ 'छल' सचारी भाव भी माना है। नाट्य शास्त्र में भी इनका उल्लेख है। अर्थ-गोपन, आलस्य, निन्द्रा, तन्द्रा स्वप्न आदि हास्य के व्यभिचारी भाव माने गये हैं। साहित्यदर्पणकार ने लिखा है—

"निद्रालस्या वहित्याद्या अत्र स्तुर्व्यभिचारिण।"

अर्थात् निद्रा, आलस्य एव अवहित्या आदि इसके सचारी होते हैं।

आचार्य शुक्ल जी ने आलस्य, निद्रा आदि को त्याज्य ठहरा दिया है। विवादास्पद प्रश्न यह है कि हास्य के आलम्बन में निद्रा, आलस्य आदि का होना तो समझ मे आता है किन्तु आश्रय में आलस्य, निद्रा आदि की सचारी स्थिति कैसे होगी ? वास्तव में यह शका निर्मूल है। एक पण्डित जी की नीरस कथा सुनते-सुनते श्रोता सो जाते हैं तो पण्डित जी आलम्बन के रूप मे होते ही हैं। साथ में आश्रय के रूप मे श्रोतागण भी निद्रा सचारी के शिकार हो ही जाते हैं। इसी प्रकार आलस्य सचारी की स्थिति है। किसी धूर्त ज्योतिषी के बहकाने में आकर कोई मनुष्य मकान मे धन निकलने की आशा से खोदता चला जाता है और निराशा होने से बन्द कर देता है, श्लथ होकर बैठ जाता है तथा पण्डित जी के लाख प्रोत्साहन देने तथा पड़ोसियो के समझाने तथा मन्त्रोच्चारण पर भी उसे सिवाय जँभाई के कुछ बात नही सूझती। उसका आलस्य ज्योतिषी के झूठे वायदो के विरुद्ध प्रतिक्रिया है। यहाँ पर पण्डित जी भी हास्य के आलम्बन थे तथा आश्रय के रूप में यह मनुष्य भी आलस्य का शिकार हो जाता है। अवहित्था सचारी की भी यही दशा है। एक व्यक्ति का परिचित उसके पुत्र की मूर्खतापूर्ण बातो की ओर आकर्षित होता है। पिता अपनी लज्जा छिपाने के हेतु परिचित से उसके कुशल समाचार पूछने लगता है। यहाँ पुत्र के प्रति पिता की अवहित्था पुत्र के साथ पिता को भी हास्यास्पद बनायेगी।

हास्य के सचारियो का व्यवहार तथा प्रभाव की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण अधिक समीचीन प्रतीत होता है—

(१) स्नेहन—जहा करुणा सचारी होकर आलम्बन के प्रति हास्य को तरल तथा स्वीकार्य बनाती है।

(२) उपहासक—जहाँ सचारी आकर हास्य आलम्बन को तिरस्कार्य भी बना देता है।

(३) विभावसंक्रमिति—जहा सचारी आश्रय को भी स्वतन्त्र आलबन बना देता है। लाड प्यार से बिगड़ा लड़का बाप की दाढ़ी मूछ उखाड़ता है। बाप का ऐसे बेटे पर प्यार आना उसे (बाप को) आश्रय से आलम्बन बना देता है।

(४) परिहासक—बेसुरे सगीतकार के गाने पर धीरे-धीरे लोगों का सो जाना, अरुचि से उत्पन्न यह निद्रा सगीत के माधुर्य पर व्यग्य है।

(५) रेचक—लक्ष्मण की उग्रता तथा अमर्ष से परशुराम हास्यास्पद भी हो जाते हैं, उनके प्रति प्रतिशोध की भावना का भी रेचन होता चलता है।

(६) उहामूलक—जैसे वितर्क, पहेलिका, विमूढता आदि।"[१]

हास्य-रस पर पुरुषत्व का आरोप

जिस प्रकार हिन्दू संस्कृति में चार वर्ण होते हैं और उनके गुण विभिन्न माने जाते हैं उसी प्रकार रसो का भी वर्गीकरण किया जा सकता है। हास्य से मनुष्य का चित्त सदैव प्रसन्न रहता है। जिस समय मनुष्य हास्य का अनुभव करता है अपने सब दुखो को भूल जाता है। ब्राह्मण के गुणो में भी यह है कि वह सुख तथा दुःख में आसक्त न होकर सदैव प्रसन्नता से अपना कार्य करता है इसीलिए हास्य का वर्ण ब्राह्मण माना जा सकता है।

इसी प्रकार रसो के देवता भी अलग-अलग माने गये हैं। विष्णु भगवान ने नारद जी को बन्दर का चेहरा देकर एक षोडशी से उनका उपहास करवाया था। इसी पौराणिक कथा के प्रसग में जब वह कन्या नारद जी के उस रूप को देखकर डर गई तथा जिस पंक्ति में नारद जी बैठे थे उधर ध्यान ही नही दिया तथा विष्णु भगवान के गले में माला डाल दी तो नारद जी यह देखकर बहुत क्रोधित हुए और वहा से चल दिए। मार्ग में शिवजी के प्रथम नायक गण ने इनसे दिल्लगी की और कहा, "आप अपने रूप को दर्पण में तो देखिए"। नारद जी ने जब अपना रूप देखा तो और भी क्रोध बढा और विष्णु तथा प्रथम दोनो को श्राप दिए। इसी हास्य के सम्बन्ध से प्रथम को हास्य का देवता माना है।

जिस प्रकार मनुष्यो के मित्र एव शत्रु होते हैं उसी प्रकार रसो के भी होते हैं। हास्य के मित्र शृङ्गार तथा अद्भुत एव शत्रु भयानक, करुणा, रौद्र तथा वीर माने जाते हैं। करुण रस तथा हास्यरस के विरोध के सम्बन्ध में विवाद है जिसका विवेचन आगे किया जावेगा।

हास्य के भेद

साहित्य-दर्पण में हास्य के ६ भेद किये गये हैं—

"ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्याना विहसिता वहसिते च।
नीचानामपहसित तथापि हसित तदेष षड्भेद ॥

१ हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य—जगदीश पाडे, पृष्ठ ६४

ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताधरम् ।
किंचिल्लक्ष्यद्विम तत्र हसितं कथितं बुधैः ॥
मधुरस्वरं विहसितं सांसशिरः कम्पमवहसितम् ।
अपहसितं सास्राक्षं विक्षिप्ताङ्गं (च) भवत्यति हसितम् ॥"[1]

अर्थात् (१) स्मित, (२) हसित, (३) विहसित (४) उपहसित, (५) अपहसित, (६) अतिहसित । इनमें से स्मित और हसित श्रेष्ठ लोगो के योग्य है, विहसित और उपहसित दोनो प्रकार मध्यम श्रेणी के माने गये है, और अपहसित तथा अतिहसित हासो की गणना अधम कोटि मे की गई है ।

जिस दशा में कपोलो पर तनिक सिकुडन पडती है, आँखें कुछ विकसित होती है, नीचे का होठ कुछ हिलने या फडकने लगता है, दाँत दिखलाई नही पडते, दृष्टि कुछ कटाक्षपूर्ण हो जाती है और इन सब कारणो से चेहरे पर एक प्रकार का माधुर्य्य आता है तो उसे "स्मित" हास्य कहते है । जिस हास में मुह, गाल और आँखें फूली हुई जान पडती है और दाँतो की पंक्तियाँ कुछ दिखलाई पडती है उसे हसित कहते है । विहसित में हँसने की क्रिया शब्द-युक्त होती है और लोग उसे सुन लेते है और इसमें आँखें कुछ सिकुड जाती है । उपहसित में नथने फूल जाते है, सिर और कन्धे सिकुड जाते है और दृष्टि कुछ वक्र हो जाती है । जिस हास्य के कारण आँखो में जल आ जाय, सिर तथा कन्धे स्पष्ट रूप मे हिलने लगे और मनुष्य अपना पेट पकड ले उसे अपहसित कहते है । अतिहसित में हास्य के सब लक्षण और परिणाम बहुत ही स्पष्ट होते है और मनुष्य को हँसते-हँसते पेट पकडना पड़ता है ।

रामचरन तर्कवागीश ने अपनी टीका में इन भेदों को हास्यरस के स्थायी भाव हास का भेद माना है । "हास्यरस स्थायिभावस्य हासस्य भेदानाह—ज्येष्ठानामिति"—जो कि सर्वथा असगत है । स्थायीभावो का निवास अन्त करण या आत्मा में है, शरीर में नही । स्मित आदि भेदो के उपरोक्त लक्षणो से ही स्पष्ट है कि ये शरीर में रहते है । अत. ये हसन क्रिया के ही भेद है, हास (स्थायी भाव) के नही ।

पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रस-गंगाधर' में हास्य के भेद अन्य प्रकार के माने है :—

१. साहित्यदर्पण—शालिग्राम जी की टीका—पृष्ठ १५८, श्लोक २१७ ।

"आत्मस्थः परसस्थश्चेत्यस्य भेद द्वय मत ।
आत्मस्थो दृष्टिरुत्पन्नो विभाविक्षण मात्रत ॥
हसत मपर दृष्ट्वा विभावश्चोप जायते ।
योऽसौ हास्य रसतज्जै परस्य परिकीर्त्तित ॥
उत्तमाना मध्यमाना नीचानामप्य सौ भवेत् ।
व्यवस्थ काचितस्तस्य षड्भेदा सन्तिचापरा ॥"

हास्य-रस दो प्रकार का होता है—एक आत्मस्थ, दूसरा परस्थ। आत्मस्थ उसे कहते है जो देखने वाले को हास्य के विपय को देखने मात्र से उत्पन्न हो जाता है और जो हास्य-रस दूसरे के कारण ही होता है उसे रसज्ञ पुरुष परस्थ कहते हैं। यह उत्तम, मध्यम और अधम तीनो प्रकार के व्यक्तियो में उत्पन्न होता है। अत इसकी तीन अवस्थाएँ कहलाती है एव उसके और छ भेद है। उत्तम में हसित और स्मित, मध्यम में विहसित और उपहसित तथा नीच में अपहसित और अतिहसित होते हैं।

आचार्य भरत ने हास्य के दो विभाग किये हैं—आत्मस्थ और परस्थ। जब पात्र स्वय हसता है तो आत्मस्थ है, जब दूसरे को हँसाता है तो परस्थ है। पडितराज जगन्नाथ ने हास्य के विभाव को देखने से जो हास्य उत्पन्न होता है उसे आत्मस्थ माना है और किसी अन्य को हँसता हुआ देख कर जो हास्य उत्पन्न होता है उसे परस्थ माना है।

डा० रामकुमार वर्मा ने दोनो प्रकार के भेदो का सम्मिश्रण करते हुए लिखा है—"वस्तुत अपने प्रभाव की दृष्टि से हास्य तीन प्रकार का माना गया, उत्तम, मध्यम और अधम। इन तीनो प्रकारों में प्रत्येक के दो भेद हैं। उत्तम के भेद हैं स्मित और हसित, मध्यम के भेद हैं विहसित और उपहसित तथा अधम के भेद हैं अपहसित और अतिहसित। ये प्रत्येक भेद आत्मस्थ और परस्थ हो सकते हैं। इस प्रकार निम्नलिखित प्रकार से हँसने की क्रिया वारह तरह से हो सकती है—[1]

१ दृश्य-काव्य में हास्य-तत्व—"आलोचना", जनवरी १६५५ पृष्ठ ६४
—डा० रामकुमार वर्मा

हास्य रस-राज है

संस्कृत साहित्य के आचार्यों तथा हिन्दी साहित्य के लक्षण-ग्रन्थों के लेखकों ने शृङ्गार रस को ही रस-राज माना है। लक्षण ग्रन्थों में अधिकतर शृङ्गार रस के ऊपर ही सबसे अधिक विवेचन मिलता है, अन्य रसों का वर्णन तो परम्परा-पालन के हेतु ही किया गया प्रतीत होता है।

महाकवि देव ने शृङ्गार को रसराज कहा है—

"निर्मल शुद्ध सिगार रस, देव अकास अनन्त।
उडि-उडि खग ज्यों और रस, विवस न पावत अन्त॥"

उत्तररामचरित के रचयिता संस्कृत साहित्य की विभूति महाकवि भवभूति ने—"एको रस करुण एव." और आचार्य विश्वनाथ ने अपने एक गुरु-जन पितृदेव या पितृकधर्म दत्त जी का एक श्लोक—

"रस सारश्चमत्कार. सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कार रसासत्वे सर्वत्राप्यद्भुता रस॥"

उद्धृत कर अद्भुत-रस को शीर्षस्थान दिए जाने की ओर संकेत किया। हास्य-रस को रसराज बनाने का प्रयास सर्वप्रथम श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने अपनी पुस्तक "सुभाषित आणि विनोद" में किया। उसी पुस्तक के आधार पर सन् १९१५-१६ में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में "हास्य रस" शीर्षक एक लेखमाला निकली थी जिसमें हास्य रस को रस-राज सिद्ध किया गया था। यह विवेचन उसी आधार पर है।

शृङ्गार रस के समर्थको का कहना है कि मानव सृष्टि की परम्परा चलाने के लिए रतिभाव ही शृङ्गार रस का स्थायी भाव है इसलिए शृङ्गार रस को ही पहला स्थान मिलना चाहिए। जिस प्रकार प्रजोत्पत्ति के लिए रति-भाव आवश्यक है उसी प्रकार प्रजा-सरक्षण के लिए "वात्सल्य भाव" आवश्यक है। यदि प्रजा का पालन ही नही होगा तो सृष्टि-परम्परा चल ही नही सकती। पाश्चात्य देशो में स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रीति के कारण सन्तति की कामना का भी कुछ अशो में विरोध या ह्रास ही होता है। जब वात्सल्य रस सृष्टि चलाने में इतना आवश्यक है तो वात्सल्य रस ही शृङ्गार रस से अधिक महत्वपूर्ण ठहरता है।

शृङ्गार रस के समर्थको का यह भी कथन है कि साधारणत उसकी व्याप्ति समस्त सजीव जगत में पाई जाती है जब कि हास्य-रस केवल मनुष्य जाति तक ही सीमित है। किन्तु थोडा विचार करने से स्पष्ट हो जायगा कि यह तो हास्य-रस के रसराज होने का सबसे बडा कारण है। मनुष्य जाति सब जातियो में श्रेष्ठ है क्योकि उसको बुद्धि मिली हुई है। मनुष्य ही रस का आनन्द ले सकता है। दूसरे हास्य रस का सम्बन्ध मन से है। मन इन्द्रियो में सर्वश्रेष्ठ है। शृङ्गार रस का आनन्द लेने वाली इन्द्रियाँ पशुओ में भी पाई जाती हैं लेकिन हास्य का सम्बन्ध मन से तथा बुद्धि से है। यह मनुष्यो में ही पाई जाती है। मनुष्य मात्र को शृङ्गार का अनुभव केवल कुछ नियमित काल तक ही रहता है जब कि हास्य रस का अनुभव जन्म से मृत्यु तक रहता है। श्री केल-कर ने लिखा है—

"चाहे मनुष्य मात्र के जीवन में होने वाली भावजागृति के विचार से देखिए, चाहे उससे होने वाले आनन्द और उसके उपयोग की दृष्टि से देखिए, हास्य, करुण और वीर ये तीनो रस शृ गार रस की अपेक्षा अधिक महत्व के प्रमाणित होंगे क्योंकि प्राय हास्य और शोक में ही मनुष्य मात्र का अनुभव बँटा हुआ है। आनन्द उत्पन्न करने वाला पदार्थ प्राप्त करने से दु ख उत्पन्न करने वाली बात टालने में ही मनुष्य मात्र की सारी प्रवृत्ति रहती है। हा, यदि यह कहा जाय कि हास्य और करुण रस का अनुभव मनुष्य को पग-पग पर हुआ करता है तो कुछ अनुचित न होगा।" [१]

करुण और हास्य में भी मनुष्य को हास्य रस का अनुभव ही अधिक होता है। करुण रस का स्थायी भाव इष्ट का नाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति

१. केलकर द्वारा रचित 'हास्य-रस'—पृष्ठ ६८—अनुवादक—श्री रामचन्द्र वर्मा

है। वास्तव मे मनुष्य अपने दुःख में ही दुःखी नही होता वरन् दूसरे के दुःख को देख कर भी दुःखी होता है। लेकिन ऐसे लोगों की संख्या कम है जो कि दूसरे के दुःख को देख कर भी उतने ही दुःखी हो जितने अपने दुःख से दुःखी होते हैं। परन्तु हास्य के सम्बन्ध में यह बात नही है। "असम्बद्धता" हास्य का मूल है। संसार में असम्बद्धता प्रायः पग-पग पर दिखलाई पडती है और वह असम्बद्धता चाहे अपने से सम्बन्ध रखती हो और चाहे पराये से, उसे देख कर मनुष्य को मनोविनोद अवश्य होता है।

श्री हरिऔध ने "रस-कलश" में उपरोक्त विवाद पर अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—

"हास्य रस मनुष्य तक परिमित है इसलिए न तो वह शृङ्गार के इतना व्यापक है और न उसके इतना आस्वादित होता है। उसमें सृजनशक्ति भी नहीं है अतएव वह अपूर्ण और गौणभूत है। यदि शृङ्गार रस जीवन है तो वह आनन्द, यदि वह प्रसून है तो यह है विकास, जिससे दोनो में आधार आधेय का सम्बन्ध पाया जाता है। आधेय से आधार का प्रधान होना स्पष्ट है।" [1]

शृङ्गार रस यौवन तक परिमित है परन्तु हास्य रस समान भाव से बाल्यावस्था, यौवन और वृद्धावस्था, तीनों में उदित होता है इसका उत्तर वे देते हैं—"इस विचार में एक देश-दर्शन है क्योंकि शृङ्गार का एक देशी रूप सामने रक्खा गया है। तर्ककर्ता ने सर्व देशी शृङ्गार रस के व्यापक रूप पर दृष्टि नहीं डाली। यदि उसके उद्दीपन विषयो को ही सामने रक्खा जाता तो ऐसी बात न कही जाती। क्या मलयानिल युवकों को ही मुग्ध बनाता है, बाल वृद्ध को नहीं? क्या हँसता हुआ मयंक, रस बरसाते हुए घन, पुष्प-संसार-विलसित वसंत, पपीहे की पिहक, कोकिल की काकली और मयूर का नर्तन, बालक और वृद्ध को आनन्द निमग्न करने की सामग्री नहीं है?...किसी किसी का यह कथन भी है कि जीवन सुख-दुःख पर ही अवलम्बित रहता है, दुःख का रोदन और सुख का हास सम्बल है। इसलिए जीवन का सम्बन्ध जितना करुण रस और हास्य से है अन्य किसी रस से नहीं। किन्तु शृङ्गार अस्तित्व में आए विना दुःख-सुख की कल्पना हो ही नहीं सकती। अग्निपुराण के आधार से यह बात प्रतिपादित हो चुकी है और किस प्रकार शृङ्गार से हास्य रस और करुण रस की उत्पत्ति होती है यह भी बतलाया जा चुका है। मेरा विचार है कि जिस पहलू से विचार किया जाएगा शृङ्गार पर हास्य को प्रधानता न मिल सकेगी।[2]

---

१. रस कलश—हरिऔध—पृष्ठ १०३
२. रसकलश—हरिऔध—पृष्ठ १०४

श्री बाबूराम बित्थारिया ने अपने 'नवरस' ग्रन्थ में इस शका का समाधान करते हुए लिखा है—"मनुष्य की चारो अवस्थाओं में सर्वश्रेष्ठ मानी जाने वाली युवावस्था के सम्बन्ध में निश्चित किया जाना चाहिए। युवावस्था में शृङ्गार रस ही प्रधान है। ' .... लोग हास्य और करुणा के लिए कहते हैं कि उनका आविर्भाव बाल्यावस्था में ही हो जाता है और सदैव रहता है। इसका कारण वह प्रधान है। परन्तु यह कहते समय स्यात् वह यह नहीं सोचते कि शृङ्गार की मुख्य जड प्रेम भी तो बाल्यावस्था से ही अकुरित होता है। प्रथम बालक प्रेम, माता-पिता, भाई-बन्धु इत्यादि से होता है फिर वही प्रेम यथावसर स्त्री में होता है। प्रेम वस्तुत एक ही है।"[1]

वास्तव में देखा जाय तो उपरोक्त विद्वानो के पक्ष विपक्ष के प्रतिपादन से तत्व यह निकलता है कि हास्य रस भी कम महत्वपूर्ण रस नही है। एव अब तक इसकी जो उपेक्षा की गई है वह अवाछनीय है। जीवन में शृङ्गार रस का जितना महत्व है हास्य रस का महत्व भी उससे कम नही है। हास्य रस शृङ्गार रस से व्यापक अधिक है यह भी निर्विवाद है। यह बात भी माननी पडेगी कि भारतीय विद्वान् ही नही वरन् शृङ्गार की महत्ता विदेशी विद्वान भी मानते हैं जिनमें फ्रायड के सिद्धान्त इसके साक्षी है। हरिऔध जी का यह कथन कि यदि शृङ्गार प्रसून है तो हास्य विकास भी इस बात को पुष्ट करता है कि हास्य रस का महत्व शृङ्गार रस के महत्व से कम नही। पुष्प का यदि विकास ही न होगा तो उसमें सुन्दरता कैसे आ सकती है ? जहाँ तक रसो के अनुभव का प्रश्न है, मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक अनुभव हास्य रस का ही होता है, अन्य किसी रस का नही। श्री बित्थारिया जी का कथन कि युवावस्था ही मनुष्य की सब से महत्वपूर्ण अवस्था है और शृङ्गार रस युवावस्था में महत्वपूर्ण होता है, तर्क सम्मत इसलिये नही कि युवावस्था का महत्व मनुष्य के पूरे जीवन से अधिक महत्व का नही माना जा सकता। मनुष्य के चरित्र निर्माण एव शरीर निर्माण में युवावस्था के पूर्व का भाग भी कितना महत्वपूर्ण है इस पर दो मत नही हो सकते। बालपन से ही मनुष्य के जीवन में हास्य का कितना महत्वपूर्ण स्थान है यह किसी से छिपा नही है।

"आहार निद्रा भय मैथुनानि, सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणा।"

आदि सर्व-मान्य वचन से यह बात स्पष्ट है कि अन्य सब इन्द्रियो की

---

१. हिन्दी काव्य में नव रस—बाबूराम बित्थारिया—पृष्ठ २५५

क्रियाओं की अपेक्षा मन-इन्द्रिय और उनकी क्रिया का अधिक महत्व है। हास्य रस मन की क्रिया पर अवलम्बित है। इस बात का खण्डन अभी तक कोई नही कर सका। इसमें हास्य रस के महत्व का स्पष्टीकरण हो जाता है। रस का प्राण आनन्द में है, आनन्द का मूल प्रसन्नता है और प्रसन्नता हास्य में प्रत्यक्ष और मूर्तिमती हो जाती है।

अन्त मे यही कहा जा सकता है कि हास्य को रसराज भले ही न माना जाय किन्तु इस तथ्य को स्वीकार करने में किसी को भी सन्देह न होना चाहिए कि हास्य रस का महत्व किसी भी अन्य रस से कम नही है और यदि रसराज किसी रस को बनाना ही अभीष्ट है तो हास्य रस भी अपना नाम अन्य रसो के साथ चुनाव मे भेजने का अधिकारी है और उसकी जीत में किसी को सन्देह न होना चाहिए।

हास्य के प्रकारो के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(१) स्मित—"विचरत ब्रज वनितान के, सखि मोहन मृदुकाय।
चीर चोरि कुकदम्ब पै, कछुक रहे मुसिक्याय॥"
—(जगद्विनोद-पद्माकर)

(२) हसित—"जाने को पान खवावन क्यो हूँ गई लगि आंगुली ओठ नवीने,
तै चितयौ तबही तिहि भाँति जु लाल के लोचन लोलि से लीने।
बात कही हर ये हँसि कै सुनि मै समुझी वे महारस भीने
जानति हौं पिय के जिय के अभिलाप सबै परिपूरण कीने॥"
—(केशव—रसिक प्रिया)

(३) विहसित—"हँसने लगे तब हरि अहा, पूर्णेन्दु सा मुख खिल गया,
हँसना उसी में भीम अर्जुन, सात्यकी का मिल गया।
वे मोद और विनोद के सब, सरल झोंके झेलते,
भगवान भक्तों मे न जाने, खेल क्या क्या खेलते।"
—(मैथिलीशरण गुप्त—जयद्रथ वध)

(४) उपहसित—"ज्यो ज्यो पट झटकति हंसति, हठति नचावति नैन,
त्यों त्यो परम उदारहू, फगुवा देत बनैन।"
—(बिहारी)

(५) अपहसित—"चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराय सुनाय सुहोरी,
बेंदी विशाखा रची पदमाकर अंजन आंजि समाजि कै रोरी।

लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह कौं कंचुकी केसरि बोरी,
हेरि हरे मुसकाइ रही अंचरा मुख दै वृषभान किशोरी।"
—(पद्माकर-जगद्विनोद)

(६) अतिहसित—"सुनकर निज सुत के वचन विलक्षण ऐसे,
कर अट्ट-हास घन घट्ट नाद हो जैसे।
बोला ओ उद्धत असुर राज उत्पाती,
उन्मत्त सुरापी सर्वलोक-संघाती॥"
—(मैथिलीशरण गुप्त—प्रह्लाद)

अब हास्य रस का एक उदाहरण लीजिये—

"कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू, बिनु पद कर कोउ बहुपद बाहू,
विपुल नयन कोउ नयन विहीना, रिष्टपुष्ट तन कोउ अति छीना;
शिवहिं शंभु गण करहिं सिंगारा, जटा मुकुट अहि मौर सम्हारा,
कुंडल कंकण पहिरे व्याला, तन विभूति पट केहरि छाला;
गरल कंठ उर नर शिरमाला, अशिव वेष शिवधाम कृपाला,
कर त्रिशूल अरु डमरु विराजा, चले वृषभ चढ़ि बाजहिं बाजा;
देखि शिवहिं सुरतिय मुसकाहीं, बर लायक दुलहिन जग नाहीं॥
विष्णु कहा अस विहँसि तब, बोलि सकल दिशिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज॥"
—(महाकवि तुलसीदास-रामचरितमानस)

यहाँ महादेव जी के गण आलम्बन विभाव हैं, क्योंकि उनको देख कर हँसी आती है। उद्दीपन उनके शरीर की असम्बद्धता, कुरूपता और विकृति इत्यादि हैं क्योंकि इनके द्वारा हँसी उद्दीप्त होती है। उनकी उक्त दशाओं द्वारा मध्योच्चस्वर से हँसना जो हास्य का अनुभव करता है, अनुभाव तथा हर्ष संचारी भाव हैं। इन विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के मिलने से 'हास्य' स्थायी हुआ, अतः हास्य रस है।[1]

हास्य का पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि से विवेचन

"प्रसिद्ध कलाकार होगार्थ ने किसी प्रहसन का अभिनय देखते हुए कुछ पाश्चात्य हास्य रसाचार्यों का एक चित्र अंकित किया है जिसमें उन्होंने बड़े कौशल के साथ उनकी भाव-भंगी का सजीव चित्रण करते हुए वहाँ के हास्य-

१. हिन्दी काव्य में नवरस—बाबूराम बित्थारिया।

साहित्य की अपने ढग से विशद आलोचना की है। एक ओर अरिस्टोफेनीज की उन्मुक्त हँसी है दूसरी ओर जुवेनल का उद्दीप्त कठोर हास्य, इधर सर्वन्टीज यथेष्ट सयम के साथ बडे आदमियो की भाति हँस रहे हैं उधर मिल्टन की आत्मा एलीजा की भाति आग्ल-स्वातन्त्र्य के विरोधियो पर अपने भयंकर और घृणापूर्ण अट्टहास के द्वारा प्रहार कर रही है। इसी प्रकार उन्होने और लेखको का भी दिग्दर्शन कराया है। पश्चिमी साहित्य में सदैव हास्य का एक प्रमुख स्थान रहा है। उनका घात प्रतिघातमय भौतिक जीवन रोना और हँसना ही अधिक जानता है इसीलिए रस का विवरण वे करुण (Pathos) और हास्य (Humour) पर लिख कर ही प्राय समाप्त कर दिया करते हैं।"[1]

विदेशी विद्वानो ने हास्य के पांच प्रभेद किये हैं—(१) स्मित हास्य (Humour), (२) वाक्छल (Wit), (३) व्यंग्य (Satire), (४) वक्रोक्ति (Irony), और (५) प्रहसन (Farce).

हास्य (Humour)

हास्य का यह सर्वोत्तम स्वरूप है। अपने यहा के "स्मित" से अधिक साम्य होने के कारण इसे "स्मित" कह सकते हैं। वास्तव में "स्मित" एक अत्यन्त सूक्ष्म और तरल मानसिक वृत्ति है। उसकी तरलता के कारण ही उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं। प्रसिद्ध तत्ववेत्ता सली के अनुसार यह एक मनोविकार होते हुए भी बौद्धिकता का पर्याप्त अश लिए हुए है—"Humour is distinctly a sentiment yet at the same time it is markedly intellectual". वास्तव में इसकी प्रकृति का निर्माण सयम, सहानुभूति, चिन्तन तथा करुणा—इन चारो गुणो द्वारा हुआ है। ए. निकाल ने अपनी पुस्तक "An Introduction to Dramatic Theory" में स्मित की व्याख्या करते हुए लिखा है—"If insensiblity is demanded for pure laughter, sensibility is renderd necessary for true humour. However we shall find it is often related to melancholy of a peculiar kind, not a fierce melancholy and a melancholy that arises out of pensive thoughts and a brooding on the ways of mankind" अर्थात् स्मित के लिए समझदारी आवश्यक है जब कि हँसना बेसमझदारी का हो सकता है। इसके लिए एक विशेष प्रकार के चिन्तन की भी आवश्यकता है जो कि रूखा चिन्तन ही न हो वरन् मनुष्यत्व पर सहानुभूतिपूर्ण विचार करने के उपरान्त उत्पन्न हुआ हो।

---

१. हिन्दी साहित्य में हास्य-रस—डा० नगेन्द्र–वीणा नवम्बर १९३७ पृष्ठ ३१

आलम्बन के प्रति सहानुभुति स्मित की जड है। शोपनहावर का कथन है कि विनोद के पीछे गुरु-गम्भीरता हो तो वहाँ स्मित की स्थिति होती है। स्मित के लिए घातक होते है—(१) प्रयोजन (२) सामान्यता (३) अतिवादिता (४) ईर्षा और (५) अस्वीकृति। ईर्षा से प्रेरित होकर कोई कलाकार सब कुछ कर सकता है, "स्मित" को जन्म नही दे सकता। "स्मित" का सम्बन्ध हास्यास्पद के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति से है। जब हास्य में कटुता आजायगी अथवा हास्य सोद्देश्य हो जायगा तब वह व्यग्य अथवा वक्रोति हो जायगा, स्मित नही रह सकेगा। जहाँ हास में ममता रहती है जिस पर हम हँसें वह हमारा प्रिय भी होता है वही तरल हास "स्मित" कहा जाता है। मेरिडिथ ने लिखा है—"If you laugh all round him, tumble him, roll him about, deal him a smack, and drop a tear on him, own his likeness to you and yours to your neighbour, spare him as little as you shun, pity him as much as you expose, it is a spirit of humour that is moving you"[1]

इसका भावार्थ यही है कि हास्यस्पद के प्रति उसकी हँसी उडाने तथा उससे प्रेम करने में सन्तुलन नही खोना चाहिए। उसकी हँसी उडाई जाय तो उसे प्रेम भी किया जाय। इन्ही महाशय के अनुसार—"The stroke of the great humourist is world-wide with lights of tragedy in his laughter[2] अर्थात् आलम्बन के प्रति करुणा के भाव भी आवश्यक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हास्य एव करुण रसो के सम्बन्व में मत प्रकट करते हुए लिखा है—

"जो बात हमारे यहाँ की रस-व्यवस्था के भीतर स्वत सिद्ध है वही योरप में इधर आकर एक आधुनिक सिद्धान्त के रूप में यों कही गई है कि उत्कृष्ट हास वही है जिसमें आलम्बन के प्रति एक प्रकार का प्रेम भाव उत्पन्न हो अर्थात वह प्रिय लगे। यहाँ तक तो बात बहुत ठीक रही पर योरप में नूतन प्रवर्त्तक बनने के लिए उत्सुक रहने वाले चुप कब रह सकते हैं। वे दो कदम आगे बढ़ कर आधुनिक 'मनुष्यतावाद' या 'भूतदया-वाद' का स्वर ऊँचा करते हुए बोले—'उत्कृष्ट हास वह है जिसमें आलम्बन के प्रति दया एवकरुणा उत्पन्न हो'। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह होली-मुहर्रम सर्वथा अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक और रस विरुद्ध है। दया या करुणा दु:खात्मक भाव है,

1 An essay on Comedy—Meredith page 79
2 An essay on Comedy—Meredith page 84

हास आनन्दात्मक। दोनो की एक साथ स्थिति बात ही बात है। यदि हास के साथ एक ही आश्रम में किसी और भाव का सामंजस्य हो सकता है तो प्रेम या भक्ति का ही।"[1] रस-पद्धति के अनुसार हास्य रस तथा करुण रस मे विरोध है कन्तु पाश्चात्य लेखको की धारणा है कि हास्य के साथ करुणा का सगम सोने में सुगन्ध का कार्य करता है। उनकी मान्यता है कि हमारे जीवन मे हास तथा करुणा का बहुत अधिक सम्बन्ध है। मि सली का कथन है—"हँसी तथा रुदन पास ही पास हैं। एक से दूसरे पर जाना बहुत सरल है। जब कि वृत्ति और कार्य में पूर्ण रीति से संलग्न हो तो कुछ उसी के समान दूसरे कार्य पर बडी जल्दी जा सकती है।"[2] वास्तव में करुण रस से आक्रान्त मानव को यदि बीच-बीच में हास्य का सहारा मिल जाता है तो वह थकान अनुभव नही कर पाता। इस लाभ के प्रति प्रसिद्ध नाटककार "ड्राइडन" ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है—"A continued gravity keeps the mind too much bent, we must refresh it [sometimes as we wait in a journey, has the some effect upon us which our Music has betwixt the acts, which we find a relief to us from the heat, plots and language of the stage if the discources have been long."

अर्थात निरन्तर की गम्भीरता मस्तिष्क को आक्रान्त किये रहती है। हमें अपने मस्तिष्क को कभी-कभी उसी तरह स्वस्थ तथा सजीव बना लेना चाहिए जिस प्रकार हम अधिक सुविधापूर्वक चलने के लिए मार्ग में ठहरते हैं। करुणा से मिश्रित हास्योत्पादक स्थल हमारे उपर उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार कि अङ्कों के बीच सगीत का विधान और इनसे हमें लम्बे कथावस्तु तथा कथोपकथन में—चाहे वह अत्यन्त विशिष्ट हो और उसकी भाषा अत्यन्त सजीव हो—विश्रान्ति भी मिलती है।

हम शुक्ल जी के मत से सहमत नही। उनका कारण यह है कि यदि आलम्बन इतना निर्लज्ज तथा चिकना है कि प्रेम द्वारा उन पर कोई प्रभाव नहीं पडता तो उनके प्रति घृणा का जाग्रत करना अनिवार्य सा हो जाता है।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण पृष्ठ ४७५।

2. The fact is that tears and laughter be in close proximity. It is but a slip from one to other The motor centres engaged when in full swing of one mode of action may readily pass to the other and partially similiar action.

दूसरे जव जीवन में सदैव से हँसने रोने का साथ रहा है, मनुष्य एक क्षरा रोता है दूसरे क्षरा हँसने लगता है तो क्या काररा है साहित्य में इन दोनो का ऐसा विरोध रहे। इसके अतिरिक्त गम्भीर नाटको आदि में हास्य का पुट रेगिस्तान में नखलिस्तान का काम देता है। इम विरोध का दूसरा काररा यह भी हो सकता है कि भारतीय शास्त्रीय पद्धति में हसन-क्रिया के भेद मिलते है, गुरा और प्रभाव की दृष्टि से वर्गीकररा पाश्चात्य साहित्य में ही मिलता है। व्यग्य (Satire) में द्वेष की भावना छिपी रहती है इसलिए जव आलम्वन का चित्ररा उस दृष्टिकोरा से किया जाता है तो आलम्वन के प्रति जव तक समाज में घृरा तथा करुरा के भाव जाग्रत न होगें तव तक लक्ष्य की सिद्धि होना असम्भव है।

स्मित हास्य वास्तव में करुरासिक्त हास है, मुक्तक हास है तथा सजल है। उदाहररा के लिए जगल में रहने वाले चित्रकूट में जव अपनी प्रशसा सुनते है तो कहते है—

"यह हमारि अति वड सेवकाई, लेहि न वासन वसन चुराई।"

ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि किरात अपने को चोर कह कर विनोद कर रहे हो, परन्तु वस्तुत राम के सामने वे अपने को वैसा ही समझते हैं। वे वध करते हैं, उनके तन पर वस्त्र नही, पेट खाली है, हिसक है, अधार्मिक है, इसलिए राम की कोई वडी सेवा तो वे कर नही सकते। उनका असतोष गुरु भाव से है। विनोद के पीछे ऐमी सावु गम्भीरता तथा गुरु भाव उन्हे स्मित हास का आलम्वन वनाता है।

हिन्दी में ऐमे निष्प्रयोजन, सवेदनशील, एव करुरासिक्त हास्य की कमी रही है जिसके काररो का उल्लेख आगामी अध्याय में किया जावेगा।

वाक्-वैदग्ध्य (Wit)

शब्दो में विवेक की मितव्ययिता वैदग्ध्य को जन्म देती है। वचनो की विदग्वता के काररा जो उक्ति-चमत्कार होता है उसे "विट" (wit) कहते है उक्ति-चमत्कार अथवा वाक्-वैदग्ध्य हास्य का एक वौद्धिक श्रोत है। इसके लिए विचारो का चमत्कारपूर्ण प्रयोग आवश्यक है। अरस्तू के अनुसार जिन "चटकीले शब्द-प्रवन्धो" की लोग वहुत प्रशसा करते है, वे अनुभवी और चतुर मनुष्यो के रचे हुए होते है और मुख्यत साधर्म्य, वैधर्म्य, विशद स्वभाव-वर्रान आदि के काररा उत्पन्न होते है। जिस चटकीले शब्द-प्रवन्ध का स्वरूप हमारे

यहाँ के सुभाषित और विनोद से मिलता जुलता है, उसमे हास्यरस का होना वह आवश्यक नही बतलाता। जान पडता है कि उसका तात्पर्य बहुत कुछ यही है कि उसमें अर्थ का चमत्कार अवश्य होना चाहिए। "चमत्कृति जनक रूपक" नाम का एक विशिष्ट प्रकार अरस्तू को बहुत पसन्द था जिसका वर्णन उसने इस प्रकार किया है—"ऐसा आनन्ददायक साम्य ढूंढ़ निकालना जो पहले कभी न देखा गया हो।" तथापि एसे चमत्कारिक और आनन्ददायक शब्द प्रयोग से हास्य रस की उत्पत्ति बहुत होती ही है, इसलिए यह कहने में विशेष आपत्ति नही दिखाई देती कि यह प्रकार निस्सन्देह अग्रेजी के "Wit" अथवा हिन्दी के "उक्ति-चमत्कार" या चोज की ही प्रतिकृति है। "एडिसन" के "Six papers on wit" नामक लेखमाला में "Humour" नामक निबन्ध में उसने नीचे लिखे अनुसार वंशावली दी है—

"Truth was the founder of the family and the father of good sense. Good sense was the father of wit who married a lady of a collateral line called Mirth, by whom he has issue humour. Humour being the youngest of this illustrious family, and descended from parents of such various dispositions, as very various and unequal in his temper. Sometimes you see him putting on grave looks and a solemn habit, sometimes airy in his behaviour and fantastic in his dress, in so much that at different times he appears as serious as a Judge and as jocular as a Meary Andrew. But as he has a great deal of the mother in him, whatever mood he is in, he never fails to make his company laugh"

इसका आशय यह है कि "परिहास" या "विनोद" के श्रेष्ठ घराने का मूल पुरुष "सत्य" है। "सत्य" को शोभनार्थ नामक लड़का हुआ। "शोभनार्थ" के यहां "उक्ति-चमत्कार" नामक लडका हुआ। "उक्ति-चमत्कार" ने अपने वंश की "आनन्दी" नामक लडकी से विवाह किया। इस दम्पत्ति से "विनोद" नामक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। "विनोद" का जन्म भिन्न-भिन्न स्वभावों के माता-पिता से हुआ था। इसलिए उसका स्वभाव भी विलक्षण हो गया है। कभी वह देखने में गम्भीर, कभी चचल और कभी विलासी जान पड़ता है। लेकिन उसमें विशेषतः उसकी माता के स्वभाव का ही अधिक अश आया है, इसलिए वह स्वयं चाहे जिस चित्त वृत्ति में रहे, दूसरो को वह बिना हँसाए नही रहता। इस छोटी-सी कहानी का तात्पर्य यह है कि एडीसन

के मत के अनुसार वचन वैदग्ध्य (Wit) मे सत्य और प्रौढ अर्थ होना चाहिए, उसमे केवल रिन्दगी नही होनी चाहिए। एडीसन ने Wit की व्याख्या करते हुए लिखा है—"Wit is the resemblance or contrast of Ideas that give the reader delight and surprise, especially the latter" अर्थात् पदार्थों के जिस सम्बन्ध-दर्शन में पाठको या श्रोताओ मे प्रसन्नता और आश्चर्य या चमत्कृति उत्पन्न हो और उसमे भी विशेषत चमत्कृति जान पडे, उसे Wit कहते हैं। इसके पूर्व के कवि ड्राइडन (Dryden) ने Wit की व्यारया इस प्रकार की हे—"Propriety of word and thought adopted to the Subject' अर्थात् "विषय के अनुसार विचार और भाषा-प्रयोग का औचित्य"। एडीसन ने भाषा के औचित्य शब्द से मतभेद प्रकट करते हुए कहा हे कि यदि भाषा का ओचित्य उक्ति चमत्कार का विशेष गुण हे तो ज्यामिति की पुस्तके भी Wit के अन्तर्गत आ जायेगी जो कि असगत हे।

"वस्तुत 'विट' में रस और चमत्कार दोनों का होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ—खरहे ने बलवान सिंह को कुआ झँकाकर अपनी जान बचा ली, इससे खरहे की चालाकी का पता चला। शेर अपनी मॉद के द्वार तक तो लोमडी को ले जासका पर वही लोमडी ठिठक गयी और उसने कहा, 'महा-राज, बाहर से गुफा में जाने वाले के पद चिन्ह तो हैं पर लौटने वालो का तो निशान तक नही।' और वह भग आयी। यह बुद्धि की सूझ है। हम लोमडी की तारीफ करते है। इस तरह के वैदग्ध्य में चमत्कार है, रस नही। पर जब लोमडी कहती है, 'अजी, खट्टे अगूर कौन खाय' तो वॉछित लाभ से जो निराशा हुई उस निराशा या लज्जा को छिपाने के लिए जो तर्क गढ़ लिया जाता हे तो वह अवहित्या ही हे। लजा जाने पर लोग अक्सर बात बदल देते है। यह वैदग्ध्य रसात्मक वैदग्ध्य है केवल बुद्धि-पटुता का चमत्कार नहीं।"[1]

हास्यकार वाक्य-वैदग्ध्य या मति-वैदग्ध्य को दो श्रेणियो मे बॉटा जा सकता ह—(१) चमत्कार वैदग्ध्य और (२) रसात्मक वैदग्ध्य। चमत्कार वैदग्ध्य में वाक्य या शब्द की अप्रत्याशित प्रयोग पटुता या विचारो का आरोप हैं। यदि ऐसी प्रयोग-पटुता जीवन की कोई ऐसी परिस्थिति भी सामने लाती है जिसमें भाव सचारण की क्षमता हे तो उक्ति का गुण रसात्मक हो जाता है। अतएव उक्ति वैदग्ध्य को केवल बौद्धिक कहना शीघ्रता है। फायड ने इसे

१ हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पांडे—पृष्ठ ८२।

दो प्रकार का माना है—(१) सहज चमत्कार (Harmless Wit) और (२) प्रवृत्ति चमत्कार (Tendency Wit)। सहज चमत्कार में केवल विनोद मात्र रहता है किन्तु प्रवृत्ति चमत्कार में ऐन्द्रियक या प्रतीकारात्मक भावना रहती है। "वाक् वैदग्ध्य की एक विशिष्टता उसकी सामाजिकता है। हास तथा हास्य के विपरीत इसमें तीन पायों की आवश्यकता होती है। प्रथम वह जिनके द्वारा प्रयोग किया जाय, दूसरा वह जिसके लिए प्रयोग हो और तीसरा वह जिसके द्वारा सुनाया जाय।[1] वैदग्ध्य हास्य का अत्यन्त उत्कृष्ट तथा कलापूर्ण अंग है जिसके कथोपकथन में नवजीवन का संचार होता है। वाक्य-वैदग्ध्य का प्रयोग भाषा तथा शैली पर पूर्ण अधिकार की अपेक्षा रखता है।

हिन्दी शब्द सागर में "चोज" की व्याख्या इस प्रकार की गई है—"वह चमत्कारपूर्ण उक्ति जिससे लोगों का मनोविनोद हो"; परन्तु उपरोक्त विवेचन को देखते हुए यह व्याख्या भी यथेष्ट समर्पक और व्यापक नहीं जान पड़ती। इधर हाल में अंग्रेजी के "वेब्स्टर" और "सेनचुरी" शब्दकोषों में Humour और Wit की जो नई व्याख्याएँ की गई हैं वे बहुत कुछ एक-सी हैं। उनके अनुसार Humour की व्याख्या है—"किसी घटना, क्रिया, परिस्थिति, लेख या विचारों की अभिव्यक्ति में रहने वाला वह तत्व जो उनकी असंबद्धता, बेढंगेपन आदि के कारण मनुष्य के मन में एक विशेष प्रकार का आनन्द या मज़ा उत्पन्न करता है।" उक्त कोषों के अनुसार Wit की परिभाषा है—"भाषण या लेख का वह गुण या तत्त्व जो किसी विचार और उसकी अभिव्यक्ति के ऐसे सुघड़ और सुन्दर सम्बन्ध से उत्पन्न होता है जो अपने अप्रत्याशित स्वरूप के द्वारा लोगों के मन में आश्चर्य और आनन्द उत्पन्न करता है।"

गुप्त जी के "साकेत" से एक छन्द Wit के उदाहरण देने के लिए पर्याप्त होगा। उर्मिला लक्ष्मण सम्वाद में—

"उर्मिला बोली, "अजी तुम जग गये,
स्वप्न-निधि से नयन कब से लग गये ?"
"मोहिनी ने मंत्र पढ़ तब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।"

---

१. हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य—श्री जि० ना० दीक्षित, पृष्ठ १००

इसी प्रकार पचवटी-प्रसग में भी देवर-भाभी के परिहास में वाक्-विदग्धता का अच्छा प्रयोग हुआ है। तिरस्कृता शूर्पणखा से सीता कहती है—

"अजी खिन्न तुम न हो हमारे ये देवर हैं ऐसे ही,
घर में ब्याही बहू छोड़ कर यहाँ भाग आये हैं ये।"

स्मित तथा वाक्-विदग्धता में भेद

स्मित हास्य एव वाक् विदग्धता दोनो का अन्यान्योश्रित सम्बन्ध है। दोनो का आधार असम्बद्धता है। जिस प्रकार चोज का विषय "पदार्थों की असम्बद्धता" है उसी प्रकार हास्य का विषय "मानवी स्वभाव और परिस्थिति सम्बन्धी असम्बद्धता" है। ये बातें जितनी अधिक सम्बद्धता दर्शक होगी विनोद भी उतना ही अधिक सरस होगा।

"लेहूट" ने Wit और Humour का अन्तर बताते हुए लिखा है—
"Wit and Humour are to be found sometimes apart but their richest effect is produced by their combination Wit apart from humour is an element to sport with, in combination with humour it runs into the richest utility and helps to humanise the world"

इनका आशय है कि यद्यपि दोनो भिन्न-लक्षणात्मक है किन्तु दोनो का सयोग और मिलाप वैसा ही होता है जैसे दूध और चीनी का।

हैजलिट ने अपने Humour and Wit नामक लेख में Wit तथा Humour का विवेचन इस प्रकार किया है—

"Humour is describing the ludicrous as it is in itself Wit is the exposing it by comparing or contrasting it with something else Humour is as it were the growth of natural and acquired absurdities of mankind or of the ludicrous in accidental situation and character, Wit is the illustrating and hightening the sense of that absurdity by some sudden and unexpected likeness or opposition of one thing to another which sets off the thing we laugh at or despise in a still more contemptible or striking point of view"

हैजलिट का विवेचन सबसे अधिक स्पष्ट है। उनके मतानुसार Wit और Humour दोनो के विषय हास्यकारक होते है, लेकिन Humour में हास्यकारक विषय का वर्णन स्वाभावोक्ति से किया जाता है और Wit में

वह वर्णन कुछ वक्रोक्ति से किया जाता है अर्थात् इस प्रकार के वर्णन में उपमा, विरोध-दर्शन आदि प्रकारों का व्यवहार आवश्यक होता है। Humour में जो चमत्कार होता है वह स्वाभाविक होता है, परन्तु Wit के लिए एक प्रकार की सुसंस्कृत कल्पना-शक्ति और कला-ज्ञान की आवश्यकता होती है।

वास्तव में चोज या वचन-विदग्धता अन्धकार को नाश करने के लिए स्वर्ग का प्रकाश है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चोज में जब तक चमत्कार या विलक्षणता न हो, तब तक काम नही चल सकता। इसलिए चोज की जो बात एक बार सुन ली जाती है वही फिर से सुनने में विशेष आनन्द नही आता। चोज में उस सौन्दर्य की भी आवश्यकता नही है जिससे काव्य अलंकृत होता है किंवा उसमे का प्रवेश—जिसे हम साधारणत. उपयुक्त बतलाते हैं ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसका परिणाम बुद्धितत्व पर पड़े। चोज में बुद्धिमत्ता का उपयोग तो होना चाहिए लेकिन उसका उपयोग पदार्थों के सुन्दर या उपयुक्त सम्बन्ध ढूंढ निकालने के लिए नही होना चाहिए बल्कि वह सम्बन्ध ढूंढ निकालने के लिए होना चाहिए जो अनपेक्षित, अद्भुत और चमत्कारजनक हो।

व्यंग्य (Satire)

सटायर का जन्म दृश्य काव्य से हुआ। रोमन्स तथा यूनानी दोनों ही अपने को इसका जन्मदाता मानते हैं। जूलियस "स्केलिगर" तथा "हैसियस" जो यूनानी विद्वान हैं उनका कहना है कि रोमन्स ने इसे यूनान से प्राप्त किया तथा "रिगलशियन" और "कैसावन" जो रोमन विद्वान हैं वे कहते हैं यूनान ने उनसे इसे प्राप्त किया है। "सटॅरस" एक विचित्र प्रकार का जन्तु होता है जिसके आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

प्रारम्भिक काल में रंगरेलियों, हँसी दिल्लगी, फक्कड़बाजी आदि जो पद्य में होने लगी थी, "नक़लों" में प्रस्तुत करते थे। "लिवोऐन्ड्रानिकस" ने सर्वप्रथम इनको शुद्ध और शिष्ट बनाकर दृश्यकाव्य का पद देकर नाटक के रूप में रक्खा। यह यूनानी गुलाम था। इसने नाटकों में इसका प्रयोग किया। "एनियस" ने सुन्दर पदों में इनका प्रथम बार प्रयोग किया। इनके बाद इस सम्प्रदाय को बढ़ाने वाले "होरेस", "जोवनिल" और "परसीयस" हैं। "होरेस" के यहां समाज की उन तमाम कुरीतियों पर व्यंग्य हैं जो यूनानियों की देखी नक़ल या उनके प्रभाव मे हो गयी हैं। फ्रान्स में "वायलो" ने भी सटायर को अपनाया। उर्दू में इसे "हजो" कहते हैं। प्रन्थ में हजो के लिये

नियम ये—(१) केवल उन्ही वस्तुओ तथा बातो पर हो जो स्वत. ऐसी घृणित और तिरस्कार के योग्य हो, (२) अपने पूर्वजो पर कदापि न हो, (३) सत्य व स्वाभाविक हो कि जल्द समझ में आ जायँ और प्रभाव पडे।

वास्तव में व्यग्य सोद्देश्य होता है। इसके द्वारा लेखक सदैव हँसी द्वारा दण्ड देना (to punish with laughter) चाहा करता है, अत स्वभावत उसमें कुछ चिडचिडापन आ जाता है। मेरीडिथ ने अपनी पुस्तक "The Idea of Comedy" में लिखा है—"If you detect the ridicule and your kindliness is chilled by it you are slipping into the grasp of satire"[1] अर्थात् अगर आप हास्यास्पद का इतना मजाक उडाते है कि उसमें आपकी दयालुता समाप्त हो जाय तो आप का हास्य व्यग्य की कोटि में आ जायगा।

व्यग्यकार की परिभाषा करते हुए मेरीडिथ ने लिखा है—"The Satirist is a moral agent, often a social scavenger working on a storage of bile"[2] अर्थात् व्यग्यकार एक सामाजिक ठेकेदार होता है, वहुधा वह एक सामाजिक सफाई करने वाला है जिसका कि काम गन्दगी के ढेर को साफ करना होता है। वास्तव में जब हास्य विशद आनन्द या रजन को छोड प्रयोजननिष्ठ हो जाता है वहाँ वह व्यग्य का मार्ग पकड लेता है। आलम्बन के प्रति तिरस्कार उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढने वाला हास्य व्यग्य कहलाता है। व्यग्य इसलिए विशेपत सामाजिक कुरीतियो, व्यवहारो या रूढिमुक्त परम्पराओ को हेय तथा हास्यास्पद रूप में रखने की चेष्टा करता है। व्यग्य के लिए तीन वातें आवश्यक हैं—(१) निन्दा, (२) सामाजिक हित, और (३) वर्तमान या जीवित लक्ष्य की सीमा। व्यग्य में हास्य इतना कठोर हो जाता है कि कभी कभी वह हास्य की सीमा से वाहर निकल जाता है।

ए निकाल ने लिखा है—"Satire can be so bitter that it ceases to be laughable in the very least Satire falls heavily It has no moral sense It has no pity, no kindliness, no magnanimity It lashes the physical appearance of person, sometimes with unmitigated cruelty It attacks the character of men It strikes at the manners of the age with a hand that spares not[3]

---

1 Idea of Comedy—Meridith, page 79
2 ——do—— „ „ 82
3 An Introduction to Dramatic Theory— A. Nicol

ए. निकाल का आशय यह है कि व्यंग्य में नैतिकता का अभाव होता है, इसमें दया, करुणा, उदारता के लिए गुंजाइश नहीं होती। मनुष्य की शारीरिक असम्बद्धता, चारित्रिक असम्बद्धता एवं सामाजिक असम्बद्धता पर यह निर्भयता से प्रहार करता है। व्यंग्य की भाषा में गुदगुदी कम, तिक्तता अधिक रहती है।

"व्यंग्य के लिये यथार्थ ही यथेष्ट विषय है। पर जहां यथार्थ के फेर में पड कर लोग रक्ताल्प ब्योरों को जुटाने में ही ऐतिहासिक साधुता का पाण्डित्य प्रदर्शन करने में ही रह जाते हैं वहां आलम्बनों को हम परिचित पाकर निंद्य तो समझ लेते हैं पर हँस नहीं पाते।"[1]

हिन्दी साहित्य में हास्य का यह प्रभेद प्रचुर मात्रा में मिलता है। धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य सुधारों के लिए इसका प्रारम्भ से ही प्रयोग किया गया है। आधुनिक काल में गद्य में विशेषतः नाटकों में इसका प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। रीतिकालीन "भड़ौवे" व्यंग्यात्मक ही होते थे। इनमें कवि अपने कंजूस आश्रयदाताओं की उपहासपूर्ण निन्दा किया करते थे। बिहारी का एक दोहा जिसमें व्यंग्य है, यहां देना असंगत न होगा—

"करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि,
रे गन्धी, मति अन्ध, तू अतर दिखावत काहि।"

वक्रोक्ति (Irony)

डा० नगेन्द्र ने 'Irony' का पर्यायवाची "वक्रोक्ति" शब्द निर्धारित करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि वक्रोक्ति से यहां तात्पर्य कुन्तक की वक्रीकृत उक्ति से नहीं वरन् वक्र उक्ति से है। जब किसी वाक्य को कहा किसी और प्रकार से जाय तथा उसका अर्थ दूसरा निकले वहां वक्रोक्ति होती है।

वक्रोक्ति बड़ी तीखी होती है। ए० निकाल ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में की है :—"In irony we pretend to believe what we do not believe, in humour we pretend to disbelieve what we actually believe."[2] अर्थात् वक्रोक्ति में जिस वस्तु में हम विश्वास नहीं करते उसमें विश्वास दिखाते हैं तथा हास्य में जिस वस्तु में हम वास्तव में विश्वास

१ हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पांडे, पृष्ठ १०७

2. An Introduction to Dramatic Theory—A. Nicol.

करते है उसमें अविश्वास दिखाते है। वक्रोक्ति एक प्रकार का बहुरूपिया है। अमृत में विष डालना या फूल में कीट बन कर पहुँचना इसी का काम है।

"मेरीडिथ" ने वक्रोति की परिभाषा इस प्रकार की है—

"If instead of falling foul of the ridiculous person with a satiric rod, to make him writhe and shriek aloud, you prefer to sting him under semi-caress, by which he shall in his anguish be rendered dubious, whether indeed anything has hurt him, you are an engine of Irony"[1]

अर्थात् यदि आप हास्यास्पद पर सीधा व्यग्य वाण न छोडें वरन् उसे ऐसा उमेठ दें एव किलकारी निकलवा दें, प्यार के आवरण में उसे डक मारें जिससे वह अन्तर्द्वन्द में पड जाय कि वास्तव में किसी ने उस पर प्रहार किया है अथवा नही, तव आप वक्रोक्ति का उपयोग कर रहे है।

भारतीय उदाहरणो में मधुमक्खी इसका जीवित प्रतीक है। यद्यपि नाम मधुमक्खी है किन्तु इसका दश कितना तीखा होता है। "विमाता" शब्द में माता तो लगा हुआ है किन्तु उसमें द्वेष की व्याधि भीतर छिपी हुई है।

"मेरीडिथ" ने इसको और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है—
"The Ironist is one thing or another, according to his caprice Irony is the humour of Satire, it may be savage as in Swift, with a moral object or sedate as in Gibbon with a malicious. The foppish irony fretting to be seen, and the irony which leers that you shall not mistake its intention, are failures in Satire effect pretending to the treasures of ambiguity"[2]

इसका आशय यह है कि वक्रोतिकार जो कुछ लिखेगा अपनी मानसिक प्रवृत्ति से लिखेगा। वक्रोति व्यग्य का हास है, यह "स्विफ्ट" की भाति कठोरतम भी हो सकता है जिसमें साथ में नैतिक लक्ष्य भी हो और "गिवन" की भाति गम्भीर भी हो सकता है जो द्वेषपूर्ण हो। एक वक्रोक्ति वह है जो कि ऊपर से दिखलाई देती है तथा दूसरी वह है जिसके उद्देश्य में तिरस्कार की भावना होती है तथा जो व्यग्यात्मक उद्देश्य में असफल हो गई है तथा जिसमें भ्रम के खजाने हो।

---

1 The Idea of Comedy—Meridith, page 79.
2 ——do—— page 82

"बर्गसाँ" ने 'Irony' की परिभाषा इस प्रकार की है :—

"Sometimes we state what ought to be done and pretend to believe that this is just what is actually being done; then we have irony... . Irony is emphasised the higher we allow ourselves to be uplifted by the idea of good that ought to be, thus irony may grow so hot within us that it becomes a kind of high pressure eloquence"[1]

इसका आशय यह है कि कभी-कभी हम यह कहते हैं कि यह होना चाहिए और दिखाते भी हैं कि जो कुछ किया जा रहा है उसमें हमारा विश्वास भी है, वहाँ वक्रोक्ति होती है—वक्रोक्ति में हमको ऊपर से ऊँचे उद्देश्य की भलाई दिखाने का बहाना करना पड़ता है, इस प्रकार वक्रोक्ति अन्दर से इतनी तीव्र हो सकती है कि हमें मालूम पड़े कि वह शक्तिशाली वक्तव्य है।

"वक्रोक्तिकार भी धनुष की भांति झूठी नम्रता में झुककर तीर की तरह चोट करता है इसमें स्तुति तथा निन्दा दोनों झूठी होती हैं। स्तुति, निन्दा तथा वक्रोक्ति में भेद ध्वनि का है, काकु का है। ध्वनि में ही अर्थ गूढ़ रहता है। वक्रोक्ति तथा सच्ची स्तुति या निन्दा में वही साम्य है जो कोयल और कौए में है। वक्रोक्ति का सच मानना विश्वासघात का आखेट बनना है।"[2]

प्रो० जगदीश पाण्डे ने अपनी पुस्तक "हास्य के सिद्धान्त" में वक्र-उक्ति के निम्न भेद किए हैं:—

(१) आधार के तिरोभाव में (२) विरोधाभास (३) व्याज-निंदा (४) द्विविधा, (५) व्याज स्तुति, (६) असंगति, (७) प्रत्यावर्त्तन, (८) ध्रुव विपर्यय व्यंग्य, (९) पृष्ठाघात की वक्रोक्ति, (१०) अभिन्न हेतुक विभिन्नता, तुल विभिन्नता, (११) निंदा की साधु स्तुति।[3]

वक्रोक्ति का उदाहरण नीचे दिया जाता है। लक्ष्मण तथा परशुराम का संवाद है—

"लखन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा।
तुम्हहि अछत को बरनहि पारा॥

1 Laughter—Henry Bergson, Page 127
२. हास्य के सिद्धान्त तथा मानस में हास्य—प्रो० जगदीश पाण्डे
३. हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पाण्डे, पृष्ठ ६६

आपन मुँह तुम आपन करनी ।
बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥
नहि सन्तोष तो पुनि कछु कहहू ।
जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ॥"

—(रामचरित मानस)

परोडी (Parody)

पैरोडी में किसी भी विशिष्ट शैली या लेखक की ऐसी हास्यास्पद अनुकृति होती है कि वह गम्भीर भावो को परिहास में परिणित कर देती है। "पैरोडी" अंग्रेजी का शब्द है तथा अन्य शब्दो की भाति हिन्दी में स्वच्छता से उपयोग में लाया जा रहा है। कुछ लोगो ने इसका अनुवाद भी किया है, पर मूल शब्द को अपना लेने में लेखक कुछ हानि नही समझता। यह एक हास्य-पूर्ण कला है। पैरोडी द्वारा नये कवियो की भद्दी तुकबन्दी की भी बडी अच्छी तरह खिल्ली उडाई जा सकती है। पैरोडी अनजाने में ही लेखक को यह बताती है कि उसकी शैली में क्या और कहाँ कमज़ोरी है ? इस प्रकार वह उसकी शैली को mannerism (कोरा कहने का ढग) से बचाती है। यह साहित्यिक शिथिलता को नष्ट करने में एक साधक के रूप में काम में लाई जाती है।

आर्थर सिम्स Arthur Symons नामक एक विद्वान् ने लिखा है—

"Love and admire and respect the original Admiration and laughter is the very essence of the act or art of Parody"

इसका आशय यह है कि मूल के प्रति प्रेम तथा आदर में कमी नही आनी चाहिए। प्रशसा तथा हास्य पैरोडी की जान है।

कुछ विद्वानो का मत है कि पैरोडी गद्य तथा पद्य दोनो की हो सकती है किन्तु वास्तव में देखा जाय तो पद्य की पैरोडी ही अधिक सफल देखी गई है। Sir Arthur Quiller Covet ने एक स्थान में कहा है—"Parody is concerned with poetry and preferably great poetry alone" अर्थात् पैरोडी का सम्बन्ध कविता और विशेषत उच्च कविता से ही है।

अच्छी पैरोडी का सौंदर्य उसकी मूल रचना से घनिष्टता में है। सबसे सरल पैरोडी शाब्दिक होती है जो प्रसाद-गुण-पूर्ण अत्यन्त प्रसिद्ध कविता को लेकर एक-दो शब्दो या पक्तियो के परिवर्तन द्वारा की जाती है जिससे भिन्न

अर्थ मिले परन्तु मूल का रूप नष्ट न हो। शैली की पैरोडी उच्चकोटि की होती है। इस प्रकार "पैरोडी" तीन प्रकार की कही जा सकती है—(१) शाब्दिक, (२) आकार-प्रकार सम्बन्धी, (३) भावना सम्बन्धी।

अधिकतर प्रसिद्ध कविताओं की पैरोडी ही वांछनीय होती है जिसे लोग समझ लें।

पैरोडी का एक और भी कार्य है। हास्य उसका अस्त्र होने के कारण गम्भीर विषय के स्थान पर कुछ ऐसा हास्यास्पद विषय चुना जाता है जो यों ही सारी रचना को मजेदार और मजाकिया बना देता है। यह नया छाँटा हुआ विषय बहुधा ऐसा परिचित, सामान्य और घरेलू होता है कि उसके द्वारा समाज की किसी न किसी कुरीति पर भी लक्ष्य हो जाता है। इस तरह पैरोडी का सामाजिक पहलू भी है।

कवि पोप की "Rape of the Lock" तो महाकाव्य की शैली का अनुकरण करते हुए एक महाकाव्य की पैरोडी है जिसमें एक स्त्री के बालों की एक लट के काटे जाने का वर्णन इस भाँति किया गया है मानो कोई भारी संग्राम हो रहा हो। अंग्रेजी साहित्य को इस तत्व पर बड़ा अभिमान है।

यहां श्री बरसानेलाल चतुर्वेदी की एक पैरोडी उदाहरण स्वरूप दी जाती है। यह पैरोडी गुप्त जी के प्रसिद्ध गीत "सखि वे मुझ से कह कर जाते" की है :—

"लखन सिनेमा पति गए, नहिं अचरज की बात,
पर चोरी चोरी गए, यही बड़ा आघात।
सखि वे मुझ से कहकर जाते।
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते।
कारण नहीं समझ में आता,
ले जाते तो क्या हो जाता।
शायद वे सकोच कर गए महँगाई के नाते।
बच्चों का यदि साथ न भाता,
मुझसे यह क्यों सहा न जाता।
"सैकिंड शो" के होने तक तो बच्चे भी सो जाते।
अन्य किसी के साथ गए थे,
क्या मुझसे गुरु मोहगए वे?

मैं तो इसको भी सह लेती पतिव्रता के नाते।
सखि वे मुझसे कह कर जाते।"

प्रहसन (Farce)

इसको अँग्रेजी में Comedy कहते हैं। अंग्रेजी साहित्य में दुःखान्तक तथा सुखान्तक दो ही नाटक के भेद माने गये हैं। इन दोनो प्रकार के नाटको में अधिकारी विद्वानो के विशालग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें इनका अत्यन्त सूक्ष्म एवं विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है। जहाँ तक हम समझ सके हैं उसका सार यही है कि वह सुखात्मक नाटक जिसमें हास्य भी हो Comedy के अन्तर्गत आता है। हाल ही में दुःखान्तक प्रहसन Tragicomedy भी चले हैं जो विवादास्पद हैं और जिनका सम्बन्ध हमारी इस विवेचना से नही है।

हमने Comedy या Farce का पर्यायवाची शब्द प्रहसन इसीलिए रक्खा है कि प्रहसन का अर्थ अब संस्कृत की पारिभाषिक सीमा के अन्दर नही रह जाता है। हिन्दी में प्रहसन के अर्थ में किसी भी ऐसे नाटक को लिया जा सकता है जो हास्य और व्यंग्य के विचार से लिखा गया है। भारतेन्दु की "नाटक" नामक पुस्तिका में जो कि भारतीय नाट्य-शास्त्र के आधार पर लिखी गई है, प्रहसन की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

"हास्य-रस का मुख्य खेल—नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो। इसमें अनेक पात्रो का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिये किन्तु अनेक दृश्य दिये बिना नहीं लिखे जाते।"[१]

"प्रहसन लिखने का उद्देश्य मनोरंजन भी है और धर्म के नाम पर पाखण्ड का मूलोच्छेदन भी। काने को भी "काना" कहने से काम नहीं बनता वरन् वह और बुरा मानता है। इसलिए समाज की बुराई को यदि केवल बुराईमात्र कहकर उससे आशा की जाय कि समाज उस बुराई को दूर कर देगा तो यह व्यर्थ है। व्यंग्य और वक्रता द्वारा इस प्रकार की बुराई को प्रकट करना एक प्रकार की कला है और बहुत ही उच्च कला है। इस में सांप भी मर जाता है और लकडी भी नहीं टूटती।"[२]

मैरीडिथ ने कामेडी के उद्गम के विषय में लिखा है—

---

१ भारतेन्दु नाटकावली—पृष्ठ ७९३

२. हिन्दी नाटको का इतिहास—डा० सोमनाथ, पृष्ठ ५३

"Comedy, we have to admit, was never one of the most honoured of the Muses She was in her origin, short of slaughter, the loudest expression of little civilization of men."[1]

हमें यह स्वीकार करना पडेगा कि प्रहसन का कलाओ में कभी उच्च स्थान नही था। प्रारम्भ में ये हत्या से थोड़ी नीची वस्तु थी जिसमें अविकसित सभ्यता की प्रबल अभिव्यक्ति मिलती थी।

मैरीडिथ ने प्रहसन की आत्मा भाव को माना है। प्रहसन के लिए वास्तविक ससार का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

व्यग्य तथा प्रहसन में अन्तर करते हुए उसने लिखा है :—

"The laughter of satire is a blow in the back or the face. The laughter of comedy is impersonal and of unrivalled politeness, nearer a smile, often no more than a smile. It laughs through the mind, for the mind directs it, and it might be called the humour of the mind[2]

इसका आशय यह है कि व्यग्य का हास्य तो किसी के मुह अथवा पीठ पर घाव के समान है। प्रहसन का हास्य व्यक्तिगत नही होता, उसमें असाधारण नम्रता होती है जो अधिक से अधिक एक मुस्कान भर ला देती है। प्रहसन का हास्य वाहिक हास्य होता है चूंकि बुद्धि से इसका सचारण होता है इसलिए इसे मस्तिष्क का हास्य कहा जा सकता है।

प्रहसन से अनेक लाभ हैं। आशा का सचार होता है, थकान दूर होती है, अहकार के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है तथा व्यक्तिगत दर्प में कोमलता आ जाती है। मनुष्य समाज में रहने के योग्य हो जाता है, वह अपने स्वभाव तथा वेषभूषा की विकृतियो के प्रति सावधान हो जाता है, उसके स्वभाव में यदि अकेलेपन की आदत है तो वह सामाजिकता-पसंद हो जाता है।

'मैरीडिथ' की भाँति 'बर्गसा' ने भी "कामेडी" का विशद वर्णन किया है। प्रहसन में चरित्र चित्रण का विवेचन करते हुए उसने लिखा है—

"Comedy depicts character we have already come across and shall meet with again It takes notes of similarities It aims at placing types before our eyes. It even creates new types, if necessary. In this respect it forms a contrast to all the other arts"[3]

---

1 The Idea of Comedy—Meridith Page 11
2 The Idea of Comedy—Meridith. Page 8
3. Laughter—Bergson, page 163

अर्थात प्रहसन में हमारे जाने पहचाने चरित्रो का ही चित्रण होता है। साम्य का इसमें सदैव ध्यान रक्खा जाता है। यह विभिन्न प्रकार के वर्गो को हमारे सम्मुख रखता है। कभी-कभी नये वर्गो का सृजन भी इसमें किया जाता है, इस भाति इसमें अन्य कलाओ से विभिन्नता स्पष्ट प्रतीत होती है।

बर्गसाँ ने परिस्थिति के हास्य (Comic in Situation), शब्द जनित हास्य (Comic in words) तथा चरित्रो द्वारा हास्य (Comic in character) पर विषद प्रकाश डाला है। इसके पूर्व इसने हास्य तत्व एव हास्य के भिन्न प्रकारो पर विशद आलोचना की है। बर्गसाँ का लिखने का सार यही है कि हास्य ((Humour) वैदग्ध्य (Wit) तथा भ्रान्त (Nonsense) तीनो का प्रयोग प्रहसन में किया जाता है। हास्य का क्षेत्र कार्य, अवस्था और चरित्र है। इन्ही कार्य अवस्था और चरित्र से हँसी की वस्तु प्रकाश में लाना प्रहसन का मुख्य कार्य है। वाग्वैदग्ध्य का मुख्य क्षेत्र शब्दावली तथा वाणी है। यह सदैव मनुष्य के शब्दो तथा अभिप्राय में हँसाने वाली सामग्री ढूंढ निकालता है। भ्रान्त या निरर्थक (Phantasy) (अतिशयोक्ति तथा उन्मत्त कल्पना) के द्वारा मनुष्य को हँसाने की योजना करता है।

'कामेडी' लेखक बुराइयों की दुनियाँ में रहता है, जीवन के प्रपचो, अनाचार और अत्याचार को देखता है फिर भी निरपेक्ष होकर कलात्मक ढग से, विनोद के भाव से दुनिया का चित्र खीचता है। स्वानुभूति और निरपेक्षता तथा वाह्य रूप और वास्तविकता के द्वन्दो का प्रत्येक हास्य-लेखक प्रयोग करता है। कामेडी का हास्य अवैक्तिक, सार्वजनिक और शिष्ट होता है।

ए निकाल ने जो कि "कामेडी" पर अधिकारी विद्वान माने जाते है, अपनी पुस्तक "Introduction to Dramatic Theory" में प्रहसन में चार प्रकार की हास्य-अभिव्यक्ति मानी है—"There are four types of comic expression used by dramatists, the unconscious ludicrous, the conscious wit, humour and satire" 1

उनके अनुसार प्रहसन में इन चारो का मिश्रण भी हो सकता है। हास्यास्पद का आधार केवल एक हास्य तत्व ही नहीं होता बल्कि इनका ऐसा सम्मिश्रण होता है कि उनको अलग-अलग करना कठिन होता है। प्रहसन का यद्यपि हास्य एक आवश्यक गुण है तथापि प्रहसन एक मात्र हास्य पर ही

1 An Introduction to Dramatic Theory—A Nicol

आधारित नही होता। इनमें हास्य एवं व्यंग्य स्पष्ट भी हो सकता है तथा गुप्त भी।

ए० निकाल के अनुसार प्रहसनो के भेद ये है—

(1) Farce (2) The Comedy of Romance (3) Comedy of Satire (4) Comedy of Wit (5) Gentle Comedy. (6) The Comedy of Intrigues. (7) Sentimental Comedy (8) Tragi-Comedy

अर्थात् (१) प्रहसन, (२) शृङ्गार रस प्रहसन, (३) व्यंग्य-प्रधान प्रहसन, (४) वचन विदग्धता-प्रधान प्रहसन, (५) कोमलता-प्रधान प्रहसन, (६) अन्तर्द्वन्द प्रधान प्रहसन, (७) भावुकता-प्रधान प्रहसन, (८) करुणरस-प्रधान प्रहसन ।

हिन्दी साहित्य में प्रहसन भारतेन्दु काल से आरम्भ हुए हैं। अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम्, उदाहरण स्वरूप दिए जा सकते हैं। आजकल के प्रहसन लेखकों में जी० पी० श्रीवास्तव, उपेन्द्रनाथ अश्क, डा० रामकुमार वर्मा आदि है।

हिन्दी के प्रहसनो पर विवेचन आगे के अध्याय में किया जायेगा।

: ३ :

हास्य का रहस्य और उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

हम क्यो हँसते हैं ? हँसी किन कारणो से आती है ? इन प्रश्नो का उत्तर जटिल है। साधारणत हँसी अनेक कारणो से आ सकती है। हास्यास्पद वस्तु के देखने से, आनन्द का अनुभव करने से तथा किसी के द्वारा गुलगुली मचाने से हँसी उत्पन्न हो सकती है। गुलगुली मचाने से जो हँसी उत्पन्न होती है वह भौतिक है किन्तु वास्तविक हँसी मानसिक होती है। जो कि शब्द, दृश्य, इत्यादि द्वारा मानसिक स्पर्श से सम्बन्धित है। हास्य का सम्बन्ध हास्यमय परिस्थिति के ज्ञान से है। इसमें बुद्धि से काम लेना पडता है। हँसना एक क्रियात्मक मानसिक चेष्टा है। यह एक मूल प्रवृत्ति है। प्रत्येक मूल प्रवृत्ति से ही किसी उद्वेग का सम्बन्ध रहता है, हँसने के साथ खुशी का सम्बन्ध है इसलिए खुशी हँसने के मूल कारणो में से मानी जाती है।

"हाब्स" महाशय के अनुसार—**"हँसी अपने गौरव की अनुभूति से उद्भूत प्रसन्नता का प्रकाशन है।"**[1] जब हम दूसरो को किसी मूर्खता में फँसे देखते हैं तो हम अपने बडप्पन का अनुभव करते हैं जिससे हमें प्रसन्नता होती है। इस प्रसन्नता का प्रदर्शन हम हँसी द्वारा करते हैं। वास्तव में यह सिद्धान्त एकागी है। मनुष्य इतना दुष्ट प्रकृति का जीव नही जो सदा ही दूसरो के पतन में अपने गुरुत्व का अनुभव करे। इससे तो यह प्रमाणित होता है कि हम अपने शत्रुओ की भूलो पर खूब हँसेंगे और अपने मित्रो की भूलो पर कदापि नही परन्तु वास्तव में ऐसी बात नही है। शत्रुओ की भूलें मनुष्य को प्रसन्न अवश्य करती हैं परन्तु हँसी नही लाती, इसके विपरीत हँसी उन्ही लोगो की भूलो पर आती है जिनसे हमें सहानुभूति है। हमें उन परिस्थितियो के चित्रण पर हँसी आती है जिनमें हम आत्मीयता का अनुभव करते हैं। यदि हम किसी पात्र के

---

1 The passion of laughter is nothing else but sudden glory arising from a sudden comparison with the infirmity of others, or with our own formerly —**Hobbes**

साथ आत्मीयता अनुभव नही कर पाते तो हमें उसकी भूलो पर हँसी नही वरन् क्रोध आता है। जहाँ तक सहानुभूति का सम्बन्ध है वही तक हँसी है किन्तु जब सहानुभूति जाती रही तो दूसरे सवेग भले ही हृदय में आवे, हँसी नही आवेगी। सहानुभूति की मात्रा अधिक होने पर कोई परिस्थिति हँसी का कारण नही बन सकती। यदि कोई लडका कीचड में फिसल कर गिर पडता है तो आस पास के लडके हँस पडते है किन्तु उस लडके के भाई को कदापि हँसी न आवेगी।

दूसरा सिद्धान्त 'स्पेन्सर' का असगति के निरीक्षण का है। जिसके अनुसार हमारी चेतना का बडी वस्तु से छोटी की ओर जाना ही हास्य का मूल कारण है। दूसरे शब्दो में हास्य का कारण हमारी चेतना की, उत्कर्ष से अपकर्ष की ओर उन्मुख होने वाली गति है। हास्य की स्वाभाविक उत्पत्ति उस समय होती है जब हमारी चेतना बडी चीज़ से छोटी चीज़ की ओर आकर्षित होती है जिसे हम अधोमुख असगति कहते है। इसके विपरीत उत्तरोत्तर असगति होती है जिससे हास्य के भाव की उत्पत्ति न होकर आश्चर्य भाव की उत्पत्ति होती है।

वस्तुत. 'हाब्स' द्वारा जो कारण दिया गया है उसमें और "स्पेन्सर" द्वारा दिये गये कारण में कोई ऊपरी भेद दिखाई नही देता। किन्तु तात्विक दृष्टि से गहराई में जाकर विश्लेषण किया जाय तो अन्तर स्पष्ट हो जायगा। 'हाब्स' ने हास्य का कारण उस उल्लास को माना है जो अपने उत्कर्ष के पूर्व कमजोरियो की तुलना करने पर होता है। जब कि 'स्पेन्सर' उल्लास के विषय में मौन है। उनकी दृष्टि मे हास्य का कारण चेतना की परिवर्तित गति है। यद्यपि यह सही है कि असगति सदैव हास्य का कारण नही होती। जीवन में कई असगतियाँ ऐसी होती है जो हास्य को जन्म न देकर अन्य दूसरे भावो की सृष्टि करती है। सज्जन मनुष्य पर भी इसी समाज में अत्याचार होते है और शिक्षित व्यक्ति भी इसी समाज में बेकार फिरते नजर आते है। किन्तु इन असंगतियो के बावजूद भी हमारे क्रोध तथा शोक के भाव ही उद्दीप्त होते है। इस प्रकार हम देखते है कि असगति ही सदैव हास्य का कारण नही होती।

हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि हास्य के कारण का सम्बन्ध सामाजिक भावना से है। किसी एम० ए० को बेकार फिरते देख, सम्भव है हमारे हृदय में इस असंगति से करुणा की उत्पत्ति हो किन्तु किसी पंडितजी की सटके की तोड़ देख कर हम हँसे बिना नही रह सकेंगे।

: ३ :

हास्य का रहस्य और उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

हम क्यो हँसते है ? हँसी किन कारणो से आती है ? इन प्रश्नो का उत्तर जटिल है। साधारणत हँसी अनेक कारणो से आ सकती है। हास्यास्पद वस्तु के देखने से, आनन्द का अनुभव करने से तथा किसी के द्वारा गुलगुली मचाने से हँसी उत्पन्न हो सकती है। गुलगुली मचाने से जो हँसी उत्पन्न होती है वह भौतिक है किन्तु वास्तविक हँसी मानसिक होती है। जो कि शब्द, दृश्य, इत्यादि द्वारा मानसिक स्पर्श से सम्बन्धित है। हास्य का सम्बन्ध हास्यमय परिस्थिति के ज्ञान से है। इसमें बुद्धि से काम लेना पडता है। हँसना एक क्रियात्मक मानसिक चेष्टा है। यह एक मूल प्रवृत्ति है। प्रत्येक मूल प्रवृत्ति से ही किसी उद्वेग का सम्बन्ध रहता है, हँसने के साथ खुशी का सम्बन्ध है इसलिए खुशी हँसने के मूल कारणो में से मानी जाती है।

"हाब्स" महाशय के अनुसार—**"हँसी अपने गौरव की अनुभूति से उद्भूत प्रसन्नता का प्रकाशन है।"**[1] जब हम दूसरो को किसी मूर्खता में फँसे देखते हैं तो हम अपने बडप्पन का अनुभव करते है जिससे हमें प्रसन्नता होती है। इस प्रसन्नता का प्रदर्शन हम हँसी द्वारा करते हैं। वास्तव में यह सिद्धान्त एकागी है। मनुष्य इतना दुष्ट प्रकृति का जीव नही जो सदा ही दूसरो के पतन में अपने गुरुत्व का अनुभव करे। इससे तो यह प्रमाणित होता है कि हम अपने शत्रुओ की भूलो पर खूब हँसेंगे और अपने मित्रो की भूलो पर कदापि नही परन्तु वास्तव में ऐसी बात नही है। शत्रुओ की भूलें मनुष्य को प्रसन्न अवश्य करती हैं परन्तु हँसी नही लाती, इसके विपरीत हँसी उन्ही लोगो की भूलो पर आती है जिनसे हमें सहानुभूति है। हमें उन परिस्थितियो के चित्रण पर हँसी आती है जिनमें हम आत्मीयता का अनुभव करते हैं। यदि हम किसी पात्र के

---

1 The passion of laughter is nothing else but sudden glory arising from a sudden comparison with the infirmity of others, or with our own formerly —**Hobbes**

साथ आत्मीयता अनुभव नही कर पाते तो हमें उसकी भूलो पर हँसी नही वरन् क्रोध आता है। जहाँ तक सहानुभूति का सम्बन्ध है वही तक हँसी है किन्तु जब सहानुभूति जाती रही तो दूसरे सवेग भले ही हृदय में आवे, हँसी नही आवेगी। सहानुभूति की मात्रा अधिक होने पर कोई परिस्थिति हँसी का कारण नही बन सकती। यदि कोई लडका कीचड में फिसल कर गिर पडता है तो आस पास के लडके हँस पडते है किन्तु उस लडके के भाई को कदापि हँसी न आवेगी।

दूसरा सिद्धान्त 'स्पेन्सर' का **असगति के निरीक्षण** का है। जिसके अनुसार हमारी चेतना का बडी वस्तु से छोटी की ओर जाना ही हास्य का मूल कारण है। दूसरे शब्दो में हास्य का कारण हमारी चेतना की, उत्कर्ष से अपकर्ष की ओर उन्मुख होने वाली गति है। हास्य की स्वाभाविक उत्पत्ति उस समय होती है जब हमारी चेतना बडी चीज़ से छोटी चीज़ की ओर आकर्षित होती है जिसे हम अधोमुख असगति कहते है। इसके विपरीत उत्तरोत्तर असगति होती है जिससे हास्य के भाव की उत्पत्ति न होकर आश्चर्य भाव की उत्पत्ति होती है।

वस्तुत 'हाब्स' द्वारा जो कारण दिया गया है उसमें और "स्पेन्सर" द्वारा दिये गये कारण में कोई ऊपरी भेद दिखाई नही देता। किन्तु तात्विक दृष्टि से गहराई में जाकर विश्लेषण किया जाय तो अन्तर स्पष्ट हो जायगा। 'हाब्स' ने हास्य का कारण उस उल्लास को माना है जो अपने उत्कर्ष के पूर्व कमजोरियो की तुलना करने पर होता है। जब कि 'स्पेन्सर' उल्लास के विषय में मौन है। उनकी दृष्टि मे हास्य का कारण चेतना की परिवर्तित गति है। यद्यपि यह नही है कि असगति सदैव हास्य का कारण नही होती। जीवन में कई असगतियाँ ऐसी होती है जो हास्य को जन्म न देकर अन्य दूसरे भावो की सृष्टि करती है। सज्जन मनुष्य पर भी इसी समाज में अत्याचार होते है और शिक्षित व्यक्ति भी इसी समाज में बेकार फिरते नजर आते है। किन्तु इन असंगतियो के बावजूद भी हमारे क्रोध तथा शोक के भाव ही उद्दीप्त होते है। इस प्रकार हम देखते है कि असगति ही सदैव हास्य का कारण नही होती।

हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि हास्य के कारण का सम्बन्ध सामाजिक भावना से है। किसी एम० ए० को बेकार फिरते देख, सम्भव है हमारे हृदय में उस असगति से करुणा की उत्पत्ति हो किन्तु किसी पूंजीपति की मटके सी तोंद देख कर हम हँसे बिना नही रह सकते।

"हेनरी बर्गसाँ" ने अपनी पुस्तक "Laughter" में लिखा है कि जब मनुष्य अपनी नैसर्गिक स्वतन्त्रता को छोड़ कर यत्र की तरह काम करने लगता है तब हास्य का विषय बन जाता है। जैसे यदि कोई मनुष्य रास्ता चलते-चलते फिसल पड़े तो वह लोगों की हँसी का भाजन बन जाता है। मनुष्य तभी गिरता है जब वह अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता को भूलकर जड़ मशीन की भाति आचरण करने लगता है। यह भी एक तरह की विपरीतता है। मनुष्य अपने स्वभाव से विपरीत चलता है।[1] इसके अतिरिक्त बर्गसाँ ने हास्य के कारणो का उल्लेख करते हुए लिखा है कि हास्य के आलम्यन को समाज प्रिय न होना चाहिये और घटना शब्दावली तथा पात्रो में यान्त्रिक क्रियाओ का होना आवश्यक है। "बर्गसाँ" का मत सत्य के अधिक समीप जान पड़ता है। हास्य की भावना समष्टि-निष्ट है। अस्तु हास्य के आलम्बन के लिए विशेष शर्त है कि वह समाज प्रिय न हो। यदि आलम्बन को समाजप्रियता प्राप्त हुई तो अनेको असगतियों के बावजूद भी वह हमारे हास्य उद्रेक में सहायक न हो सकेगा[2] उदाहरण के लिये जायसी काने तथा बहरे थे। एक बार उन्हे देख कर एक राजा हँसा भी था। जायसी ने यह उत्तर दिया, "मोहि का हँसेसि कि

1 "A man running along the streets, stumbles and falls, the passers-by burst out laughing They would not laugh at him I imagine, could they suppose that the whim had suddenly seized him to sit down on the ground We laugh because his sitting down is unvoluntary

Now, take the case of a person who attends to the petty occupations of his everyday life with mathematical precision

The laughable elements in both cases consists of a certain machanical inelasticity, just where one would expect to find the wide awake adaptability and the living pliableness of a human being"

—"Laughter" by Henry Bergson, Page 9 & 10.

2 Society will therefore be suspicious of all inelasticity of character, of mind and even of body, because it is the possible sign of a slumbering activity as well as of an activity with separatist tendencies that inclines to severe from the common centre round which society gravitates In short because it is the sign of an eccentricity

—"Laughter" by Henry Bergson, Page 19

कोहरहि" राजा लज्जित हुआ और तुरन्त क्षमा मागने लगा। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि समाजप्रिय व्यक्ति विविध असगतियो के होते हुए भी हास्य का आलम्बन नही बन सकता। और बर्गसाँ इस सिद्धान्त को पहचान सके थे। बर्गसाँ ने दूसरा कारण दिया है आलम्बन का अचेतन होना।[1] उदाहरण के लिये कालेज में विद्यार्थी जब अगली बैंच वाले लडके की पीठ पर "मै गधा हूँ" लिख कर कागज चिपका देते है और विद्यार्थी इसे बिना जाने स्वच्छन्द रूप से सर्वत्र घूमता रहता है तो हँसी के फव्वारे छूटने लगते है।

बर्गसाँ ने तीसरा कारण यांत्रिक क्रिया बतलाया है। यह यान्त्रिक क्रिया वाणीगत भी हो सकती है और शारीरिक भी। जब व्यक्ति अपने तकिया कलाम का प्रयोग करते हैं तो यही यान्त्रिक क्रिया हमारे हास्य का कारण होती है। इसी प्रकार दर्शन के प्रोफेसर जब विवाह-शादी के अवसर पर भी सास्य और अद्वैत पर भाषण देने लगते हैं तो बराबर हास्य का उद्रेक हो ही जाता है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले हास्य का मूल कारण प्रोफेसर साहब के जीवन का यन्त्रवत होना ही है। ये व्यक्ति जीवन के एक ही क्षेत्र में घिसते-घिसते मशीन की तरह जड हो गये हैं। बर्गसाँ ने विपरीतता सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया है। जब चोर के घर में सेंध लगती है तो हँसी आये बिना नही रहती।

शरीर वैज्ञानिको के मतानुसार हास्य का मुख्य कारण शरीर की अतिरिक्त शक्ति है। इसके अनुसार खेलने के समान हँसना भी एक ऐसी स्वाभाविक क्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपने शरीर तथा मस्तिष्क मे इकट्ठी आवश्यकता से अधिक शक्ति का अपव्यय करता है। जिस प्रकार एक इजन के वायलर में जब बहुत भाप जमा हो जाती है तो सेफ्टी वाल्व को खोल कर उस अनावश्यक शक्ति को निकाल दिया जाता है। उसी तरह हँसी के द्वारा हम अपनी उस अधिक शक्ति को निकाल देते है जिसको हमारा शरीर या मन वहन नही कर सकता है। इस शक्ति के न निकालने से अनेक प्रकार की मानसिक अस्वस्थता पैदा हो सकती है। इस शक्ति के निकालने से हम उस अस्वस्थता से बच सकते है।

---

1 To realise this more fully, it need only be noted that a comic character is generally comic in proposition to his ignorance of himself The comic person is unconscious.

—"Laughter" by Henry Bergson, Page 16.

आजकल के मनोविश्लेषण शास्त्रियो के मत से हास्य का मूल उप-चेतना में दवे हुए भावो में है। जैसे हम किसी से घृणा करते हैं सामाजिक शिष्टाचारवश हम घृणा का प्रदर्शन खुले आम नही कर सकते, वह भाव दवा रहता है किन्तु उपहास में एक सुन्दर वेष धारण कर वाहर आ जाता है जैसे किसी पटवारी की कलम गिर गई तो एक गरीब किसान के मुह से सहसा निकल पडा,—"मुशी जी, आपकी छुरी गिर पडी है।" जमीदार से हँसी में लोग जिमीदार कह देते हैं और कवि जी को कपि जी कह देते हैं। ये सव बातें दवी हुई घृणा की ही परिचायक हैं।

"मेकडूगल" के अनुसार हास्य मनुष्य को अति दु ख से वचाए रखने का एक प्राकृतिक विधान है। उनका कहना है कि हमारे अन्दर प्रत्येक प्राणी के मूलभूत सहानुभूति रहती है। जव हम कोई हास्यास्पद वस्तु देखते हैं तो वह दवी हुई सहानुभूति प्रकट हो जाती है और हम को हास्यास्पद स्थिति में पडे हुए व्यक्ति को देख कर दुखित होने से वचाती है। प्रकृति ने हमें ऐसी शक्ति दी है जिससे या तो हम हास्य के आलम्वन के साथ हँसने लगते हैं अथवा उस पर हँसने लगते हैं। यदि प्रकृति ने हमें हँसी न दी होती तो हास्य के आलम्वनो को देख कर हम रो पडते। अनेक मनुष्यो का मनमुटाव समाप्त हो जाता है जव उनको एक साथ मिलकर हँसने का अवसर मिलता है।

फ्रायड के अनुसार हास्य की उत्पत्ति मस्तिष्क के उपचेतन भाग से होती है। उनका कथन है कि काम वासना और विशेष कर रति ही मनुष्य की प्रेरक शक्ति होती है क्योकि सामाजिक कारणो से अथवा अन्य परिस्थितियो के कारण व्यक्ति की कामना दमित रहती है और इस कारण वहुत सी मानसिक शक्ति दमित होकर उपचेतन मस्तिष्क में इकट्ठी होती रहती है। वाद में यदि रति से सम्वन्धित कोई भी कार्य आता है तो वह दमित शक्ति ही हास्य के रूप में प्रकट होती दिखाई देती है। किन्तु यह एक भ्रान्ति है। ऊपर वताये अन्य सिद्धान्तो के आगे फ्रायड का सिद्धान्त तथ्यहीन एव अतार्किक प्रमाणित होता है।

यद्यपि हमारे पुराने आचार्यो ने हास्य रस का विवेचन अधिक नही किया है किन्तु इतने महान वैज्ञानिको के हास्य के विषय में अनुसधान करने के वाद भी कोई नई वस्तु नही दिखलाई देती, यद्यपि मनोविज्ञान के नाम पर उनकी विवेचना को कितना भी महत्व दिया जाय।

हाब्स, हरबर्ट स्पेन्सर, बर्गसाँ, मेकडूगल, फ्रायड, आदि के हास्य सम्बन्धी सिद्धान्तों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमे से कोई भी सिद्धान्त पूर्ण नही है वरन् जिस सिद्धान्त ने भी पूर्णता का दावा किया है वह भी हास्यास्पद हो जाता है। क्योंकि बर्गसाँ के अनुसार हास्य एक ऐसी मानवीय प्रवृत्ति है जिसकी सम्पूर्ण जीवन में गति है, अत. जीवन के विकास के साथ ही हास्य के क्षेत्र मे भी विकास हुआ है और मानवता के विकास के साथ आज हमारे हास्य का दृष्टिकोण भी बदल गया है। आज किसी का अपकर्ष देख कर हम में हास्य की उद्भूति नही होती परन्तु दो सदी पूर्व मानव उनसे अपने उत्कर्ष की भावना का अनुभव कर हँसे बिना नही रहता था। आज प्रत्येक प्रकार की असगति हमारे हास्य का कारण नही होती। किसी युग का मानव काने, लँगड़े, अपाहिजो को देख कर हँस सकता था पर आज वे हमारी करुणा के आलम्बन है। अतः क्रमशः मानव जीवन के विकास के साथ ही हमारी हास्य सम्बन्धी धारणाओ में भी परिवर्तन होता जाता है। इसीलिये आज के मानव के हास्य के आलम्बन अब वह नही रहे जो सदियो पहले थे।

हास्योद्रेक के मूल कारणों की विवेचना करने के बाद हमे यह देखना है कि हास्य की अभिव्यक्ति के कारण क्या है ? हास्य में अभिव्यक्ति का स्वरूप भी आलम्बन की परिस्थिति पर निर्भर है क्योंकि हास्य आलम्बन प्रधान है। अत सभी सिद्धान्तो का समन्वय करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हास्य के उद्रेक के प्रमुख रूप निम्नलिखित है—

(१) शारीरिक गुण, (२) मानसिक गुण,
(३) घटना कार्य कलाप, (४) रहन सहन, (५) शब्दावली।

इसीलिये इन रूपों को सम्मुख रखते हुए भारतीय आचार्य का यह कथन "विकृता कृति वाग्विशेषरात्मनोऽथ परस्य वा" कितना उपयुक्त लगता है शब्दावली वेश-भूषा तथा क्रिया-कलाप के अन्तर्गत इन सब का समाहार हो जाता है। इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से भारतीय दृष्टिकोण अपने मे पूर्ण है।

: ४ :

संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में हास्य की परम्पराए

सस्कृत साहित्य में शृङ्गार-रस प्रधान है। नवरसो में हास्य-रस की गणना अवश्य की है किन्तु उसे सदैव गौण माना है। धर्मशास्त्र के रचयिता और दर्शनशास्त्र के कर्ता हास्य-विनोद से तो दूर रहेगे ही, क्योंकि परमात्मा, जीवात्मा, मोक्ष, ज्ञान और वैराग्य जैसे विषयो का चिन्तन या विवेचन हँसी खुशी को पास ही क्यो फटकने देगा ? फिर भी हँसना तो मनुष्य का स्वभाव है और अनादिकाल से वह हँसता आया है। कैसी भी कृति की रचना वह क्यो न करे, हँसने का कोई न कोई वहाना ढूढ ही लेगा। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि सस्कृत के विशाल और गम्भीर समुद्र में हास्य, व्यग्य या विनोद के यत्र-तत्र विखरे स्वांतिकण उसमें सरसता और सरलता का सचार कर दें। कही अनूठे सादृश्य से और कही श्लिष्ट पदो के प्रयोग से हास्य और विनोद की अभिनव-सृष्टि करने की सफल चेष्टा की गई है।

वैदिक साहित्य में

ऋग्वेद में ऋषि-मुनियो की मेढ़को से तुलना की गई है। यह कवि जब मन्त्रो के घोष के साथ यज्ञ कराने वाले ऋषि-मुनियो को देखता है तव उसे वरसात में टर्र-टर्र मचाने वाले मेंढको की याद आ जाती है। चार्वाक-दर्शन के प्रचारको ने धार्मिक रूढ़ियो की छीछालेदर करने के लिए चुभते हुए व्यग्य का आश्रय लिया है—"खाओ, पीओ और मौज करो—उधार लेकर घी छको, क्योंकि देह के भस्मीभूत हो जाने पर फिर लौट कर आना कहा से होगा ?"

"यावज्जीवेत् सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृत पिवेत्,
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत ॥"

पितरो के लिए किए जाने वाले श्राद्ध का मखौल उडाते हुए चार्वाक कहते हैं—"भला मरा हुआ मनुष्य क्या खाएगा ? यदि एक का खाया हुआ

अन्न दूसरे के शरीर में चला जाता हो तो परदेश में जाने वालों के लिए भी श्राद्ध करना चाहिए, उनको रास्ते के लिए भोजन बांधने की कोई आवश्यकता नहीं।"

वाल्मीकि-रामायण तथा महाभारत में

मन्थरा के कुचक्र में फसने के बाद कैकेयी ने उस कुबड़ी के सौन्दर्य और बुद्धि की जो व्याजस्तुति की वह कम मनोरंजक नहीं—

"अन्य तेऽह प्रमोक्ष्यामि मालां कुब्जे हिरण्ययीम् ॥४७॥

अभिषिक्ते चभरते राघवेच वन गते।
जात्येन च सुवर्णेन सुनिष्टप्तेन सुन्दरि ॥४८॥

लब्धार्था च प्रतीताच लेपयिष्यामि ते स्थग।
मुखे च तिलक चित्रं जात रूप मयं शुभम् ॥४९॥

कारयिष्यामि ते कुब्जे शुभान्याभरणानिच।
परिधाय शुभे वस्त्रे देवतेव चरिष्यसि ॥५०॥

चन्द्र माह्वयमानेन मुखेना प्रतिमानना।
गमिष्यसि गति मुख्यागर्वयन्ती द्विषज्जने" ॥५१॥ [1]

"यदि मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ तो मैं तेरे लिए अनेक सुन्दर-सुन्दर गहने बनवा दूंगी, तेरे कूबड़ पर उत्तम चन्दन का लेप करके उसे छिपा दूंगी और अच्छे-अच्छे वस्त्र दूंगी जिन्हें पहन कर तू देवाङ्गना की भांति विचरना। चन्द्रमा से स्पर्धा करने वाले अपने मुखमण्डल के लिए सर्वाग्रणी बन कर शत्रुओं का मान-मर्दन करती हुई गर्वपूर्वक इठलाना।"

रामायण की अपेक्षा महाभारत में व्यंग्य-हास्य के अपेक्षाकृत अधिक स्थल हैं क्योंकि रामायण में जहां राजकीय जीवन से अधिक सम्बद्ध है वहां महाभारत लोक जीवन से। उसमें वेश-विपर्यय का आश्रय लेकर अनेक विनोद-पूर्ण और उलझन भरी घटनाएं उपस्थित की गई हैं। स्त्री शिखण्डिनी का पुरुष वेष में राजकन्या से विवाह करना, विराट के राजमहल में द्रौपदी के रूप में भीम द्वारा कीचक का स्वागत करना, अश्विनी कुमारों के च्यवन के रूप में सुकन्या को धर्मसंकट में डालना, गौतम के वेष में इन्द्र का अहल्या से रमण करना और नल बनकर चारों लोकपालों का दमयन्ती को भ्रान्त करना पाठकों के

१ वाल्मीकि रामायण—अयोध्याकाण्ड ९ सर्ग

लिए विनोद की प्रचुर सामग्री उपस्थित करते हैं। शत्रुपक्ष के वीरों में चुभते हुए व्यग्य से भरी दर्पपूर्ण उक्तियाँ तो महाभारत में सर्वत्र बिखरी पड़ी हैं।

नाटकों में

संस्कृत के अधिकाश नाटको में विदूषक के माध्यम से हास्य की सृष्टि की गई है। महाकवि कालिदास की अमर कृति "अभिज्ञान शाकुन्तल" में विदूषक के पेटूपन का चित्रण देखिये—

"राजा—विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्।

विदूषक—किं मोदअखण्डिआए। तेण हि अअं सुगहीदो खणो

(किं मोदक खण्डिकायाम्। तेनह्य सुगृहीत क्षण)"[1]

अर्थात्

राजा—देखो, विश्राम कर चुको तो आकर मेरे भी एक काम में सहायता देना। और वह काम ऐसा होगा जिसमें तुम्हें कहीं आना जाना नहीं पड़ेगा।

विदूषक—क्या लड्डू खाने हैं? तब उसके लिये इससे बढ़ कर और कौनसा ठीक अवसर हो सकता है?

इसी प्रकार "विक्रमोर्वशीय" नाटक में जब राजा उर्वशी के प्रेम में इतना आबद्ध हो जाता है कि अपनी पत्नी काशी नरेश की पुत्री को छोड देता है तब राजा पर विदूषक व्यग्य करता है—

"राजा—(आसनमुपेत्य) वयस्य न खलु दूरं गता देवी।

विदूषक—भण विस्सद्ध ज सि वत्तुकामो। असज्झोत्ति वेज्जेण आवुरो विअ सेरं मुत्तो भवं तत्तहोदीए। (भण विश्रब्ध यदसि वक्तुकाम। असाध्य इति वैद्येनातुर इव स्वैरं मुक्तो भवा-स्तत्र भवत्या।"[2]

अर्थात्

"राजा—(अपने आसन पर बैठकर) वयस्य! अभी देवी दूर तो नहीं पहुँची होंगी।

---

१ अभिज्ञान शकुन्तला—सम्पादक प० सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २१

२ विक्रमोर्वशीयम्—कालिदास—सम्पादक प०सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ १४५

विदूषक—जो कहना हो जी खोलकर कह डालो। जैसे रोगी को असाध्य समझ कर वैद्य उसे छोड़ देता है वैसे ही आपको भी देवी ने यह समझ कर छोड़ दिया कि अब आप सुधर नहीं सकते।"

इसी प्रकार शूद्रक के "मृच्छकटिक" नाटक में हास्यरस का अनूठा चित्रण हुआ है। नाटक के नायक चारुदत्त जब विदूषक के ब्राह्मण होने के कारण चरणोदक देने को कहता है तब विदूषक कितना हास्यपूर्ण उत्तर देता है —

"चारुदत्त —दीयतां ब्राह्मणस्य पादोदकम्।

विदूषकः—किं मम पादोदएहिं। भूमिए ज्जेव मए ताडिदगद्दहेण विअ पुणोवि लोट्ठिदव्वम्।"[1]

अर्थात्

"चारुदत्त—ब्राह्मण को चरणोदक दो।

विदूषक—मेरे चरणोदक से क्या लाभ है? मुझे गधे की भाँति जमीन में ही लोटना है।"

महाकवि भवभूति के "उत्तर-रामचरित" नाटक में लक्ष्मण के पुत्र जब रामचन्द्र जी के यश का वर्णन करते हैं तब लव की व्यंग्योक्ति दर्शनीय है —

"लव—कोहि रघुपतेश्चरितं च न जानाति, यदि नाम किंचिदस्ति वक्तव्यम्। अथवा शान्तम्,—

वृद्धास्ते न विचारणीय चरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते
सुन्दस्त्री मथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते
यानि त्रीण्यकुतो मुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञोजनः॥"[2]

अर्थात्

"रामचन्द्र जी वयोवृद्ध हैं। अतः उनके चरित्र की आलोचना उचित नहीं। उनके विषय में क्या कहा जाए? सुन्द की अबला स्त्री ताड़का को मारकर भी उनके धवल यश में बट्टा नहीं लगा और वह संसार में अब भी महापुरुष

१. मृच्छकटिक—शूद्रक—सम्पादक काशीनाथ पाण्डुरंग पृष्ठ ७१
२. उत्तररामचरित—भवभूति—सम्पादक—नारायण राम आचार्य, पृष्ठ १४३

माने जाते हैं। खर राक्षस से युद्ध करते समय वह जो तीन डग पीछे हटे थे, अथवा इन्द्र के पुत्र बाली को मारने में उन्होंने जिस कौशल का आश्रय लिया था उन सभी बातों से सारा ससार भली भाति परिचित है।"

भवभूति ने अपने नाटको में जहाँ कही हास्य की अवतारणा की है वहाँ उनका हास्य बडा ही सयत शिष्ट एव परिष्कृत रुचि का परिचायक हुआ है। उनका गम्भीर हास्य स्मित की सीमा का उल्लघन नही करता—हृदय में एक कोमल गुदगुदी सी पैदा करके अपने वैदग्ध्य मात्र से मुग्ध कर देता है। उनका हास्य अग वाणी वा वेश की विकृति से उत्पन्न न होकर बौद्धिक विनोद पर आलम्बित रहता है। उनके एक शिष्ट हास्य का और उदाहरण देखिए। सीता चित्र में उर्मिला की ओर सकेत करके लक्ष्मण से विनोद करती है—

"वत्स इयमपरा का ?" (वत्स, यह दूसरी कौन है ?)

किन्तु यह परिहास भी सीता की मातृत्व-भावना के सर्वथा अनुकूल है।

"वेणीसहार" में चार्वाक राक्षस के अनर्गल सदेश द्वारा धीरोदत्त युधिष्ठिर का एक प्रकार से उपहास किया गया है। अश्वत्थामा की भावुकता और ब्राह्मणोचित तेज तथा कर्ण की कटूक्ति और व्यग्य इनका तुलनात्मक चित्रण भी सुन्दर हुआ है।

सस्कृत गद्य लेखको में 'दण्डी' ने हास्य की अच्छी सृष्टि की है। कही शिष्ट हास्य और कही मधुर व्यग्य का इन्होंने आश्रय लिया है। एक अनूठी व्यग्यात्मक शैली में इन्होंने दम्भी तपस्वियो, कपटी ब्राह्मणो, धूर्त कुटनियो, और हृदयहीन वेश्याओ का खूब भण्डाफोड किया है। बाण में भी परिहास का अभाव नही। द्रविड यति के वर्णन में उनकी परिहास प्रियता दर्शनीय है।

काव्य शास्त्रों में

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ के हास्य रस के जो उदाहरण दिए हैं वह सुन्दर हैं—

"गुरोर्गिरं पच दिनान्यधीत्य वेदान्त शास्त्राणि दिनत्रय च।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान् समागता कुक्कुट मिश्र पादा ॥"[१]

अर्थात्—"यह देखिये, कुक्कुट मिश्र आये हैं। इन्होंने गुरु से कुल जमा पांच दिन शिक्षा पाई है। सारा वेदान्त शास्त्र तीन दिन में पढा है और तर्क शास्त्र तो फूल की तरह सूंघ डाला है।"

१ साहित्य दर्पण—विश्वनाथ, पृष्ठ १५९

"श्री तातपादैर्विहिते निबन्धे निरूपिता नूतनयुक्तिरेषा,
अङ्गं गवां पूर्वं महो पवित्रं न वा कथं रासभधर्मपत्न्याः।"[1]

अर्थात्—"हमारे पिता ने अपनी पुस्तक में एक नई युक्ति रक्खी है, (वे कहते हैं) गौ का अङ्ग तो अब तक पवित्र माना ही जाता था, पर आगे से गधी भी क्यों न वैसे ही पवित्र मानी जाय?"

आचार्य मम्मट ने "काव्य-प्रकाश" में यह उदाहरण दिया है—

"आकुञ्च्य पाणिमशुचिं मम मूर्ध्नि वेश्या,
मंत्राम्भसा प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे।
तारस्वनं प्रतितथूत्कमदात्प्रहारम्,
हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्मा।"[2]

विष्णुशर्मा नामक किसी दुराचारी विद्वान् ब्राह्मण की दिल्लगी उड़ाता हुआ कोई कहता है—"देखिए, कैसी मजे की बात है। विष्णु शर्मा 'हाय हाय' करके रोते और कहते थे कि मेरे जिस मस्तक पर मंत्रों से पवित्र किया हुआ जल छिड़का गया था, उसी संस्कृत मस्तक पर इस वेश्या ने अपने अपवित्र हाथों से तड़ातड़ चपत लगाये।"

"मंदारमरन्द चम्पू" में हास्य का यह उदाहरण है—

"लेखनीमित इतो विलोकयन् कुत्र कुत्र न जगाम पद्मभूः।
तां पुनः श्रवणसीमसंगतां प्राप्य नम्रवदनः स्मितं दधौ॥"

अर्थात्—"कलम तो कान पर रखी हुई थी और उसे इधर उधर खूब ढूंढा, अन्त में वह कान पर ही मिली। यह देख कर उसे हँसी आई और उसने सिर नीचा कर लिया।"

सुभाषित

संस्कृत साहित्य में सुभाषित के रूप में अनेक हास्य-उक्तियाँ प्रचलित हैं। यद्यपि हास्य-रस के सुभाषित पद्य अन्य रसों की अपेक्षा कम मिलते हैं किन्तु जो प्राप्य हैं वे अर्थ-चमत्कार एवं शब्द-चमत्कार दोनों ही दृष्टियों से श्रेष्ठ हैं।

---

१. साहित्यदर्पण विश्वनाथ पृष्ठ १५८

२. काव्यप्रकाश—मम्मट

"जिव्हाया· छेदनं नास्ति न तालुपतनाद् भयम्,
निर्विशेषेण वक्तव्य निर्लज्ज को न पण्डित ।"[१]

अर्थात्—"जीभ कट नही जाती, सिर फट नही जाता। तव फिर जो मुह में आवे, सो कह डालने में हरज ही क्या है ? निर्लज्ज मनुष्य पण्डित बनने में देर क्यो करे ?"

"सदावक्र सदा क्रूर सदा पूजामपेक्षते,
कन्याराशिस्थितो नित्य जामाता दशमोग्रह ।"[२]

अर्थात्—"दामाद दसवांग्रह है। वह सदा वक्र और क्रूर रहता है, सदा पूजा चाहता रहता है और सदा "कन्या" राशि पर स्थिति रहता है।"

"पाडुरा· शिरसिजास्त्रिवली कपोले,
दन्तावलिर्विगलिता न चमे विषाद ।
एणीदृशो युवतय पथि मा विलोक्य,
तातेति भाषणपरा खलु वज्रपात ।"[३]

एक रँगीला वृद्ध कहता है—"क्या करें ? सिर के बाल सफेद हो गए, गालो पर झुर्रियाँ पड गईं, दाँत टूट गए, पर इन सब बातो का मुझे कुछ भी दु ख नही है। हाँ, जब रास्ते में चलते समय मृगनयनी स्त्रियाँ मुझे देखकर पूछती हैं—बावा, किधर चले ? तो उनका यह पूछना मेरे सिर पर वज्र की तरह गिरता है।"

तृषार्त पथिक को पानी पिलाती हुई प्रमदा के चन्द्रमुख की सुधा का आकठ का पान कर रहा है, इस रोमाचकारी अनुभव का अधिक देर तक आस्वादन करने के लिए वह अपनी अँगुलियो के बीच से पानी निकल जाने देता है, वह कामिनी भी उत्कठावश पथिक के प्रति उदार होकर पानी की पतली धार धीमे-धीमे गिराती है।

"यथोर्ध्वाक्ष पिवत्यम्बु पथिको विरलागुलि,
तथा प्रपापालिकापि धारा वितनुते तनुम् ।"

इसी प्रकार हाजिर-जवावी का एक उदाहरण देखिए—

१ सुभाषितरत्नभडागारम्—काशीनाथ, पृष्ठ ३८०
२ " "
३. " "

"कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः,
तरवः पारिजाताद्याः स्नुही वृक्षो महातरु" ।

भवभूति के समर्थक कहते थे—"कालिदास आदि तो केवल कवि हैं किन्तु हमारे भवभूति महाकवि हैं।" इस पर कालिदास के प्रशंसक यह मुहतोड़ उत्तर देते—"ठीक है, स्वर्ग के पारिजात आदि भी तो केवल वृक्ष ही हैं, हां, स्नुही वृक्ष (सेंहुड़) अवश्य "महावृक्ष' है।" (आयुर्वेद में सेंहुड़ नामक कटीले वृक्ष को महातरु कहते हैं)।

पंचतंत्र एवं हितोपदेश

हितोपदेश मे "सुहृद् भेद" के अन्तर्गत एक कथा है जिसमें वाक्छल (Wit) का सुन्दर प्रयोग हुआ है। एक स्त्री के दो प्रेमी थे। एक दण्डनायक था दूसरा उसका ही पुत्र। एक दिन पुत्र उस स्त्री के पति के यहाँ बैठा वार्तालाप कर रहा था, उसी समय उसका पिता आ गया। उस स्त्री ने पुत्र को घर में छिपा दिया। थोड़ी देर के पश्चात् ही उस स्त्री का पति भी आ गया। दण्डनायक घबराया लेकिन स्त्री ने उससे कहा कि तुम चले जाओ। उसने दरवाजा खोल दिया और दण्डनायक निकल गया। स्त्री के पति ने अन्दर आकर पूछा कि दण्डनायक क्यों आया था, उसने उत्तर दिया—

"अय केनापि कार्येण पुत्रस्योपरि क्रुद्ध.। स च मार्गयमाणोऽप्य आगत्य प्रविष्टो मया कुशूले निक्षिप्य रक्षित.। तत्पित्रा चान्विष्यात्र न दृष्टः। अत एवायं दण्डनायकः क्रुद्ध एव गच्छति"। [1]

अर्थात्—दण्डनायक का झगड़ा उसके पुत्र से हो गया था। अपने पिता के क्रोध से बचने के लिए यह लड़का यहां आ गया। इसको मैंने पिछले कमरे में छिपा लिया था। दण्डनायक यहां आया और आकर किवाड़ इसलिए बन्द कर लिए कि लड़का कहीं भाग न जाय और उसे तलाश करने लगा लेकिन जब लड़का उसे नहीं मिला तो क्रोध करता हुआ निकल गया। इस पर उसका पति अपनी पत्नी की दयालुता एवं उदारहृदयता पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

इसी प्रकार पंचतंत्र में दो मुंह वाली चिड़िया की कथा में भी हास्य का सृजन सुन्दर हुआ है। एक चिड़िया के दो मुंह थे लेकिन शरीर और पेट एक ही था। एक दिन मुंह के अन्दर शहद आ गया, दूसरे मुंह ने शहद में से अपना हिस्सा मांगा लेकिन यह कह कर कि इसने प्राप्त किया है, इसके [illegible]

१. हितोपदेश—श्री नारायण पण्डित संगृहीत पृष्ठ ६८

नही दिया गया। दूसरे मुँह ने जहर पी लिया जो कि पेट में गया। परिणाम स्वरूप चिडिया मर गई।

इसमें अन्तर्हित व्यग्य यह है कि शासक तथा शासित, नौकर तथा मालिक, पति तथा पत्नी, दो मुँह वाली चिडिया के समान है, यदि इनमें से कोई एक अपना अधिकार सब सुविधाओ पर रक्खेगा तो दूसरा जहर खाकर दोनो को समाप्त कर देगा।

हिन्दी साहित्य में हास्य की परम्परा

"हिन्दी ने जहाँ सस्कृत-प्राकृत की और रीति-नीति उत्तराधिकार में प्राप्त की वहा हास्य की सामग्री भी थोडी बहुत अपनायी। परन्तु धीरे-धीरे सभ्यता और समाज में परिवर्तन होते रहने के कारण हिन्दी का हास्य उसके शृङ्गार की भांति उसी परम्परा का अन्धानुयायी न रह सका और उसका जो यत्किचित विकास हुआ वह स्वतन्त्र ही हुआ।"[1]

हिन्दी का प्रारम्भिक काल वीरगाथा काल के नाम से प्रसिद्ध है। इस काल में हास्य रस का काव्य कम लिखा गया। हाँ, जगनिक के वीर गीतो की गूंज मात्र अनेक वल खाती हुई आज भी हमारे समाज में व्याप्त है और उसकी घटाटोप सनसनी में कभी-कभी, "युद्ध का नाम सुन कर कायरो की धोती ढीली पड जाती है" आदि वाक्य हँसी की विजली चमका देते हैं।

वीरगाथा काल के अन्तिम चरण में कबीर का जन्म हुआ। **इन्होने हिन्दी साहित्य में व्यग्य लिखने की परम्परा स्थापित की।** इन्होने हिन्दू और मुसलमान दोनो को सावधान किया। इनका व्यग्य वडा तीखा होता था। प्रतिमा पूजन की हँसी उडाते हुए कबीर ने कहा है—

"पाहन पूजे हरि मिले—तो किन पूज पहार,
याते तो चक्की भली, पीसि खाई ससार।"

—(कबीर)

कबीर दास ने उन धर्मध्वजियो तथा पाखडियो की खूब खबर ली है जा समाज में धर्म के नाम पर अनाचार फैला रहे थे —

"माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुंखमाँहि,
मनुवा तो चहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि।"

—(कबीर)

[1] हिन्दी कविता में हास्य-रस—डा० नगेन्द्र—"वीणा" नवम्बर १९२७, पृष्ठ ३३

मैथिल-कोकिल विद्यापति भी हास्य-रस लिखने में पीछे नहीं रहे। 'छद्म विलास" में "जटला" मास को तो मूर्ख बनाया ही गया है। इसके उपरांत शिवशंकर की गृहस्थी में उन्हें हास्य के लिए अधिक सामग्री मिली है—

"कितय गयो मरेरे बुढिला जती,
पीसल भांग रहल गेर सती।"

—(विद्यापति)

कहती हुई गौरी अपने बुढिला जती के लिए परेशान है, उधर ब्रह्मा आदि उनको शिव की करतूतों पर चिढ़ा रहे हैं। इसके उपरान्त जायसी के पद्मावती रतनसेन के प्रथम मिलन (मधुचन्द्र) प्रसंग में हास्य की अच्छी योजना हुई है। रतनसेन की मिन्नतें सुन कर पद्मावती कह उठती है —

"श्रो हठि दूर जोग तेरी चेरी—आवे बास करकुटा केरी,
हौं, रानी, तू जोगि भिखारी—जोगहि भोगहि कौन चिन्हारी।"

—(जायसी)

वास्तव में देखा जाय तो विशुद्ध हास्य एवं वक्रोक्ति का जितना सफल प्रयोग भावाधिपति सूर ने किया वह बेजोड़ है। वाक्छल (Wit) का प्रयोग देखिये—कृष्ण चोरी करते पकड़े जाते हैं। गोपी के पूछने पर कि "श्याम कहा चाहत से डोलत ?" आप कहते हैं "मैं जान्यो ये घर अपनो है या धोखे में आयो, देखत ही गोरस में चींटी काढ़न को कर नायो।" हास्य के जितने प्रकार हैं सूर साहित्य में सब मिलते हैं। व्यंग्य (Satire) का प्रयोग देखिए—

"ऊधो धन तुम्हरो व्यौहार !
धनि वे ठाकुर, धनि वे सेवक, धनि तुम वरतन हार ॥"

स्मित हास्य (Pure Humour) की जितनी शुद्ध व्यंजना सूर ने मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। ऊधो को देखकर गोपियां कहती हैं—

"आये जोग सिखावन पांडे।
परमारथी पुरानन लादे ज्यों बनजारे टांडे ॥"

जब वे अपनी निर्गुण ज्ञान गाथा बखानते हैं तो गोपियां उन्हें बनाना आरम्भ कर देती हैं—

(१) "निर्गुण कौन देस को वासी
मधुकर कहु समझाय सौंह दे, बूझति सांच न हांसी ॥"

(२) "ऊधो, जाहु तुम्हें हम जाने
श्याम तुम्हें ह्यां नाहिं पठाये, तुम हो बीच भुलाने ॥"

तुलसीदास जी ने हास्य की परम्पराएँ स्थापित करने में योग दिया। रामचरितमानस तथा कवितावली में अनेक स्थलो पर हास्य, व्यग्य, वक्रोक्ति, वाक्छल आदि की सुन्दर व्यजना हुई है। वक्र-उक्ति (Irony) का प्रयोग लक्ष्मरण-परशुराम सवाद में सुन्दर हुआ है।

"वाल-ब्रह्मचारी अति क्रोधी" का अकारण क्रोध देख कर लक्ष्मरण कैसी चुटकी लेते हैं—"वहु धनुही तोरी लरिकाई, कवहुँ न अस रिस कीन गुसाई।" लेकिन वात वढ जाने पर लक्ष्मरण के शब्दो में एक अपूर्व वक्रता आ जाती है—

"लखन कहउ मुनि सुजस तुम्हारा।
तुम्हहिं अछत को वरनहिं पारा॥
आपन मुंह तुम आपन करनी।
वार अनेक भाँति बहु वरनी॥
नहिं सतोष तो पुनि कछु कहहू।
जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥"

—(रामचरित मानस)

इसके अतिरिक्त नारद-मोह प्रसग एव अगद-रावरण सवाद में वाक्छल के उदाहरण मिलते हैं। रामचन्द्र जी के आने से देवताओ के हर्ष का वर्णन कितना हास्य-मय किया गया है—

"विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा विनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि [वृन्द सुखारे॥
ह्वं हैं सिला सव चन्द्रमुखी, परसे पद-मजुल कज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू जो कृपा करि कानन कों पगुधारे॥"

—(कवितावली)

जिन दिनो एक ओर भक्ति का स्रोत उमड रहा था उन्ही दिनो दूसरी ओर अकवरी दरवार में कला का विकास हो रहा था। रहीमदास ने पुरुष पुरातन से मजाक किया —

"कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सव कोय।
पुरुप पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय॥"

रीतिकाल तो शृङ्गार-रस प्रधान था ही। हा, परम्परा निर्वाह करने के हेतु हास्य-रस के छन्द भी कवियो ने लिखे। विहारी के कुछ दोहो में हास्य की

बड़ी सूक्ष्म व्यंजना मिलती है। अरसिकों पर उन्होंने व्यंग्य करते हुए लिखा है —

"करलै सूंघि सराहि कै, सबै रहे गहि मौन।
गन्धी गन्ध गुलाब को, गँवई गाहक कौन॥
करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गन्धी, मति अन्ध तू अतर दिखावत काहि॥"

—(बिहारी)

इसके अतिरिक्त बिहारी का हास्य-रस की दृष्टि से यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है —

"बहुधन लै अहसानु कै, पारो देत सराहि।
बैद वधू हँसि भेद सौं, रही नाह मुंह चाहि॥"

—(बिहारी)

वैद्य जी दूसरे को तो शक्तिवर्धक औषधि देते हैं, लेकिन स्वयं शक्ति संचय करने में असमर्थ हैं।

रीतिकाल के अलीमुहीब खाँ "प्रीतम" भी हास्य रस के प्रसिद्ध कवि हुए। उन्होंने "खटमल-बाईसी" लिखी। इन्होंने अपनी कविता का आलम्बन खटमल को बनाया—

"जगत के कारन करन चारौं वेदन के,
कमल में बसे वै सुजान ज्ञान धरि कै।
पोषन अवनि, दुख-सोषन तिलोचन के,
सागर में जाय सोए सेस सेज करि कै॥
मदन जरायो जो, संहारै दृष्टि ही में सृष्टि,
बसे हैं पहार वेऊ भाजि हरबरि कै।
विधि हर हर, और इनतें न कोऊ, तेऊ,
खाट पै न सोवें खटमलन कों डरि कै॥"[1]

"बाघन पै गयो, देखि बनन में रहे छपि,
सांपन पै गयो, ते पताल ठौरि पाई है।
गजन पै गयो, धूल डारत हैं सीस पर,
बैदन पै गयो काहू दारू न बताई है।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल—संशोधित संस्करण, पृष्ठ २४०

जव हहराय हम हरि के निकट गए,
हरि मोसों कही तेरी मति भूल छाई है।
कोऊना उपाय, भटकत जनि डोलै, सुन,
खाट के नगर खटमल की दुहाई है ॥"[1]

रीतिकाल मे अधिकतर हास्य के आलम्वन कृपण नरेश तथा देवता रहे। सूरन कवि के शब्दो में पार्वती जी की परेशानी का हाल देखिए—

"वाप विष चाखै भैया षटमुख राखै देखि,
आसन में राखै बस वास जाकौ अचलै।
भूतन के छैया आस पास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यान हू ते न चलै।
बैल बाघ बाहन वसन को गयन्द खाल,
भाँग को धतूरे को पसारि देत अचलै।
घर को हवाल यह सकट की वाल केहे,
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै।"[2]

फेरन कवि "चतुरानन की चूक" के माध्यम से हास्य की कितनी सुन्दर व्यजना करते हैं —

"गृहिन दरिद्र, गृहत्यागिनि विभूति दीन्हीं,
पापिन प्रमोद पुन्यवन्तन छलो गयो।
सनि को सुचित्त रवि ससि को कलेस,
लघु व्यालन अनन्द सेस भार तें दलो गयो।
"फेरन" फिरावत गुनिन गृह द्वार द्वार,
गुन ते विहीन ताकि बैठक भलो दयो।
कौन कौन चूक कहौ तेरी एक आनन सों,
नाम चतुरानन पै चूकतो चलो गयो।"[3]

वेनी के भडौवे (Satire) हिन्दी में अपने ढग की एक मात्र वस्तु हैं। "भडौवे" में उपहासपूर्ण निन्दा रहती है। पिता के श्राद्ध में दुर्गन्धियुक्त पेडे भेजने पर "वेनी" कवि उस कृपण पर व्यग्य वाण से प्रहार करते है —

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल—सशोधित सस्करण, पृष्ठ २४०
२ माधुरी, जुलाई १९४३, पृष्ठ ६३३
३ " ६३६

"चींटी न चाटत मूसे न सूंघत,
मांछी न वास ते आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर में,
तब ते रहै हैजा परोसिन घेरे॥
माटिहु में कछु स्वाद मिलै इन्हैं,
खाय सो ढूंढत हरं बहेरे॥
चौंकि उठ्यो पितु लोक में बाप ये,
आपके देखि सराध के पेरे॥"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ से ही हास्य-रस की रचनाएं होती रही हैं। आलम्बन लगभग एक से ही रहे। उत्कृष्ट कोटि के हास्य का अभाव ही रहा। जिसका कारण एकमात्र शृंगार रस की प्रधानता एवं हास्य-रस को अधिक महत्व न देना ही था। अपने इष्ट-देवों से उपालम्भ, पेटूपन का मजाक ही प्रधान रहा। सामाजिक कुरीतियों एवं समाज सुधार की ओर भी कबीर ने मार्ग दिखाया। हाँ, हमारे महाकवि सूर एवं तुलसी में जो हास्य मिलता है वह अवश्य उच्च स्तर का रहा है। सूर जैसा "स्मित" एवं "वक्र-उक्ति" मय हास्य तो आज भी दुर्लभ है।

●

१. माधुरी जुलाई १९४३, पृष्ठ ६३७

: ५ :

हास्य की कमी

"यह बात कहनी पडती है कि शिष्ट और परिष्कृत हास्य का जैसा सुन्दर विकास पाश्चात्य साहित्य में हुआ है वैसा अपने यहाँ अभी नहीं दिखाई दे रहा है।"[1]

शुक्ल जी के उपरोक्त कथन से असहमत होना कठिन है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ से ही हास्य-रस का अभाव रहा है। पिछले अध्यायो में यह विवेचन किया जा चुका है कि प्राचीन काल में शृङ्गार रस हमारे काव्य पर छाया रहा। सस्कृत से जो परम्पराएँ हमें मिली वह भी शृङ्गार रस प्रधान ही मिली। गुण एव मात्रा दोनो की दृष्टियो से देखा जाय तो पाश्चात्य साहित्य में जो हास्य रस का विवेचन एव कृतियाँ मिलती हैं उनकी अपेक्षाकृत हिन्दी साहित्य में हास्य रस की मात्रा अत्यन्त अल्प रही है। सस्कृत के आचार्यों ने हास्य रस के लक्षण एव उदाहरण देकर तथा प्रहसन क्रिया के भेद बता कर छुट्टी पा ली। 'वर्गसाँ' ने हास्य रस का जो सूक्ष्म विवेचन अपने "लाफ्टर" में किया है वैसा हमारे साहित्य में नही मिलता। वर्गसाँ ने "हम क्यो हसते हैं", इस प्रश्न का उत्तर अपनी पुस्तक में बडी स्पष्टता से दिया है। वर्गसाँ ने हास्य के मूल को 'असगति" माना है तथा हमारे यहाँ के आचार्यों ने हास्य के मूल को 'विकृति" माना है। यद्यपि दोनो का तात्पर्य यही है कि हास्य के सृजन के लिए भेद-द्रष्टा होना आवश्यक है। किन्तु भारतीय प्रतिभा अपने दार्शनिक सस्कारो के कारण अभेद-द्रष्टा रही है इसलिए वह हास्य के अधिक अनुकूल नही पडी।

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल—सशोधित एव परिवर्द्धित सस्करण, पृष्ठ ४७४

अद्वैतवाद

भारतीय जीवन-दर्शन के विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि "भारती दृष्टि सदैव भेद में अभेद देखती रही है—द्वैत को मिटाकर अद्वैत की स्थिति को प्राप्त करना ही उसका लक्ष्य रहा है। यों तो समय-समय पर यहाँ अनेक दर्शनों की सृष्टि हुई है जो एक दूसरे के विरोधी रहे हैं, फिर भी गहरे में जाकर देखने से अद्वैत भावना प्राय सभी में मूल रूप से अनुस्यूत मिलती है। वास्तव में अनेकता में एकता की प्रतीति—भेद में अभेद की प्रतीति के बिना पूर्ण आस्तिकता की स्थिति सम्भव नहीं है। परन्तु आप देखें कि यह जीवन-दृष्टि हास्य के एकान्त प्रतिकूल पड़ती है।"[1] डा० नगेन्द्र का यह कथन व्यंग्य (Satire) तथा वक्रोक्ति (Irony) के लिए तो ठीक हो सकता है किन्तु शुद्ध हास्य के सृजन के लिए अद्वैतवादी जीवन-दर्शन कहाँ तक बाधक रहा है यह समझ में नहीं आता। व्यंग्य तथा वक्रोक्ति में एक दूसरे को नीचा दिखाने की तथा निन्दा करने की प्रवृत्ति रहती है। "किन्हीं आचार्यों ने तो हास्य के पीछे दूसरे को नीचा दिखाने और अपने को श्रेष्ठ साबित करने की प्रवृत्ति बतलाई है। यह भी अद्वैतवाद के विरुद्ध है किन्तु यह द्वैत-मानना (यदि है तो) नगेन्द्र जी के बताये हुए व्यंग्य (Satire) और वक्रोक्ति (Irony) के मूल में अधिक है। शुद्ध हास्य के मूल में तो फालतू उमंग जो खेल में भी देखी जाती है अधिक है। कथित द्वैत भावना भी विषमता, विकृति और असंगति को न सह सकने तथा भेद में अभेद और विषमता में साम्य खोजने की अद्वैत-परक प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति केवल हास्य में ही नहीं है विज्ञान और दर्शन सभी में है। वैज्ञानिक नियम भी इसी के फल हैं। हास्य द्वारा वैषम्य और विलक्षणता को दूर कर समानता लाने की चेष्टा की जाती है। यह सर्वथा भारतीय मनोवृत्ति के अनुकूल है।"[2] वस्तुतः अद्वैतवाद हास्य-रस के सृजन में कुछ हद तक बाधक अवश्य है किन्तु शुद्ध हास्य के सृजन में विशेष बाधक नहीं। जैसा कि पिछले अध्याय में भी विवेचन किया गया है कि वैदिक साहित्य में हास्य-रस बराबर लिखा गया है।

गम्भीर भावुक प्रकृति

हास्य में गम्भीर भावुकता में बैर है। इसके लिए [illegible] और [illegible] प्रकृति आवश्यक है। राग और द्वेष, हमारे मानव-जीवन में यही दो मौलिक

१. साहित्य सन्देश—दिसम्बर १९४९—पृष्ठ २२८, डा० नगेन्द्र
२. साहित्य सन्देश—दिसम्बर १९४९—पृष्ठ २२२ बाबू गुलाबराय

प्रवृत्तियाँ है। परिणामस्वरूप शृङ्गार और करुण रस ही अधिक प्रचलित रहे। हमारे यहाँ रागी मिलेंगे या मिलेंगे वैरागी। आपको इसके बीच की चीज़ नही मिलेगी। इसलिए हमारे यहा हर्ष को ही महत्व दिया गया है। हास्य से सन्तोष नही हुआ। **"जीवन में उसने हर्ष को ही लक्ष्य बनाया है और यदि उसमें व्याघात पडा है तो वह उससे विरक्त होकर उसे त्याग ही बैठा है। गम्भीर प्रकृति का मनुष्य विकल या कुण्ठित होने पर ठोकर मारना पसन्द करेगा, हँसेगा नहीं।"**[१]

अग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर के दुखान्त नाटको में भी हास्य रस मिलता है। उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि विपदाओ में भी हँस सकते हैं। उनका जीवन व्यवहारिक एव गतिशील है। वे जीवन में आने वाली प्रत्येक बाधा का उपहास कर सकते है परन्तु हमारे यहाँ के भवभूति आदि कवि ऐसी विषम परिस्थितियो में करुण रस का सृजन ही कर सकते है।

परिस्थितियाँ

कविवर 'प्रसाद' जी के मत से हास्य मनोरंजिनी वृत्ति का विकास है परन्तु हमारी जाति शताब्दियो से पराधीन और पददलित है इसलिये हमें हँसने के लिए अवकाश ही नही है। वीरगाथा तथा भक्ति युग की परिस्थितियो पर एक नज़र डालने पर स्पष्ट हो जाता है कि उन विपरीत परिस्थितियो में हास्य का सृजन कितना असम्भव था। वीरगाथा काल में कवियो को वीर रस लिखने से ही फुरसत नही मिलती थी तथा भक्तिकाल में जो भावना का उद्रेक था वह हास्य रस के सृजन के सर्वथा प्रतिकूल था। रीति युग में अवश्य कविता का दरबार स्थापित हो गया था और यह भी आशा की जा सकती थी कि आश्रय-दाताओ के मनोरजन के लिए कविजन हास्य रस की व्यजना करते किन्तु इसके विपरीत हास्य रस और भी कम मिलता है। इसका स्पष्ट कारण है मानसिक अस्वस्थता। **"रीतियुग में हमारा समाज मन और शरीर दोनों में ही रुग्ण था—उस समय अस्वस्थ शृङ्गार की दृष्टि सम्भव थी—राजा लोगों का, सम्पन्न सामाजिको का उसी से मनोरजन हो सकता था। स्वस्थ हास्य की अपेक्षा शृङ्गार की चुहल ही उन्हें अधिक प्रिय थी।"**[२] इस काल में केवल परम्परा पालन के हेतु कवियो ने हास्यरस लिखा।

---

१ बाबू गुलाब राय—साहित्य सन्देश—दिसम्बर १९४६, पृष्ठ २२२

२ साहित्य सन्देश—दिसम्बर १९४६—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ २२९

वर्तमान स्थिति

भारतेन्दु काल में अवश्य हास्य रस का सृजन सन्तोषजनक हुआ और यह आशा होने लगी थी कि अब यह अभाव पूरा हो जायगा। दासता के बन्धन में होते हुए भी उस समय एक लेखक मंडल तैयार हो गया था जो कि हास्य एवं व्यंग्य के माध्यम से अपने दिल के गुब्बार निकालता था। स्वतन्त्रता के बाद परिस्थिति पुनः गम्भीर एवं सघन हो गई है। आज का मनुष्य इतना व्यस्त हो गया है कि उसे हँसने का अवकाश नहीं। हिन्दी में ही नहीं पाश्चात्य देशों के साथ भी यही बात है।

इंगलैंड की सुप्रसिद्ध "पंच" पत्रिका के सम्पादक मि० मैलकम मैगरिस पी० ई० एन० के एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के उपलक्ष में ढाका आये थे। उन्होंने अपने भाषण में इस बात पर खेद प्रकट किया कि पंच के लेखकों में भी पहली जैसी जिन्दादिली और विनोद-प्रियता अब नहीं रह गई है। वे भी मानो नैराश्य एवं विषाद के शिकार हो रहे हैं। एक व्यंग्य पत्रिका के सम्पादक के रूप में मि० मैलकम मैगरिस को ऐसा लग रहा है कि वे मानो एक अप्रिय कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है कि हमारे चतुर्दिक का जगत क्रमशः इतना निरानन्दमय एवं नैराश्यपूर्ण होता जा रहा है कि इस प्रकार की परिस्थिति के बीच हास्य एवं कौतुक केवल अर्थहीन ही नहीं बल्कि कभी-कभी अशिष्टतापूर्ण भी प्रतीत होता है। संसार के शक्तिशाली देश आज दो दलों में विभक्त हो रहे हैं और उनके बीच अनवरत रूप से शीतल युद्ध चल रहा है। साहित्य, संगीत और कला के बदले आज तोप, बन्दूक और आणविक बम संस्कृति के प्रतीक हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में कौन हृदय खोल कर हँस सकता है और हास्य कौतुक का उपभोग करने वाले रसिकजन आज रह ही कहाँ गये हैं। हास्य कौतुक का यह अभाव आज न्यूनाधिक रूप में सब देशों में देखा जा रहा है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की गुरु-गम्भीरता एवं जटिलता इतनी बढ़ती जा रही है और भावी महायुद्ध की आशंका एवं विभीषिका से लोग इतने आतंकग्रस्त हो रहे हैं कि उन्हें हँसाने की चेष्टा करना मूर्खता जैसी प्रतीत होती है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने भारत की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए अपने 'हास्य' शीर्षक लेख में लिखा है—"भारत जैसे देश में जहाँ युद्ध की विभीषिका पश्चिम के देशों जैसी नहीं है, अन्य प्रकार की विकट समस्याएँ हैं जिनके कारण अधिकांश मनुष्यों का जीवन दिन रात चिन्ता-

ग्रस्त बना रहता है। जिस समाज में अधिकाश स्त्री पुरुष अनशन, अर्धाशन, रोग, शोक, महामारी आदि विपदाओं से विपिन्न हो, जहाँ शिक्षित कर्मठ युवक काम नही मिलने के कारण चोरी, डकैती जैसे दुष्कर्म करने के लिए वाध्य हो, जहा माता की आँखो के सामने उसकी शिशु सन्तान आहार के अभाव में तिल-तिल कर दम तोड दे, युवतियाँ पेट के लिए सतीत्व का विक्रय करें, पिता अपने वच्चो को अनाथावस्था में छोड कर भाग जाँय वहाँ के इस निष्ठुर, निष्करुण, रूढ वातावरण के वीच हास्य के उपादान कहाँ से जुटाये जा सकते है ?"

इसके अतिरिक्त हास्य-रुचि (Sense of Humour) हमारे यहाँ अभी तक विकसित नही हो पाई है। भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड लिनलिथगो के वारे में कहा जाता है कि वे प्रात की चाय के साथ शकर का कार्टून देखते थे कि उन्हे कैसा चित्रित किया गया है। उनका कथन था कि वे प्रात इस-लिए शकर का कार्टून देखते थे कि उनका दिन भर प्रसन्नता से कटे किन्तु यहाँ विपरीत अवस्था है। इस लेखक ने स्वयं अनुभव किया है कि लोगो में अपनी कमजोरियो पर व्यग्य सुनने की तनिक भी वर्दाश्त नही है। इसकी उनके ऊपर अस्वस्थ प्रतिक्रिया होती है, वे क्रोधित ही नही हो जाते वरन् वदला लेने की भावना से लेखक का अनिष्ट तक करने पर उतारू हो जाते हैं। पाश्चात्य देशो में हास्य-रस के साहित्य की समृद्धि का एक यह भी कारण है कि वहाँ के पाठको की हास्य-रुचि विकसित है। वे हास्य का मर्म पहचानते हैं एव उसका रस लेना जानते हैं।

अन्त में आज हास्य-रस के साहित्य को देख कर यह आशा की जा सकती है कि लोग अनुभव करने लगे हैं कि हास्य-रस की कमी को दूर किया जाय, हमारे यहा अब भी व्यग्य तथा वक्र-उक्ति (Irony) की कमी नही है। हाँ, शुद्ध हास्य के सृजन की वहुत वडी आवश्यकता है जो कि समय आने पर पूरी हो जायगी।

●

: ६ :

प्रहसन

हास्य-प्रधान नाटक को प्रहसन कहते हैं । साहित्य के इतिहास से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जब जब समाज का सांस्कृतिक स्तर निम्न कोटि का रहा है, तभी अधिक संख्या में प्रहसन लिखे गए हैं । समाज के ढाँचे में जब जब क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, उस समय प्रहसन लिखने की सामग्री साहित्यकारों को मिलती रही है । जीवन की प्रगति के साथ साथ उसमें कुछ विकृति भी आ जाती है जो कि प्रहसन को कथा-वस्तु प्रदान करती है । प्रहसन के लिए समाज की स्थिति परमावश्यक है । यद्यपि एक व्यक्ति को लेकर भी प्रहसन लिखा जा सकता है किन्तु उसमें लोकप्रियता तभी आ पावेगी जबकि उस व्यक्ति विशेष को हम किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधि मान लें । साहित्यिक तथा ऐतिहासिक रूप से यह माना हुआ सिद्धान्त है कि प्रहसन सदैव समाज के सहारे ही फल फूल सकता है ।

यूनानी प्रहसनकार 'ऐरिस्टोफेनीज' ने अपने समकालीन लेखकों, कवियों और नाटककारों की खिल्ली इसी वास्ते उड़ाई कि उनमें तथा अन्य साहित्यकारों में वैमनस्य था । अंग्रेजी साहित्य में भी प्रहसन लिखने का अत्यधिक प्रचार है । प्रहसन की लोकप्रियता इसलिए अधिक रही कि उनमें मनुष्य को हास्य मिलता है एवं समाज के विकृत पक्ष की व्यंग्यात्मक आलोचना मिलती है ।

संस्कृत साहित्य में विदूषक परम्परा

संस्कृत साहित्य में आरम्भ से प्रहसन लिखने की साहित्यिक परम्परा नहीं प्राप्त होती । संस्कृत नाटकों में बीच बीच में विनोदात्मक दृश्य अवश्य मिलते हैं और वे नाटक के मार्ग में सहयोग देते हैं । यदि विदूषक-संयुक्त-नाटक को सम्मिलित न करें, संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्र प्रहसनों के अभाव का कारण उस समय के समाज की सम्पन्न दशा एवं आदर्शवादी नाटक रचना की परम्परा रही है ।

विदूषक की पृष्ठभूमि—सस्कृत के प्राय सभी नाटककारो ने विदूषक को राजा का अतरग मित्र, उसके कार्यों को सफलता दिलाने वाला एक आवश्यक साधन और 'पेटू' दिखाया है। नाटको के धार्मिक मूल पर विचार करते हुए 'कीथ' विदूषक का वर्णन करते है—"For the religious origin of Drama a further fact can be adduced, the character of Vidusaka, the constant and trusted companion of the King, who is the normal hero of an Indian play The name denotes him as given to abuse, and not rarely in the dramas he and one of the attendants on the queen engage in contents of acrid repartee, in which he certainly does not fare better"

कीथ (Keith) तथा विल्सन (Wilson) जैसे पाश्चात्य सस्कृत विद्वानो ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि विदूपक ब्राह्मण ही क्यों रखा गया ? वास्तव में राजा का सच्चा तथा अतरग मित्र होने के लिए यह आवश्यक समझा गया होगा कि वह व्यक्ति विद्वान तथा तत्काल उत्तर देने में समर्थ हो। साथ ही उच्चवश का भी हो ताकि उनकी पारस्परिक धार्मिक सधि में किसी प्रकार के रक्त विकार के कारण मलिनता न आ जाय। असगति हास्य का आधार है। जब एक ऊँची श्रेणी का व्यक्ति जान बूझ कर अपने गौरव के प्रति उदासीनता रखता है, अपनी हीनता की घोषणा करता है तो उसके लक्ष्य में वैचित्र्य दीख पडता है और हमें हँसी आ जाती है। 'कर्पूरमजरी' में राजशेखर का विदूषक जब कविता करता है तो इसमें सदेह नही रहता कि वह जान बूझ कर ऐसी रचना कर रहा है।

अधिकतर विदूषक पेटू, भुक्कड तथा लालची दिखलाये गए हैं। क्या कारण है कि पेटूपन के,गुण को ही नाटककारो ने पसन्द किया है ? वास्तव में पेटूपन स्वार्थ चिंतन की ओर सकेत करता है और नाटक में जीवन सग्राम के एक विशिष्ट आवेशमय भाग के चित्रण में पेटूपन की पुकार जगत की मधुर माया के अमर व्यापार की ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित कर लेती है। ससार में केवल प्रेम या लडाई ही एक सत्य नही, पेट भी एक अनिवार्य सत्य है। इस दार्शनिक समीक्षा के साथ राजा के अतरग मित्र विदूपक का 'भूखे और नगे' चिल्लाना, हर बात में पेट का रूपक लगाना सचमुच हँसी का कारण होता है। जो सबका अन्नदाता, जिसके साथ किसी बात की कमी नही, भोजन भी जहाँ विविध व्यजन रस-पूर्ण, उसी राजा का मित्र पेट पर हाथ धरे और लड्डुओ के लिए लार टपकावे क्या यह हँसी का कारण नही ?

'भास' ने विदूषक को इसी रूप में दिखाया है। उनके 'अविमारक' नाटक में विदूषक अपने स्वामी का भक्त है, वह उसके स्वार्थ साधन के लिए जी-जान से प्रस्तुत रहता है। युद्ध में भी कुशल है पर वह पेटू है। "प्रतिज्ञा योगन्धरायण' में वासवदत्ता की वह याद करता है पर इसलिए कि वह उसकी मिठाई की चिन्ता रखती थी, उसके लिए मिठाई का प्रबन्ध करती थी। 'मृच्छकटिक' का विदूषक भी इसी पेटूपन का शिकार रहा है। वसंतसेना की पांचवीं ड्योढी मे पहुंच कर वह कहता है —

"यहां वसंतसेना का रसोईघर मालूम होता है, क्योंकि अनेक प्रकार के व्यंजनों में हींग और जीरे की महक से हम जैसे दरिद्रो की लार टपकी पडती है। एक ओर लड्डू बँध रहे हैं, एक ओर मालपुआ बनता है, यहां कदाचित् कोई मुझसे खाने को झूंठे ही पूछे, तो पांव धो भोजन के लिए तुरंत बैठ जाऊँ"।

कालिदास का 'माढव्य' भी क्या इस पेट के राज्य के बाहर है ? रत्नावली और नागानन्द में भी विदूषक को इस पुट से संयुक्त कर दिया गया है। विदूषक-परम्परा संस्कृत साहित्य से हिन्दी में आई जिसका विवेचन आगे किया जायेगा।

प्रहसन के विषय

अंग्रेजी साहित्य मे प्रहसनों का मूल विषय मनुष्य की मानवी भावनाएँ हैं। लोभ, गर्व, अहंभाव, प्रतिहिंसा इत्यादि भावनाओं को लेकर श्रेष्ठ प्रहसनो की रचना हुई है। 'अंग्रेजी नाटककारों के प्रहसन के विषयाधारों में निम्नलिखित विषय फलप्रद माने हैं —

१. सौंदर्य, ज्ञान तथा धन का अहंभाव।
२. मानसिक कुरूपता, असंगति, अनैतिकता।
३. भ्रममूलक आशाएँ तथा विचार।
४ निरर्थक वार्तालाप अथवा असंगत संवाद अथवा श्लेषपूर्ण कथोपकथन।
५. अशिष्टता, तथा वितन्डावाद।
६ प्रपन्च-पूर्ण कार्य तथा अस्वाभाविक जीवन।
७ मूर्खतापूर्ण कार्य।

८ पाखण्ड तथा अस्वाभाविक आदर्श।
९ शारीरिक स्थूलता।
१० मद्यपान तथा भोजन प्रियता।
११ विदूषक।

इसी प्रकार हिन्दी प्रहसनकारो के प्रिय विषय, पाखड, मद्यपान तथा सामाजिक कुरीतियां जैसे बाल-विवाह, वृद्धविवाह, फैशनपरस्ती, लोभी, पेटू, सिनेमा जीवन, व्यर्थ की शानशौकत आदि रहे है। उनमें बहुविवाह, वेश्यावृत्ति, बाल-विवाह, नशेबाजी, स्त्रियो की हीनदशा, अविद्या, सूदखोरी, पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावान्तर्गत खान-पान और आचार-विहीनता, अंग्रेजी शिक्षा और फैशन के कुत्सित प्रभावो आदि से पीडित भारतीय समाज का क्रन्दन सुनाई पडता है।

डा० खत्री ने 'नाटक की परख' मे प्रहसन लेखको के विषयो का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—[1]

(१) **गृहस्थ जीवन** —(क) पति-पत्नी के घरेलू झगडे (ख) बहुविवाह तथा अविवाहित जीवन (ग) बेमेल विवाह तथा तलाक (घ) श्वसुर, सास, जेठानी, नन्द तथा बहुओ के झगडे (ङ) मालिक तथा नौकर के झगडे।

(२) **सामाजिक जीवन** —(क) शराब-खोरी (ख) जुआ (ग) असगत प्रेम तथा वेश्यावृत्ति (घ) छल तथा कपटपूर्ण व्यवहार (ङ) ऊँचनीच का भेद (च) रूढिवादी (छ) आधुनिक फैशन-युक्त जीवन, (ज) प्राचीन शिक्षण-पद्धति, पडित तथा मौलवी का जीवन (झ) धार्मिक पाखण्ड (ञ) हिंसा।

(३) **राजनीतिक जीवन** —(क) दलबन्दी (ख) स्वेच्छाचारिता (ग) कुनीति।

(४) **आर्थिक जीवन** —(क) मालिक-मजदूर के झगडे (ख) मध्ययुग के उपयुक्त दृष्टिकोण (ग) धन का अहकार (घ) लेन-देन व्यापार।

(५) **वैयक्तिक जीवन** –(क) शारीरिक स्थूलता (ख) भोजन-प्रियता।

विदूषक

अंग्रेजी, फ्रासीसी, सस्कृत तथा हिन्दी के प्रहसन लेखको में विषय-साम्य मिलता है। हर देश की समस्याएँ अलग अलग होती है। हिन्दी प्रहसनो में यदि ग्राहस्थिक समस्याएँ अधिक मिलेंगी तो अंग्रेजी प्रहसनो में सामाजिक

१ डा० एम० पी० खत्री—"नाटक की परख"—पृष्ठ २४०, २४१

अधिक। हास्य के आलम्बन प्रायः सब देशों में असंगतियों वाली वस्तुएँ एवं सामाजिक कुरीतियाँ ही मिलती हैं।

प्रहसन का वर्गीकरण

मुख्य रूप से प्रहसनों का वर्गीकरण चार भागों में किया जा सकता है—"(१) चरित्र-प्रधान प्रहसन (२) परिस्थिति-प्रधान प्रहसन (३) कथोपकथन-प्रधान (४) विदूषक-प्रधान।"

चरित्र-प्रधान प्रहसन

मानवी-भावों के आधार पर चरित्र-प्रधान प्रहसन लिखे जाते हैं। लोभ, मोह, पाखण्ड, द्वेष, अहंकार, क्रोध, लालसा को आधार मानकर ही चरित्र-प्रधान-प्रहसनों का निर्माण हुआ है। फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी प्रहसन लेखकों ने अधिकतर अपने नायकों को इन्हीं मानवी-भावों में से एक या दो का प्रतीक मानकर अपने प्रहसन लिखे हैं। जब ये मानवी भाव अपनी सीमाओं का उल्लंघन करने लगते हैं तभी ये प्रहसन के विषय बनने योग्य हो जाते हैं। चरित्र-प्रधान प्रहसन लेखक मानवी भावों का सूक्ष्म निरीक्षक होता है एवं श्रेष्ठ नाटकीय कला की सहायता से प्रहसन लिखता है। यह मानव हृदय की जटिलताओं में चक्कर काटता हुआ अनुभव और निरीक्षण का आधार लिए उनकी क्रियाओं तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को समझता हुआ इधर उधर प्रहसनात्मक अंशों को बटोर कर हास्य प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। चरित्र-प्रधान प्रहसन हिन्दी में कम मिलते हैं।

परिस्थिति-प्रधान प्रहसन

लेखक को अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से सावधान रहना आवश्यक है। गाली-गलौज, अश्लील-हास्य, एवं कुरुचिपूर्ण स्थलों से भी प्रहसन को बचाना आवश्यक है। इसे वास्तविक जीवन पर बल देना ही अभीष्ट होना है। जीवन की परिस्थितियाँ जितनी अधिक स्वाभाविक होंगी, प्रहसनका प्रभाव उतना ही अधिक स्थायी एवं शुभ होगा।

नाट्य-साहित्य के विद्वानों ने चरित्र-प्रधान प्रहसनों को परिस्थिति प्रधान प्रहसनों से उच्चकोटि का माना है। वास्तव में यह धारणा उचित ही है। चरित्र-प्रधान प्रहसनों के निर्माण में जितनी उच्च नाटकीय कला की आवश्यकता पड़ती है उतनी परिस्थिति प्रधान-प्रहसनों के निर्माण में नहीं पड़ती। परिस्थिति-प्रधान प्रहसनकार केवल असाधारण तथा असामान्य परिस्थितियों

इकट्ठी कर आसानी से हास्य प्रस्तुत कर देता है। उसकी खोज केवल जीवन के मोटे मोटे स्थलो तक सीमित रहती है, उसकी कला की सफलता इसी में है कि वह कुछ ऐसे सशय तथा विस्मय में डालने वाले स्थल आकस्मिक रूप से प्रस्तुत कर दे और उन्हे ऐसे हास्यास्पद स्थलो से सम्वन्धित कर दे कि उनमें रोचकता आ जाय। किन्तु चरित्र-प्रधान प्रहसन-लेखक को मानवी-भावो का चित्रण करना पडता है जो कि काम कठिन और असिधारा-व्रत के समान है। हिन्दी में परिस्थिति प्रधान प्रहसनो की भरमार है।

कथोपकथन प्रधान

जिन प्रहसनो में कथोपकथन के माध्यम से हास्य उत्पन्न किया जाता है वे कथोपकथन-प्रधान प्रहसन होते हैं। वाक्चातुर्य्य हास्य उत्पन्न करने का प्रधान साधन है। श्लेष, व्यग्य तथा उपहास इसके प्रधान अङ्ग है। जिन पात्रो से हाजिर जवावी कराई जाय वह जोड-तोड की होनी आवश्यक है। कभी-कभी वाक्-चातुर्य्य दिखाने के चक्कर में लेखक अतिक्रमण कर बैठता है जो कि अवाछनीय है। सवाद में स्वाभाविकता होना आवश्यक है। प्रत्येक वाक्य में श्लेष का होना मस्तिष्क को थका देता है। इसका प्रयोग पान में चूने के समान होना वाछित है।

कुछ लेखक विशेष पात्रो का कोई तकियाकलाम अथवा शाब्दिक आवृत्ति दे देते है तथा "जो है सो", "तेरा राम भला करे", "सीताराम सीताराम" आदि वास्तव में शाब्दिक अथवा भाव-समूहो की पुनरावृत्ति में हास्य की आत्मा निहित होती है। हिन्दी के कुछ प्रहसन लेखको ने इस शैली को अपनाया है।

विदूषक प्रधान

अँग्रेजी साहित्य में विदूषक-प्रधान प्रहसन नही के बराबर है। विदूषक प्रमुख नायक का अन्तरग मित्र होता है। यह नायिका को नायक का सन्देश पहुँचाता है। विदूपक को हास्य प्रस्तुत करने में अपनी सज-धज तथा वेषभूषा का स्पष्ट सहारा रहता है। अपनी टोपी, अपनी तिलक-मुद्रा तथा अपनी चाल-ढाल मे वह साधारणत हास्य प्रस्तुत किया करता है। अपनी स्थूल काया की दुहाई देकर तथा अपनी भोजन-प्रियता और पेटूपन की ओर इशारा करके वह दर्शको को हँसाता है। सस्कृत एव हिन्दी नाटको में विदूपक का सहारा लिया जाता है।

भारतेन्दु-काल (१८५०—१९००)

सामाजिक परिस्थितियाँ

भारतेन्दु काल में भारत ब्रिटिश-सत्ता के आधीन था। पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव देश की संस्कृति एवं साहित्य पर व्यापक रूप से पड रहा था। इसने दो समानान्तर आन्दोलनों को जन्म दिया। एक ओर प्राचीन अन्धविश्वासों एवं सामाजिक ढाँचे के प्रतिकूल शक्तिशाली प्रतिक्रिया हुई तो दूसरी ओर पश्चिमी विचारों के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभाव से समाज में सांस्कृतिक पतन की आशंका का जन्म हुआ। स्वयं डलहौजी के समय में शिक्षा और नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रचार सांस्कृतिक आशंका उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था। भारतवासी गंगा पर पुल बंधते हुए नहीं देख सकते थे। सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से समाज पतन की ओर जा रहा था। "सच तो यह है कि मानसिक अध्यवसाय रहने पर भी भारतवासी जड़पदार्थ में परिणत होगये थे। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त पण्डे, पुरोहित, ज्योतिषी, गुरु आदि जैसे अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित ब्राह्मण हिन्दू समाज पर छाये हुये थे। इसके साथ ही विधवा-विवाह-निषेध, बहु-विवाह, खानपान सम्बन्धी प्रतिबन्ध, समुद्र-यात्रा के कारण जाति बहिष्कार, नशाखोरी, पर्दा, स्त्रियों की हीनावस्था, धार्मिक साम्प्रदायिकता, अफीम खाना, आदि अनेक कुप्रथाओं का चलन हो गया था।"[1] नये अंग्रेजी पढ़ने वाले बाबू लोग तो मिल्टन एवं शेक्सपीयर का अध्ययन करते थे किन्तु घरों में पण्डे, पुरोहितों के विचारों तथा मूर्तिपूजा का प्रचार था।

उपरोक्त दो विचार धाराओं के संघर्ष के कारण प्रहसनों का जन्म हुआ। यह आदर्शवादी प्रतिक्रिया थी। यद्यपि पाश्चात्य रहन-सहन तथा शिक्षा के सामाजिक जीवन पर बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी किन्तु साहित्यिकों को पाश्चात्य संस्कृति के प्रति इतना कड़ा विरोध न था। इन प्रहसनों से मनोरंजन केवल माध्यमिक स्तर के लोगों का ही हो सका किन्तु उच्चस्तरीय बौद्धिक विद्वानों को इनके अनिरंजित वर्णनों एवं अनिनाटकीयता से न तो मनोरंजन ही हुआ न उनको इनसे मानसिक भोजन ही मिला।

हास्य उद्रेक करने के साधन

(१) **भ्रान्त अथवा निरर्थक**—हम बालक के हास्य को निरर्थक हास्य कह सकते हैं। बालक के हास्य का विशेष कारण नहीं होता। जिस वस्तु को

१. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ६३

देख कर वालक हँस पड़ता है हो सकता है किसी वृद्ध को उस पर विलकुल हँसी न आए। सरल चित्त मनुष्यो का स्वभाव भी वालको जैसा ही होता है और उनको भी इस प्रकार का हास्य हँसाने में समर्थ होता है। प्रहसनो में इस प्रकार के भ्रान्त अथवा निरर्थक का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता है। भ्रान्त कई प्रकार से हास्य उत्पन्न करता है—(१) भ्रान्त में वस्तु का आकार विकृत कर दिया जाता है और वह विकृत रूप हमें हँसाता है। (२) भ्रान्त को हम उस रूप में हँसाते देखते है जब एक वस्तु को वह कल्पना की सीमा से उल्लघन कराके वास्तविकता से बहुत दूर कर देता है। (३) भ्रान्त में एक वस्तु का वर्णन इतना अत्युक्तिपूर्ण होता है कि उसका रूप पूर्णतया बदल जाता है।

(२) **व्यग्य एव वाक्छल**—प्रहसनो में घृणायुक्त व्यग्य वाणो का प्रयोग भी समाज की विकृतियो की खिल्ली उड़ाने के लिए किया जाता है। कथोप-कथन में चमक लाने के लिए वाक्छल का भी प्रयोग होता है जो कि हास्य के उद्रेक करने में भी सहायक होता है।

प्रमुख प्रहसनकार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—इनके लिखे हुए चार प्रहसन प्रसिद्ध हैं—"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति", "अन्धेर नगरी", "विषस्यविषमौषधम्" तथा "जाति विवेकनी सभा।"

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

इसका रचना काल सन् १८७३ है। यही इनका प्रथम प्रहसन है। इसमें मांस-भक्षी और शाकाहारियो का चरित्र चित्रित किया गया है। इसमें चार अक है। सनातन धर्मी पडितो में बहुत से वलिप्रेमी थे जो दूसरो के मोक्ष दिलाने के वहाने अपनी लौकिक तृष्णा मिटाते थे। भारतेन्दु ने इन पुरोहितो की अच्छी खबर ली है। पहले अक में रक्तरजित राजभवन में वलिदान के साथ जुआ, मदिरा और मैथुन को भी न्यायपूर्ण ठहराया गया है। दूसरे अक में भारतेन्दु ने विदूषक द्वारा धूर्त वैष्णवो की आलोचना करवाई है, तीसरे अक मे हिंसामय यज्ञ करने वाला राजा जब यमराज के सम्मुख उपस्थित होता है तो चित्रगुप्त उसका लेखा उपस्थित करता है।

यह चरित्र-प्रधान प्रहसन है। इसका उद्देश्य सामाजिक सुधार है। व्यग्य तीखा और हृदय पर चोट करने वाला है। चित्रगुप्त के मुख से यमराज के सम्मुख पुजारियो पर कैसा तीखा व्यग्य कसा गया है —

"महाराज, ये गुरु लोग हैं, इनके चरित्र कुछ न पूछिये। केवल दभार्थ इनका तिलकमुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति से मूर्ति को दण्डवत न किया होगा। पर मन्दिर में जो स्त्रियाँ आईं उनको सर्वदा तकते रहे। महाराज, इन्होंने अनेकों को कृतार्थ किया है और इस समय तो मैं श्री रामचन्द्र जी की श्री कृष्णदास हूँ, पर जब स्त्री सामने आवे तो उससे कहेंगे, मैं राम तुम जानकी, मैं कृष्ण तुम गोपी और स्त्रियाँ भी ऐसी मूर्ख कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं।"

इसमें वक्रोक्ति (Irony) का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया गया है। भारतेन्दु ने बलिदान प्रथा का विरोध करते हुए साथ में अंग्रेजों के राज्य और उनके समर्थकों की भी व्यंग्य स्तुति की है। भारतेन्दु चित्रगुप्त से यह कहलाना नहीं भूले कि "अंग्रेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको "स्टार आफ इण्डिया" की पदवी मिलती है।"

मंत्री की व्यवस्था के बारे में चित्रगुप्त से कहलाया है—

"प्रजा पर कर लगाने में तो पहिले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया।"

इस प्रहसन में वाक्छल (Wit) का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है—

"विदूषक—क्यों वेदान्ती जी, आप मांस खाते हैं या नहीं?

वेदान्ती—तुमको इससे कुछ प्रयोजन है?

विदूषक—नहीं, कुछ प्रयोजन तो नहीं है, हमने इस वास्ते पूछा कि आप तो वेदान्ती अर्थात् बिना दांत हैं सो भक्षण कैसे करते होंगे।"

नाटकीय कला तथा हास्य विधान—इसका कथानक सुगठित नहीं है। वस्तुविन्यास शिथिल है। हास्य तो है ही नहीं, व्यंग्य भी कटु है। उसमें अवांछनीय तीव्रता है। कहीं-कहीं तो व्यंग्य भी भोंडा हो गया है। यदि इस दृष्टि से विचार किया जाय कि उस समय हिन्दी में प्रहसनों की कोई परम्परा नहीं थी और इन्होंने ही इसका सूत्रपात किया तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक प्रयास बुरा नहीं। यथार्थ जीवन से कथानक लेकर, समाज-सुधार के स्वास्थ्य दृष्टिकोण और दुराचार के प्रति घृणा पैदा करने में यह प्रहसन सफल हुआ है। मनोरंजन तो यह करता ही है।

इसमें भारतीय नाट्य-रीति एवं विदेशी नाट्य-पद्धति दोनों का सम्मिश्रण हुआ है लेकिन इस का परिपाक किसी भी दृष्टिकोण से नहीं हो पाया है।

अन्धेर नगरी

इसका रचना काल सन् १८८१ है। इसमें ६ अक है, गर्भांक एक भी नही। यह ६ दृश्यो का प्रहसन है। इसमें राज्य-व्यवस्था, जातिप्रथा, उच्च-वर्गो की काहिली और खुशामद-पसन्दी की तीखी आलोचना की गई है। इसका मुख्य उद्देश्य यह दिखाना था कि लोक-सस्कृति के रूपो का राजनीतिक चेतना फैलाने के लिए किस तरह प्रयोग करना चाहिए।

यह प्रहसन एक ऐसे राजा के चरित्र को लेकर लिखा गया है जिसके राज्य में किसी प्रकार की व्यवस्था नही थी। जैसा किसी ने कहा न्याय हो गया। सब चीज टके सेर मिलती है। अंग्रेज राज्य का पर्यायवाची ही "अँधेर नगरी" कहा जा सकता है। इसका उद्देश्य ही अंग्रेजी राज्य की अंधेरगर्दी एव जनता में उसके विरोध में तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करना है। यही के अमले चूरन खा कर दूनी रिश्वत पचाते हैं, यही हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर टके सेर मिलता है। यही कुलमर्यादा, बडाई, सच्चाई, वेद-धर्म सब टके सेर बिकता है। इसी अंधेर नगरी के राजा को फाँसी चढाया जाता है।

वास्तव में जन-साहित्य का यह सुन्दर प्रयोग है। भारतेन्दु ग्राम जनता में जिस साहित्य का प्रचार करना चाहते थे उसी का यह एक उदाहरण है। इसके गीत भी लोक गीतो के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

इसमें व्यग्य (Satire) का प्रयोग देखिए। ब्राह्मण पर व्यग्य है—

"जातवाला (ब्राह्मण)—जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जांय और धोबी को ब्राह्मण कर दें।"

—(भारतेन्दु-नाटकावली, पृष्ठ ६९२)

वक्रोक्ति (Irony) का प्रयोग भी यत्र-तत्र किया गया है। कुजडिन के मुख से अंग्रेज़ी राज्य व्यवस्था की व्याजस्तुति कराई गई है —

"कुजडिन—जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।"

—(भारतेन्दु-नाटकावली, पृष्ठ ६९०)

नाटकीय कला तथा हास्य विधान—यह परिस्थिति-प्रधान प्रहसन है। परिस्थितियो के सयोग-दर्शन से ही हास्य उत्पन्न होता है। इसमें व्यग्य की तीव्रता है लेकिन उसमें मर्यादा है। घटनाओ में अतिरजना हो गई है यथा

राजा का स्वय फाँसी पर चढने को तैयार हो जाना। चरित्र चित्रण का अभाव है। मनोरजन करने में प्रहसन सफल है। कथोपकथन मे स्वाभाविकता है तथा पात्रों के अनुकूल ही कथोपकथन करवाया गया है। इसका सबसे बडा गुण है इसकी स्वाभाविकता। इसमें उस समय के यथार्थ जीवन का चित्रण मिलता है। इसमें प्रतीक-व्यजना उच्चकोटि की है किन्तु कलात्मकता एव नाटकीय तत्वों का निर्वाह नहीं हो सका। यद्यपि यह प्रहसन उनके प्रहसनों में सर्वोत्कृष्ट है। इसकी हास्य-पूर्ण उक्तियाँ प्रशसनीय हैं। जडवादी जीवन-दर्शन पर इसमें कठोर व्यग्य सफल उतरा है। "भारतेन्दु की यह छोटी और आज कुछ भद्दी और अर्धनग्न, अर्द्धसभ्य सी लगने वाली कृति एक शाश्वत दार्शनिक सत्य पर आधारित है इसलिए इसकी लोकप्रियता बनी रही है और बनी रहेगी।"[1]

विषस्य विषमौषधम्

इनकी रचना काल सन् १८७७ है। यह एक "भाण" है। "भाण" की व्याख्या भारतेन्दु ने अपने "नाटक" निबन्ध में इस प्रकार की है—"भाण में एक ही अक होता है। इसमें नट ऊपर देख-देख कर, जैसे किसी ने बात करे, आप ही सारी कहानी कह जाता है। बीच में हँसना, गाना, क्रोध करना, गिरना इत्यादि आप ही दिखलाता है। इसका उद्देश्य हँसी, भाषा उत्तम और बीच-बीच मे सगीत भी होना है"।[2] वास्तव में प्रहसन तथा "भाण" में नाम-मात्र का अन्तर मिलता है। दोनों ही हास्यप्रधान होते हैं। प्रहसन और भाण का आधुनिक प्रहसनों से अन्तर दिखाते हुए डा० कीथ का कहना है—

"The Prahsanas and Bhans are hopelessly coarse from any modern Europe an standpoint, but they are certainly often in a sense artistic productions The writers have not the slightest desire to be simple, in the Prahsanas their tendency to run riot is checked, as verse is confined to errotic stanzas and descriptions, and some action exists In the Bhana, on the other hand, the right to describe is paramount, and the poets give themselves full rein"[3]

१ हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पाण्डे, पृष्ठ १३८

२. भारतेन्दु—नाटकावली पृष्ठ ३६२

3 The Sanskrit Drama—Dr. Keith, Page 264

इसमें मल्हारराव को व्यभिचार के कारण गद्दी से उतारने की चर्चा है। इसमें एक ही पात्र है भडाचार्य। इसका उद्देश्य देशी राजाओ की असमर्थता और अँग्रेज़ी राज्य की स्वार्थपरता पर व्यग्य किया गया है। तत्कालीन राजाओ पर व्यग्य करता हुआ भडाचार्य कहता है—

"कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्वकृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होने उत्तर दिया जैसे शतरज के राजा, जहाँ चलाइये वहाँ चलें।"[१]

वक्रोक्ति (Irony) का प्रयोग भी किया गया है। अँग्रेज़ो के स्वामिभक्त कहते है—"साढे सत्रह सौ के सन् में जब आरकाट में क्लाइव किले में बन्द था तो हिन्दुस्तानियो ने कहा कि रसद घट गई सिर्फ चावल है सो गोरे खाँय हम लोग माँड पीकर रहेगे।"

नाटकीय कला—इसमे मुहावरो का प्रयोग उत्कृष्ट हुआ है तथा "पासा पडे सो दाव, राजा करे सो न्याव", "बिजली को घन का पच्चड", "हसब उठाइ फुला उब गालू।" यह चरित्रप्रधान है और भडाचार्य के मुख से महाराज मल्हार राव का चरित्र-चित्रण सफलतापूर्वक हुआ है। "विप की औषधि विप है" इस सिद्धान्त का प्रतिपादन "विपस्य विपमौपधम्" में सफलतापूर्वक किया गया है।

सबै जात गोपाल की—इसे हम एकाकी कह सकते है। इसका लक्ष्य ब्राह्मणो की अर्थलोलुपता की आलोचना करना है। इसमें दो पात्र है—एक पडित और एक क्षत्री।

पडित जी के शब्दो में इसका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। क्षत्री के यह पूँछने पर कि ब्राह्मणो ने यह व्यवस्था दे दी है कि कायस्थ भी ब्राह्मण है, पडित जी कहते है —

"प०—क्यों, इसमें दोप क्या हुआ? "सबै जात गोपाल की" और फिर यह तो हिन्दुओ का शास्त्र पन्सारी की दुकान है और अक्षर कल्पवृक्ष हैं। इसमें तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है, पर दक्षिणा आपको बाएँ हाथ में रख देनी पडेगी। फिर क्या है फिर तो सबै जात गोपाल की।"[१]

---

१ "हरिश्चन्द्र मैगजीन"—नवम्बर, सन् १८७३, जिल्द १

नाटकीय कला—यह कथोपकथन-प्रधान है। नाटकीय-तत्व नहीं के बराबर है। कथोपकथन मनोरंजक है और उसके द्वारा व्यग्य, हास्य एव वक्रोक्ति का सफल प्रयोग किया गया है।

प्रताप नारायण मिश्र

कलि कौतुक रूपक—इसका रचना काल सन् १८८६ है। इस प्रहसन में चार दृश्य हैं। उसका उद्देश्य लेखक ने नाटक के नाम के साथ दे दिया है "जिसमें बड़े बड़े लोगो की बड़ी बड़ी लीला विशेषत: नगर निवासियों के गुप्त चरित्र दिखलाए गए हैं।" इस प्रहसन में समाज के फैले हुए अनाचार की हिम्मत के साथ आलोचना की गई है। उसमें उस वर्ग-संस्कृति पर व्यग्य किया गया है जिसमे पैसे की आराधना मुख्य है। वेश्यागमन तथा अन्य सामाजिक चारित्रिक कमजोरियों का भण्डाफोड किया गया है। अँग्रेजी ने जो चमत्कार इस युग में दिखाये, मिश्र जी उस परम्परा को बहुत वर्षों पहले कायम कर गए थे।

मिश्र जी के नाटक "भारत-दुर्दशा" मे भी साधुओं का वितण्डावाद, दुराचारियों का दुर्व्यवहार, मास-भक्षियो तथा मदिरा-सेवियों का अनाचार दिखाया गया है।

नाट्य कला एव हास्य विधान—इनके प्रहसन चरित्र-प्रधान हैं। "कलि कौतुक रूपक" म अन्तिम दृश्य उपदेशात्मक अधिक हो गया है। नाटकीय सघर्ष का अभाव है। चरित्र चित्रण सजीव है तथा सवाद स्वाभाविक हैं। कलि कौतुक रूपक में हास्य एव व्यग्य का प्रयोग अधिक हुआ है। अधिकतर हास्य ग्रामीण बोली द्वारा उत्पन्न किया गया है। सवाद का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

"सरफरीजान (वेश्या) एवं नवल् (उसका साथी) का प्रवेश—

न०—कौन खुश नसीब है बेटा।

रं०—बस, सब पर है जिसके जाम बगल में हबीब है,
उसके सिवा भी और कोई खुश नसीब है।

नव—पर इनके बेटा बोले। हा. हा हा हा।

स०—तो फिर अब विलम्ब केहि काज?

न०—इस भड़ुए की गँवारी बोली न गई।

च०—तौका । हम तुभुक आहिन ?

श०—क्या साहब ! हम लोग तुरुक हैं जो उर्दू बोलते हैं ।

च०—उर्दू छिनारि कै बोलैया सब सार तुरके आहीं ।

(सब हँसते हैं—शकर लज्जित होता है)"

इन्होने मुहावरो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया है ?

कठोर व्यग्य का एक उदाहरण देखिये । बाबा लोग जो सन्तान देने का व्यापार करते है उनको आलम्बन बनाकर चम्पा भक्तिन से कहलवाया गया है—

"तू भी बाबा जी को जानै है ? भाई बडे पहुचे ! एक दिन मैं गई सो कहैं क्या हैं कि सन्तान तौ लिखी है पर गृहस्त से नहीं—मैं तो सुनके रह गई ।"

प० बालकृष्ण भट्ट

जैसा काम वैसा दुष्परिणाम—इसका उद्देश्य वेश्यागामियो की व्यग्यात्मक आलोचना करना है । रसिकलाल मोहिनी वेश्या के मोह मे अपनी धन सम्पत्ति नष्ट करता है और अपनी पत्नी मालती को अनेक प्रकार के कष्ट देता है ।

नाट्य विधान—यह कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि का नही है । हास्य भी स्थूल है । उपदेशात्मक वाक्यो की भरमार है । सवाद शिथिल एव बोझिल हैं । कथा-वस्तु में कोई विकास नही । नाट्कीय सघर्ष का सर्वथा अभाव है । इनके नाटको का एक सग्रह "भट्ट नाटकावली" नाम से नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हुआ है, उपरोक्त प्रहसन उसी में है ।

यद्यपि इनका दूसरा नाटक "दमयन्ती-स्वयवर" प्रहसन नही है किन्तु उसमे वचन विदग्धता एव परिहासमयी भाषा का अच्छा प्रयोग हुआ है । राजा नल दमयन्ती के विरह में व्याकुल है । भागुरायण उसका विश्वस्त अमात्य है ।

"राजा—मित्र, कोई ऐसा उपाय सोचो जिसमें मेरा मनोरथ सफल हो ।

भागु—अच्छा ठहरिये, मै समाधि लगाये उसके मिलने का उपाय सोचता हूँ । पर देखिये, आप बीच में टोक कर मेरी समाधि भग न कर देना ।

(आँख मूँद नाक दबाये समाधि लगाता है)

(आँख खोलकर) मित्र उसके मिलने का उपाय हमने सोच लिया।

राजा—कहिये क्या ?

भागु—यह कि उस राड की जाई का एक बार फिर ध्यान कर गहरी नींद में गड़गाप हो जाइये। अपने मनोरथ को जल्द पा जाओगे।"

राधा चरण गोस्वामी

भंग-तरंग—राधाचरण गोस्वामी "भारतेन्दु" नाम से एक मासिक पत्र निकालते थे। यह प्रहसन उसी में छपा है। इसमें नशेबाजी के दुष्परिणामों को दिखाया गया है। इसमें छः दृश्य हैं। इसके पात्र छूटू चौबे उस्ताद, बीछी, बुलबुल, सूरजी, नारायण, बच्चीसिंह, आदि हैं। भंगड़ियों को पुलिस का दरोगा पकड़ने आता है। नशे में वे उससे भी मजाक करते रहते हैं। वह चला जाता है। फिर ये लोग वेश्यागमन करते हुए पकड़े जाते हैं और मौका पाकर भाग निकलते हैं।

इसके संवाद बड़े मनोरंजक हैं। पहले दृश्य में यमुना किनारे भंगड़ी बैठे हुए हैं। उस्ताद और शागिर्दों का वार्तालाप होता है—

"बुलबुल—(गाता है—भैरवी में) धन काकी सेजड़िया पै रात रही, माथे की बेंदी जात रही।

सूर—बोलो लड्डू कचौरी खात रही।

छूटू—अबे यों गाव—अब के दंगल में मथुरा की बात रही और बच्ची सिंह के साथ हवालात रही। धन काकी सेजड़िया पै रात रही।

सब—आहा. हा।"[1]

इस प्रहसन में भंगड़ियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। नशेबाज जब नशा करके बैठता है तो उसे हाथी मच्छर नजर आता है, ऐसा नशेबाजों का अनुभव है। भंगड़ियों में पुलिस पर बातचीत होती है। एक साहब कोत-वाल के महल का वर्णन करते हैं तो दूसरे उससे कहते हैं—

"बीछी (धप्पा से)—गुरु, कुतवाल तुम्हें कर दें।

१. 'भारतेन्दु'—१६ नवम्बर सन् १८८३, पृष्ठ ८६.

धप्पा—ना, कुतवाल तौ तोय कर दें, हमें तो कुतवाल के ऊपर—कौन होय—सिपट्टर कर दें।

बुल—गुरु ! उस्ताद को सिपट्टर कर दें और तुम्हे क्लट्टर कर दें।

धप्पा—क्लट्टर को कहा महीना होय है !

बुल—बाईससे २२००)।

धप्पा—हैं बाईस से की तौ हम एक दिन में ठडाई ही पी जायेंगे, घर के कहा खायगें !

बुल—तो जज्ज कर दें ?

धप्पा—जज्ज कू कहा मिले है ?

बुल—जज्ज कू चार हजार को महीना मिले है।

धप्पा—हत्तेरी की, चार हजार की तो रबडी ही खाय जायेंगे, फिर भी रोवनो ही रह्यो।

बुल—तो लाटसाहब कर दें।

धप्पा—हां, हां, लाट कर दें, वाकू कहा मिले है ?

बुल—लाट साहब कू वीस हजार मिले हैं।

धप्पा—हां, इतने में तो घर को काम काज चल जायगो, पर हम इतनो और लेंगे। सेर भर भाग, दो आना को मसालो, तीन पाव जलेबी, आध सेर माखन मिसरी, डेढ़ सेर मोहन भोग, पान सेर खस्ता पूरी कचौरी, दो सेर इमरती, तीन सेर मोती चूर के लड्डू, पान सेर दूध, दस सेर रबडी और मलाई, खोआ और द्वारिकाधीश के प्रसाद की बरफी"।[1]

नाट्य कला—इसकी वस्तु यथार्थवादी जीवन से ली गई है। सवाद जानदार है। चरित्र चित्रण भी सजीव है। नाटकीय सघर्ष का भी पुट है। उस समय के प्रहसनों में यह प्रहसन काफी वज़नदार है।

बूढे मुँह मुंहासे—इसका रचना काल सन् १८८७ है। इस प्रहसन में दो अक हैं। इसके मुखपृष्ठ पर प्रकाशित इस दोहे से इसका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है—

"घास पात जे खात हैं, तिनहिं सतावति काम,
माल मलीदा खात जे तिनके मालिक राम।"

---

१ भारतेन्दु—१६ सितम्बर १७८३, पृष्ठ ६५

इसके मुख्य पात्र हैं मौला, कल्लू, लाला नारायण दास, सितारो, नन्नी और विद्याधर पंडित। इसमें लाला नारायण दास का चरित्र चित्रण किया गया है जो ऊपर से धर्म का चोगा पहिने रहते हैं और वास्तव में दुराचारी हैं। नारायण दास का असामी है मौला जिसकी स्त्री बहुत सुन्दर है। लाला नारायण दास की नियत उस पर बिगड़ जाती है और वे उसको पाने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करते हैं।

नारायण दास अपना शृङ्गार करने के बाद सोचते हैं—

"नारायण दास—(स्वगत) ये ताज खूब माथे पर खिला है, मुसलमान औरतें इसको खूब पसन्द करती हैं और इससे यह भी तो एक मतलब बना कि गंजी चाँद ढंक गई।"

सितारो के शब्दों में लाला जी के चरित्र पर व्यंग्य कैसा मार्मिक है—

"सितारो—(हँसकर) फिर लाला भगत भी बड़े, दिन भर माला हाथ में ही रक्खें, सोमवार औ एकादशी का व्रत करें। आहा, कैसी भक्ती।"

लाला जी का पुत्र अंग्रेजी पढ़ता था। लाला जी उसे समझाते थे कि आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से हिन्दू धर्म रसातल को चला जायगा क्योंकि लड़के मुसलमान बावर्चियों के हाथ का खाना खा लेते हैं। उनके इस पाखण्ड पर गोस्वामी जी ने लाला जी के नौकर कल्लू द्वारा छींटा कसवाया है—

"मुसलमान की रोटी खाने से तो जात जाय, वाकी लुगाई रखने से कछू नाय।"

नाटकीय कला तथा हास्य विधान—यह चरित्र-प्रधान प्रहसन है। इसमें सजीव चरित्र-चित्रण है। नाटकीय संघर्ष भी कुशलता पूर्वक निभाया गया है। कथोपकथन में जान है। व्यंग्य एवं वाक्छल का प्रयोग खूब हुआ है, शुद्ध हास्य का अभाव है।

तन मन धन, श्री गुसाईं जी के अर्पण—इसका रचना काल सन् १८९० है। यह आठ दृश्यों का छोटा सा प्रहसन है। सेठ रूपचन्द गुसाईं जी, नागा कुन्नी, सेठानी जी तथा रसनिधि गोकुल इसके प्रमुख पात्र हैं। जैसा कि प्रहसन के नाम से स्पष्ट है कि गुसाईं लोगों का खाका इसमें खींचा गया है। उनका पाखण्ड, उनकी चरित्र-हीनता उनकी लोभ-लीला की धज्जियाँ उड़ाना ही इसका उद्देश्य है। गुसाईं जी ने स्वयं सेठ रूपचन्द उनकी सेठानी की भेंट

गुँसाई जी को चढाने को तैयार हो जाता है लेकिन नवशिक्षित गोकुल बाधक होता है और गुँसाई जी की किरकिरी हो जाती है।

नाट्य कला और हास्य विधान—इसमें सवाद द्वारा ही हास्य का उद्रेक हुआ है। कथा-विन्यास अधिक सुन्दर नही। पात्रो के क्रिया व्यापार से चरित्रो का प्रस्फुटन नही होता, लेखक को पात्रो के मुख से अपनी बात कहलवानी पडती है। हमारी सम्मति में यह प्रहसन इनके तीनो प्रहसन में हलका है।

देवकी नन्दन त्रिपाठी

"भारतेन्दु के बाद यदि तीव्र और कठोर व्यग्य मिलता है तो वह देवकी-नन्दन त्रिपाठी का। "प्रहसनो द्वारा समाज-सुधार का कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने शुरु किया और देवकीनन्दन त्रिपाठी ने उसे आगे बढ़ाया।"[१]

इन्होने आठ प्रहसन लिखे। "रक्षा बन्धन" (१८७८), "एक एक के तीन तीन" (१८७६), "स्त्री चरित्र" (१८७६), "वेश्या विलास", "बैल छ टके को", "जयनार सिंह की" (१८८३), "सैंकडे में दश दश" तथा "कलियुगी जनेऊ" (१८८३) इनमें अन्तिम प्रहसन को छोड कर बाकी अप्रकाशित हैं। रक्षा बन्धन में मदिरा सेवन और वेश्यागमन का दुखद परिणाम दिखाया गया है। "एक-एक के तीन-तीन" में ब्याज-खोरो की मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है, "स्त्री चरित्र" में वेश्यागामी तथा कुटिल स्त्रियो के दूषित चरित्र को दिखाया गया है, "वेश्या विलास" का उद्देश्य इसके नाम से स्पष्ट है। "बैल छ. टके को" इसका उद्देश्य मनुष्य को अधिक लोभी होने के दुष्परिणामो से परिचित करना है तथा "साँची करे मीठी पावे" का आदर्श सिखाना है। "जयनार सिंह की" का उद्देश्य बूझा तथा जादू टोना करने वालो की खिल्ली उडाना है तथा तत्कालीन अन्धविश्वासो पर करारी चोट करना है, "सैंकडे में दश-दश" में मद्यपान तथा निन्द्यकर्म करने वालो की पुलिस द्वारा किरकिरी कराई गई है।

नाट्य कला एव हास्य विधान—इन प्रहसनो में तीक्ष्ण व्यग्य मिलता है, अन्य प्रहसनकारो की भाति अर्थहीन प्रलाप नही। इनका परिहास सगत एव स्वाभाविक है। कथोपकथन भी स्वाभाविक है और चरित्र-चित्रण भी सतोष-जनक किया गया है।

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० वार्ष्णेय पृष्ठ २४१-२४२

अन्य प्रहसन लेखक

बाबू नानकचन्द का "जौनपुर का काजी", राधाचरण गोस्वामी द्वारा सम्पादित "भारतेन्दु" के तीन अंकों में क्रमश प्रकाशित हुआ है। इसमें एक कुम्हार अपने गधे को आदमी बनाने के लिए मौलवी साहब के पास छोड़ जाता है। थोड़े दिनों बाद जब वह उसे वापिस लेने आता है तो मौलवी साहब कुम्हार से कह देते हैं कि वह तो जौनपुर का काजी हो गया। वह उसी स्थान पर पहुँचता है। उसे देख कर काजी साहब के छक्के छूट जाते हैं। कुम्हार को जब काजी जी का चपरासी धक्का देता है तो वह कहता है —

"कुम्हार—अरे भैया हट जा। चो जोरावरी करे हैं। मोय द्वै द्वै बात तो कर लेन दै। यातें इही दीमे है काजी अब कैसो आय कै बैठ गये हैं। मामा लोहरो (मुह बनाकर) गधा कू निकाल दो, ई खबरई नाहे कितेक रुपैया खरचा भये हैं जब गधा ते आदमी करायो है। तोरई कैसे फूल अब ही तो तेरो पलान जेवरा धरो है ज्यों की त्यों, लाऊँ का? और तेरे हाकने की छन्टी मेरे हाथ में ही है, देखई रही तेरी नानी, जाते तेरी खाल उडाई ही।"[1]

इसमें हास्य का उद्रेक अतिरंजित घटनाओं द्वारा कराया गया है। इसका प्रधान उद्देश्य मनोरंजन ही है। संवाद अत्यन्त सजीव हैं।

"किशोरीलाल गोस्वामी" का "चौपट चपेट" भी सुन्दर प्रहसन है। इसमें वेश्यागमन का दुष्परिणाम दिखाया गया है। श्लिष्ट शब्दों अथवा बेढंगे नामों द्वारा हास्य का उद्रेक किया गया है।

इसके अतिरिक्त "देवदत्त शर्मा" का "अति अंधेर नगरी" (१८९५) "नवल सिंह चौधरी" का "वेश्या नाटक" (१८९३), "विजयानन्द" का "महा अंधेर नगरी (१८९८) "राधाकान्त लाल" का "देशी कुत्ता विलायती बोल" (१८९८), "बलदेव प्रसाद मिश्र" का "लल्ला बाबू", "रामलाल शर्मा" का "अपूर्व रहस्य" (१८८८), "पन्नालाल" का 'हास्यार्णव" (१८८५), "हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ" का 'ठगी की चपेट" (१८८४), प्रहसन उल्लेखनीय हैं। इन प्रहसनों के विषय भी वही मदिरा-सेवन तथा वेश्यागमन के दुष्परिणाम, फैशन परस्ती, धार्मिक पाखण्ड आदि हैं। हास्य-उद्रेक के साधनों में भी अति-नाटकीयता एवं अतिरंजित घटनाओं का समावेश है।

---

१ भारतेन्दु—अंक ६, ७, ८ (सम्मिलित), पृष्ठ १२५.

द्विवेदी युग

यह युग विशेषकर भाषा-परिष्कार का रहा। इस युग में भारतेन्दु की विनोद-प्रियता एव जिन्दादिली का स्थान शुष्कता एव गम्भीरता ने ले लिया। द्विवेदी जी का व्यक्तित्व अत्यधिक गम्भीर था। उनके युग में कम प्रहसन लिखे गये।

उस समय जो पारसी नाटक कम्पनियाँ प्रचलित थी उनमें गम्भीर नाटको के बीच में एक छोटा सा कथानक जो हास्य-प्रधान होता था, रख देते थे। आगाहश्र काश्मीरी, नारायण प्रसाद "वेताव" आदि लेखक नाटको के बीच में लघु प्रहसन रख कर वे नाटको को नीरस होने से बचाते थे। परिमाण में देखा जाय तो भारतेन्दुकाल में जो प्रहसनों की बाढ आई थी वह द्विवेदी युग में उतर गई और परिणामस्वरूप भारतेन्दु युग से अपेक्षाकृत कम सख्या में प्रहसन लिखे गये। इस युग के आलम्बन डाक्टर, वैद्य, ज्योतिषी, राय बहादुर और आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा नए फैशन के शिकार हमारे नये युवक और नव-युवतियाँ, ब्राह्मण और उनके शास्त्र, साधु और उनके नीच व्यवहार और व्य-भिचार-प्रवृत्ति आदि थे।

नाट्कला एव हास्य-विधान—वास्तव में देखा जाय तो यह मानना पडेगा कि भारतेन्दु युग से नाट्यकला का विकास द्विवेदी युग में अधिक हुआ। प्रारम्भिक प्रहसन होने के कारण नाट्यकला की दृष्टि से इस युग को प्रहसन-कारो में परिष्कार पाया जाता है। घटनाओ द्वारा स्वय पात्र का चरित्र स्पष्ट होना, व्यग्य में कटुता का कम होना, शुद्ध हास्य का प्रहसनो में समावेश एव कथोपकथन आदि में परिपक्वता दिखलाई पडती है। यद्यपि चरित्र-चित्रण का अभाव एव अतिनाटकीय प्रसगो का बाहुल्य अब भी विद्यमान था।

प्रमुख नाटककार

बदरीनाथ भट्ट

इनके तीन प्रहसन प्रसिद्ध है—"लवड-घोंघों" (१९२६), "विवाह विज्ञापन" (१९२७) और "मिस अमरीकन" (१९२९)।

"लवड-घोंघों" में ६ प्रहसन सग्रहीत है—(१) पुराने हाकिम का नया नौकर, (२) आयुर्वेद कसेरू वैद्य वैगनदास जी कविराज, (३) ठाकुर दानीसिह साहिब, (४) हिन्दी की खीचातानी, (५) रेगड समाचार के एडीटर की धूल दच्छना, (६) घोघा बसन्त विद्यार्थी। "पुराने हाकिम का नया नौकर" में आलम्बन ऐसे मालिको और मालिकिनो को बनाया गया है जिनके दुर्व्यवहार

से नौकर टिक ही नहीं पाता वरन् और चट बन कर निकलता है। इसमें तीन दृश्य हैं। इसका उद्देश्य नौकर के मुंह से स्पष्ट करा दिया गया है—

"नौकर—सच बात तो यह है कि कलट्टर, डिप्टी कलट्टर, टिकट कलट्टर, इंसपेट्टर, मास्टर, ऐडीटर वगैरह बीसियों टरों के यहां मैंने नौकरी की, पर जो बढ़िया गालियां यहां खाने को मिलीं, वे और जगह नहीं। जरा घर में घुसा कि दोनों की दोनों, बिल्लियों की तरह मेरे ऊपर टूटीं। जरा बाहर आया कि बुड्ढे खूसट ने खाया। बेतरह हैरान हूं। वाह री नौकरी। तू भी कैसे कैसे तमाशे दिखाती है। लीजिये, अभी हालहीहाल में, न कुछ बात थी न चीत, दोनों की दोनों मेरे ऊपर झाड़ू लेकर टूट पड़ीं और झट्कम-पेली करके मेरा कुरता फाड़ डाला और मुझे नोचा-खसोटा और बकोटा भी।"[1]

"आयुर्वेद-कमेम्-वैद्य बैंगनदास जी कविराज" का उद्देश्य प्रहसन के नाम से स्पष्ट है। "नीम-हकीम-वैद्य लोग किस प्रकार भोली जनता को धोखा देकर रुपया ऐंठते हैं। यही नहीं, वैद्य लोग लड़कियों को वैद्यक पढ़ाने के बहाने बलात् किस प्रकार व्यभिचार करते हैं यह भी इसमें दिखाया गया है। इसमें हास्य तीखा है।

"ठाकुर दानसिंह" में एक ही दृश्य है। इसमें अतिनाटकीयता एवं अतिरंजना से हास्य का उद्रेक किया गया है। कठपुतली के तमाशे को सही समझ कर ठाकुर साहब चौंकना उठते हैं—

'पुतलीवाला—हजूर, ये (पुतली को चलाता हुआ) राजा मानसिंह जैपुर वाले, बादशाह से हुक्म लेकर, चित्तौड़गढ़ को जीतने—

ठाकुर—(क्रोध और जोश में) अरे जातिद्रोही, कलंकी, बदमाश। पहले मुझसे तो जान बचाले, फिर कहीं जाने का नाम लीजो। मैं अभी साले का ढेर (ठाकुर साहब उठ कर पुतलियों पर पिल पड़ते हैं, और मानसिंह की पुतली के अलावा और भी कई पुतलियां तोड़-फोड़ डालते हैं, दो एक हाथ पुतली वाले के भी जमाते हैं। देखने वाले आश्चर्य और भय से डरते भागते हैं।)

पुतलीवाला—हाय मैं मरा।

ठाकुर—हाय हाय कैसी? साला चित्तौड़ जीतेगा।

पुतलीवाला—मैं मरा—हाय मेरा रुजगार गया—"

१ [illegible]—पृष्ठ ८१.

"हिन्दी की खींचातानी" प्रहसन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के छठे अधिवेशन भरतपुर मे खेलने के लिए लिखा गया था परन्तु आपस के मन मुटाव के कारण न खेला जा सका। इसमें गीत अधिक है। इसमें उर्दू पर व्यग्य किया गया है। उस समय लोग हिन्दी भी उर्दू के ढग से ही बोलते थे, विशेष कर अदालतो में हिन्दी की बडी दुर्दशा थी—

"दलाल—तो क्यों महाराज, आप परचारक हैं, परचारक ? आप का नाम शौशकर तो नहीं है, शौशकर ?

परदेशी—"शौशकर" क्या ? अरे, तुम हिन्दू होकर और आर्य वशज होकर एक बाहरी लिपि की बदौलत अपने आप अपने नाम बिगाडते हो। मेरा नाम शिव शकर है शिव शकर।"[1]

"रेगड-समाचार" के एडीटर की धूल दच्छना" में चुनाव के उम्मीदवारो द्वारा सम्पादकों की कैसी दुर्दशा की जाती है, इसका खाका खीचा गया है। इसमें एक ही दृश्य है।

"घोघा-वसत विद्यार्थी" भी एक दृश्य का प्रहसन है। इसमें भट्ट जी ने शिकारपुर के रहने वाले एक विद्यार्थी का सुन्दर चित्रण किया है। साथी उसे खिजाने के लिए पूंछते हैं। तुम कहाँ के रहने वाले हो ? कुछ कहते हैं आया शिकारपुरी आदि। यह सुनकर अपने साथियो को गाली देता हुआ वह भाग जाता है और कहता है —

"घोघा-वसत—यहाँ के लोग गुणावली तो देखते नहीं, घर का पता पूंछते हैं कि "कहाँ के रहनेवाले हो ? कहाँ के रहने वाले हो ?" अरे, रहने वाले हैं तुम्हारे घर के, कहो, क्या कर लोगे तुम हमारा ? कह दिया करता था कि जिला बुलन्दशहर का रहने वाला हूँ पर अब किसी कवख्त ने—भगवान उसे सौ वरस तक सब विषयो में फेल करे और सत्यानास जाय उसका—आस्तीन का सांप, कुल्हाडी का बेंटा कहीं का। और फिर, आपको बोलना हो, बोलिए—जी हाँ न बोलना हो, न बोलिए, अपना रास्ता नाँपिए, चाल दिखाइए, हवा खाइये, सवारी बढ़ाइये, वगैरह वगैरह और भी बहुत से अच्छे अच्छे वाक्य हैं। हम जहन्नुम के रहने वाले सही, क्या कर लेंगे आप हमारा ?"[2]

---

१. लवडधोंधो—पृष्ठ ६७

२ लवडधोंधो—पृष्ठ ८१.

विवाह-विज्ञापन—इसका रचनाकाल सन् १९२७ है। इसमे पाँच दृश्य हैं। इसमे ऐसे पुरुष को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो अपनी स्त्री के मरने के पश्चात् दिखाता तो यह है कि वह दूसरा विवाह नही करना चाहता परन्तु उसकी हार्दिक इच्छा है कि किसी प्रकार से सर्वोत्तम कन्या से उसका विवाह हो जाय। एक पत्र-सम्पादक सेठ जी से रुपया ऐंठ कर एक विज्ञापन निकाल देते हैं। एक पुरुष से उनका विवाह करा दिया जाता है और जब वह आदमी प्रकट होता है तो स्थिति-हास्य की सुन्दर व्यंजना होती है। वास्तव मे पाश्चात्य बनाव-शृंगार पर भी इसमे छीटाकशी की गई है। इसका विज्ञापन पठनीय है—

"एक अत्यन्त सुन्दर, सुशिक्षित, सुप्रसिद्ध, सुलेखक, सुकवि, सुस्वास्थ्य सुसमृद्धिशाली लडके के लिए एक अत्यन्त रूपवती, गुणवती, सुशिक्षिता, विनम्रा, आज्ञाकारिणी, साहित्य-प्रेमिका सुकन्या की आवश्यकता है। लडके की मासिक आय १०,०००) रु० है। लडका गद्य व पद्य लिखने में तो कुशल है ही, इंजीनियरी, डाक्टरी, प्रोफेसरी, एडीटरी, आदि कलाओ मे भी एक ही है। अपने घर मे अवतार समझा जाता है। स्थावर व जंगम संपत्ति कई लाख की है। करोड़ कहना भी अत्युचित न होगा। घराना वेदो के समय का पुराना और लोक-परलोक में नामी है। लड़का समाज सुधारक होने के कारण, जाति-बंधन से मुक्त है, अर्थात् किसी भी जाति की कन्या ग्राह्य होगी, यदि वह इस योग्य समझी गई। पत्र व्यवहार फोटो के साथ कीजिए। पता-सम्पादक, बागड़ू समाचार कार्यालय।"[1]

"मिस अमेरिकन" प्रहसन सन् १९२९ मे लिखा गया। इनका यह प्रहसन सर्वोत्कृष्ट है। इसमे इन्होंने पश्चिमी सभ्यता का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है। अमेरिकन पात्र इसमे पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक हैं। इनका धर्म रुपया है। वे अपनी पुत्री का विवाह किसी से कर सकते हैं यदि उसके धन मिलता हो। प्रहसन के अमेरिकन पात्र पूर्व की आध्यात्मिक संस्कृति को नही समझते हैं। वे तो भौतिकवादी हैं।

सोहागी लाल जो कि पूर्वी सभ्यता का प्रतीक है, उन्हे अपना समाज प्रिय नही है क्योंकि हिन्दू समाज में नाचने का कोई स्थान नही है। और हिन्दू भेड़े हैं। दैव योग से सोहागी एक कवि हैं। वे पाश्चात्य सभ्यता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए अश्लीलता को काव्य की आत्मा बताते हैं। उनमें विचार से अश्लीलता के अभाव के कारण हिन्दी कविता नीरस है। इस प्रसंग से भट्टजी ने इन पंक्तियों

१ विवाह विज्ञापन—पृष्ठ १५, १६

का खाका इसमे खीचा है जो सौन्दर्य का विकृत रूप अपने काव्य द्वारा उपस्थित करते है।

"वास्तव में अमेरिकन जीवन के प्रति कुछ अन्याय इस प्रहसन ने अवश्य किया है। अमेरिकन चरित्रो को इतना अतिरजित चित्रित किया है कि वहां व्यग्य बहुत कटु हो गया है। "मिस अमेरिकन" में आपने स्त्री समुदाय का पुश्चलीपन चित्रित किया है—आप हास्य की सीमा का उलघन कर गये है। न जाने क्यों अमेरिकन समाज का इतना कठोर खाका खींचा है। मौलियर अपने विरोधी पक्ष को जितनी असमवेद्य श्रेणी हो सकती है, उसमें रख देता है, परन्तु उसके साथ निष्ठुरता नहीं करता। आपने अमेरिकन समाज के जिस चित्र को सामने रक्खा है उसमे अमेरिकन समाज के साथ निष्ठुरता की गई है और उन पात्रों में व्यक्तित्व का अश शून्य रहने के कारण वे समाज के प्रतीक (Type) पात्र रह गये है इसलिए उनके अन्दर अभावात्मकता आ गई है।"[1]

नाटकीय कला एव हास्य विधान—द्विवेदी युग के प्रहसनकारो मे भट्टजी श्रेष्ठ है। इन्होंने प्रहसनो मे विदूषको को स्थान नही दिया है। इनके अधिकतर प्रहसनो मे स्वाभाविक हास्य है। "विवाह विज्ञापन" परिस्थिति प्रधान प्रहसन है एव "मिस अमेरिकन" चरित्र प्रधान। चरित्रो का चित्रण स्वाभाविक रूप से हुआ हे। कथोपकथन मे तीव्रता है। इन्होंने वाक्छल का प्रयोग हास्य के उद्रेक करने मे यथेप्ट किया हे। स्थिति-जन्य-हास्य भी मिलता है। व्यग्य की मात्रा कही कही अतिक्रमण कर जाती है।

जी पी श्रीवास्तव

इनका लिखा सर्वप्रथम प्रहसन "उलटफेर" हे जिसका रचनाकाल सन् १९१९ हे। इसमे तीन अक है। पहले अक मे पाँच, दूसरे मे सात और तीसरे मे आठ दृश्य है। प्राचीन नाट्य-पद्धति के अनुसार इसमे प्रस्तावना हे जिसमे सूत्रधार तथा विदूषक के कथोपकथन द्वारा प्रहसन का उद्देश्य स्पप्ट कराया गया हे। सूत्रधार उद्देश्य वताता है —

"यहाँ तो हमारे देशी भाइयो को मुकदमेवाजी का ऐसा चस्का पड़ा हुआ है कि दौलत रहे या न रहे, जान रहे या न रहे, ईमान रहे या न रहे, मगर मुकदमेवाजी का सिलसिला हमेशा कायम रहेगा।"[2]

इसमे आलम्वन वकीलो तथा मुकदमेवाजो तथा उनके दलालो को वनाया गया हे। इसमे सव मिलाकर ४७ पात्र है। इसके प्रमुख पात्र मिर्जा

१ हिन्दी नाटको मे हास्य—डा सत्येन्द्र—माधुरी चैत्र, ३०८ तु स पृष्ठ ३१०
२ उलटफेर—पृष्ठ २

अललटप्पू, चिराग अली, आजिज अली, खुराफात हुसैन, मुहर्रिर अली, गुलनार, दिलफरेब, रामदेई आदि हैं। वकीलों के दलाल इस प्रकार भोले मुवक्किलों को फँसा कर लाते हैं तथा न्यायालयों में इन लोगों के कारण किस प्रकार अन्याय होता है, वही इस प्रहसन में दिखाया गया है। एक दृश्य में खुराफात मरिश्तेदार तथा अललटप्पू डिप्टी कलक्टर का वाद-विवाद रोचक है—

"अललटप्पू—तेरा मुकदमा बिल्कुल झूठा है।

खुराफात—जी बजा है। तभी तो वकील किया है"।[1]

'मरदानी औरत—इसका रचना काल सन् १६२० है। "मरदानी औरत" में समालोचकों का पक्षपात एवं नौकरों की बेवकूफी का मजाक उड़ाया गया है। रमचोरवा नौकर और गड़बड़ अली की बातचीत होती है—

"गड़बड़—जी हजूर। अरे रमचोरवा, ओ रमचोरवा।

(रमचोरवा का आना)

रमचोरवा—का होय हो। आवत आवत मूड़े पर आसमान उठाय लेत हैं। भीतर अलगे कुहराम मचा है। बाहर ई जान खाए जाए हैं।

गड़बड़—अबे चुप, देखता नहीं, राजा साहब आए हैं। चल कुर्सी ला।

रमचोरवा—अरे ई धौंकल राजा साहब होयँ।

गड़बड़—हां, मगर तमीज से बातें कर।

रमचोरवा—तब्बै धौंतर बन्दर अह हैं। भुलाई गदहा अस तो फूला है, फसम कुरसिया मां घैसिएँ।"[2]

इसी प्रकार समालोचक पक्षपाती लाल मूर्खानन्द का व्यंग्यपूर्ण चित्रण पठनीय है—

(समालोचक पक्षपाती लाल मूर्खानन्द का मुँह सिकोड़े हुए आना। हुलिया कुल्प, साफा, बदन लचका मारे)

गड़बड़—धत् तेरी सनाहत की। कहाँ से सामने आ गया। अब नाउम्मेदी नजर आती है। मगर वाह, वाह! यह लचक देखिये। एक एक कदम पर सारा बदन हिलकर बल खाता है।

---

१. उलटफेर—पृष्ठ ९८

२. मरदानी औरत—पृष्ठ १०७

तो पैर गुजरात के। इसलिए मुझमें स्वाभाविक बल, भाव, सुन्दरता, सुडौलपन कुछ नहीं है। ढाँचा बेडौल, चाल बुतुकी, बातें लचर, रग बदरग और उसमें न ट्रेजिडी हूँ न कामेडी, बल्कि एक अजीब गडबड घोटाला।"

नाट्य कला और हास्य विधान—श्रीवास्तव जी कला की दृष्टि से उच्च-कोटि के न हो किन्तु प्रचार की दृष्टि से अवश्य सबसे आगे है। राधेश्याम कथा-वाचक की रामायण साहित्यिक दृष्टि से शून्य है किन्तु प्रचार की दृष्टि से सबसे आगे है। इनका हास्य अधिकतर स्थिति-जन्य हास्य है। इन्होने प्रहसनो में ऐसी स्थितियाँ रक्खी है जिनसे हास्य जबरदस्ती उत्पन्न किया गया है। "मरदानी औरत" में सम्पादक बटाधार नीलाम करने वालो की दृष्टि से बचने के लिए एक बोरे के अन्दर बन्द हो जाते हैं। बोरा सुखिया के दिखा देने पर एक सौ रुपये पर नीलाम हो जाता है। खरीदने वाला जब बोरा खोलता है तब बटाधार निकल पडते है और उन पर बेभाव की मार पडती है। इसी प्रकार अन्य दृश्य में बटाधार और पेटूलाल की तोदें टकराती है। यथा, द्वितीय अक के द्वितीय दृश्य मे—

"बटाधार—अरे बाप रे बाप! तोद फूट गई।

पेटूलाल—अररररर! मालगाडी लड गई।

बटाधार—अरे कौन चूरन वाले? अरे यह कौन सा रोग हो गया है तुम्हें! बदन भर में गर्म ही गर्म।"[1]

इन्होने वाक्छल का प्रयोग भी सफलता पूर्वक अपने प्रहसनो में किया है।

"रामदेव—हुजूर के नाव आये। भूल गये न।

चिरागअली—याद रखना, मेरा नाम चिराग अली है।

रामदेव—चिराग अली—हाँ जउन टिमिर टिमिर बरै। अरे! हुजूर केर नाव मसाल अली जउन धु-धु-धु-धु-बरै!"[2]

व्यग्य का प्रयोग भी सुन्दर हुआ है। वकीलो पर कसा हुआ एक व्यग्य देखिए—

"चिराग अली—लाओ इस बात पर शुकराना।

---

१ उलट-फेर—पृष्ठ ११

२ उलट-फेर—पृष्ठ २६

रामदेव—अब हुजूर फांसी की सजा होइगै, अउर ऊपर ते सुकराना देई।

चिराग अली—हां, हां, फांसी की सजा हुई हमारी बदौलत। इसको गनीमत जानो, अगर हम इतनी कोशिश न करते तो न जाने क्या हो जाता ? समझे, लाओ शुकराना।" [1]

वास्तव मे देखा जाय तो चरित्र-चित्रण की सुन्दरता उनके प्रहसनों में कम दिखाई देती है। अधिकतर उनका हास्य स्थूल है।

"श्री जी० पी० श्रीवास्तव किसी विशेष को लक्ष्य करके हास्य की सृष्टि करते है। प्राय. आप अपनी रचनाओ में ऐसे चरित-नायक की कल्पना करते हैं जो अकल के बोझ से हैरान है, पात्र कोई काम करेंगे तो ऊट-पटांग, हर जगह मार अथवा गाली खायेंगे। कहीं बदहवास भाग रहे हैं तो कभी घुमड़िया खाते हुए किसी टोकरे वाले पर या कीचड़ में गिर पड़ते हैं।"[2]

इसी प्रकार के भाव श्रीवास्तव जी के हास्य के बारे में प० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने व्यक्त किये हैं—

"हमारी समझ में श्रीवास्तव जी का हास्य उच्चकोटि का नहीं, जिसकी आशा इनसे की जाती है इसे, तो लट्ठमार मजाक कहना ज्यादा उचित होगा।"[3]

जहां तक जनता मे हास्य रस के लिए रुचि उत्पन्न करने का प्रश्न है वहा ये केवल निम्नस्तरीय लोगों को ही हंसा पाये है, बौद्धिक हास्य का सृजन वह नही कर सके। इनमें अपहसित तथा अतिहसित हास्य ही अधिक है "स्मित" नहीं के बराबर है। बाबू गुलाबराय ने लिखा है—"श्री जी० पी० श्रीवास्तव के नाटकों में हास्य की मात्रा अधिक है किन्तु उनमें साहित्यिक हास्य की अपेक्षा धोल-धप्पे का हास्य अधिक है।" [4]

अश्लीलता के दोष से भी वह मुक्त नहीं रह पाये है। उनके प्रहसनो में गन्दे मजाक, अधिकतर पाये जाते है। यद्यपि उन्होंने अपनी पुस्तक

१ उलट-फेर—पृष्ठ २६

२. साहित्य सन्देश—भाग १, अंक १, पृष्ठ २३.

३ विशाल भारत—मई १९२९, "हिन्दी में हास्यरस"।

४ हिन्दी साहित्य का सुबोध-इतिहास—गुलाबराय, पृष्ठ २३०.

"हास्य-रस" में अश्लीलता क्या है, इस प्रश्न का विवेचन अपने ढग से करते हुए अपने को अश्लीलता के दोप से मुक्त वताया है किन्तु वह दलील ही दलील है, उसमें तथ्य नही।

अन्त में प० रामचन्द्र शुक्ल की सम्मति उधृत करके इनके विवेचन को समाप्त करते हैं—"वे (इनके प्रहसन) परिष्कृत रुचि के लोगों को हँसाने में समर्थ नहीं।"[1]

वेचन शर्मा "उग्र"

"उजबक" प्रहसन का उद्देश्य साहित्यिक रूढियो पर व्यग्य कसना है। व्रजभाषा का कवि एव छायावादी दोनो कवि सदैव पद्य में बात करते हैं। छायावादी कवि का नाम है लठ एव व्रज भापा के कवि का नाम है सठ। दोनो का झगडा इस वात पर है कि उनमें श्रेष्ठ कौन है ? दोनो "उजबक" सम्पादक के पास अपना फैसला कराने जाते हैं। अपना-अपना पक्ष दोनो सम्मुख रखते हैं—

"लठ—मेरा कहना है व्रजभाषा मोस्ट रद्दी है।
नूतनता मौलिकता हीन है,
दीन, अनवीन है।
और स्वच्छन्द मेरा राग घट बढ़ है,
छन्द जो रवड है।
ओल्ड व्रजभाषा में कलक है, सुलक है,
डर्टी पर्यंक है।
कामिनी है, कुच है, कलिन्दी का किनारा है,
तेरहीं सदी की गण्डकी की गन्दी धारा है।
सठ—(लठ को ललकार कर)
रुको-रुको मत क्रोध दिलाओ,
झुको-झुको मत वात वढाओ।
अव मत राग वेसुरा गाओ,
ससुर वनो सुर को अपनाओ।"

चार वेचारे—इसमें चार प्रहसन हैं—वेचारा सम्पादक, वेचारा अध्यापक, वेचारा सुधारक और वेचारा प्रचारक। इनके उद्देश्य इनके नामो से स्पष्ट हैं।

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—सस्करण स० २००२, पृष्ट ४८१

"बेचारा प्रचारक" में पात्र हैं—दन्तनिपोर (प्रचारक), अप्रिय सत्यम् (मुँहफट लेखक) टकाधर्मम् (प्रकाशक सम्पादक), सेठ शिवम् सुन्दरम् (नेता), सुमुख (शिवम् सुन्दरम् का बाल सेवक), चन्द्रमुखी (शिवम् सुन्दरम् की युवती सेविका) आदि। इसमें आलम्बन प्रचारक को बनाया गया है। प्रचारक जी अपनी शक्ति का परिचय देते हैं—

"शि० सु०—(अखबार समेटते हुए)—क्रान्ति अवश्य होगी—होगी न ? आपकी क्या राय है ?

दन्त०—होगी तो जरूर।

शि० सु०—उस भावी क्रान्ति में मैं तो स्वदेश की ओर से लड़ूँगा। जिस तरह जरूरत होगी उस तरह से लड़ूँगा।

दन्त०—आप वीर हैं—पार्थ की तरह।

शि० सु०—मगर उस अनोखे युग में आप क्या करेंगे, दंतनिपोर जी।

दन्त०—मैं ? मैं तो प्रोपेगण्डिस्ट हूँ। मैं योद्धा तो हूँ नहीं। हाँ-हाँ, हाँ-हाँ। यह देखिए (थैला दिखाते हैं) यही मेरा शस्त्रागार है और यह देखिये (परचे निकालता है) यही मेरे हथियार हैं। मैं ऐसे-वैसे परचों को आपमें उनमें बाटूँगा—यही मेरा वार होगा।"[1]

इस प्रहसन में प्रकाशकों पर व्यंग्य किया गया है जो भोले लेखकों को सम्पादक बनाने का प्रलोभन देकर फाँसते हैं—

"टका०—आप भी मेरी मदद कीजिए।

अप्रिय०—किस तरह ?

टका०—सत्यशोधक को सम्पादन कर या मेरे प्रकाशन के लिए पुस्तकें लिख कर ?

अप्रिय०—आप लिखाई क्या देते हैं ?

टका०—बहुत कुछ देता हूँ, हिन्दी की सभी पुस्तकों से अधिक देता हूँ।

अप्रिय०—जैसे ?

टका०—जैसे लेखक को लिखने के वक्त उत्साह देता हूँ। लिख जाने पर उसकी कमजोरियाँ सुधार देता हूँ। सुधर जाने पर प्रेस में देता हूँ, छाप देता हूँ, बेच देता हूँ। आप ही बतावें, इससे ज्यादा कोई क्या दे सकता है ?

---

1. सनसाना (कलकत्ता)—मार्च १९२९, पृष्ठ ३.

अप्रिय०—और "सत्यशोधक" सम्पादक को आप क्या देंगे ?

टका०—उस महानुभव को—हाँ, हाँ, हाँ ! उसको मैं पहले कुर्सी दूंगा। फिर कागज, कलम, दावात दूंगा। कपोजीटर की "स्टिक" उसके बाये हाथ में दूंगा, मशीन का हैंडिल दाहिनें हाथ में। "सत्यशोधक" का पहला प्रूफ उसे दूंगा, तीसरा उसे दूंगा और आर्डर प्रूफ भी—ईश्वर की शपथ। उसी को उदारता पूर्वक दे दूंगा।

अप्रिय०—(व्यग्य से) धन्य आपकी उदारता !"[1]

नाट्यकला एव हास्य विधान—उग्र जी के प्रहसनो में स्थिति-जन्य हास्य कम है, चरित्र चित्रण अधिक। पात्रो के वर्तालाप से हास्य का उद्रेक स्वाभाविक रूप से होता है। भाषा भी प्रवाहमयी है। यदि खटकने वाली कोई बात है तो वह है अश्लीलता। कामुक दृश्यो का यथार्थ एव रसपूर्ण चित्रण खुल कर किया गया है। इनकी इस प्रवृति के विरोध में प० बनारसीदास चतुर्वेदी ने "घासलेटी साहित्य" के नाम से आन्दोलन भी चलाया था। यथार्थ चित्रण के नाम पर अश्लीलता का नग्न नृत्य ही यदि आवश्यक है तो उग्र जी बेजोड हैं। पर हम तो यही कहेगे कि यदि इनमें यह सामाजिक सीमा का उल्लघन न होता तो इस प्रतिभा का उपयोग हिन्दी साहित्य को न मालूम कितना अमर कृतियो के देने में स्मर्थ होता।

इन प्रमुख नाटककारो के अतिरिक्त कुछ ऐसे नाटककार भी इस युग में हुए जिनके नाटको में अन्य रसो के साथ हास्य रस का परिपाक भी सुन्दर हुआ है। इनमें "मिश्र बन्धु" एव "प्रसाद" अग्रगण्य हैं। मिश्र बन्धु में एक विशेषता यह है कि शुद्ध हास्य का विधान जैसा इनके नाटको में हुआ है वह अत्यन्त दुर्लभ है। विदूषक की विना सहायता लिए पात्रो की भाषा एव भ्रान्ति द्वारा हास्य का विधान उनके "पूर्व भारत" नाटक में प्रशसनीय है —

(हस्तिनापुर की एक फुलवारी। लाला, पुरवी, रामसहाय व रोशन का प्रवेश)

"लाला—कँ हो, पुरवी महाराज, कुछ सुन्यो ? अब की सालौं भरे के सबं यतवार सुना सब वुद्धंक परिगे।

पुरवी—तुमहू निरे अहमकै रहयो लाला, ओ। कहूँ दुइ, एकु परिगे हवइ हइँ। भला सब कइसे परि सकत्यं ?

---

१ मतवाला (कलकत्ता)—मार्च १९२९, पृष्ठ २५

लाला—यहै तो पूछा ।

रामसहाय—भला पांडे, जो तालाब में आग लगे तो मछलियां कहां जावें ? बेचारी उसी में जलें भुनें ।

पुन्वो—जरें काहे ? विरान पर न चढ़ि जांयें ।

लाला—तौ का उइ गाई-भैंसी आंय ।"[1]

"मिश्र बन्धु" ने व्यंग्य का भी प्रयोग किया है । उनका व्यंग्य कठोर नहीं है । नये वैद्यों को आलम्बन बना कर व्यंग्य किया गया है—

"तीसरा नागरिक—इन नए वैद्यों की कुछ बात न कहिये, धर्मराज क्या जमराज के अवतार हैं ?"[2]

नाटककार "प्रसाद" ने भी अपने नाटकों में हास्य के विभिन्न प्रकारों का यथा-स्थान सुन्दर प्रयोग किया है । उनका हास्य एवं व्यंग्य शिष्ट तथा मार्मिक होता है । विदूषकों का सफल प्रयोग जितना प्रसाद जी ने किया उतना किसी अन्य अकेले नाटककार ने नहीं । "विशाख" का "महापिंगलक", "अजातशत्रु" का "वसन्तक" तथा "स्कन्दगुप्त" का "मुद्गल" विदूषक-संसार के सिरमौर हैं । भारतेन्दु काल के विदूषक केवल पेटूपन का आधार लेकर ही हास्य का सृजन करते थे किन्तु प्रसाद जी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि विदूषकों के आधार पर शिष्ट एवं परिष्कृत हास्य का भी सृजन किया जा सकता है ।

पात्र के कार्य को हँसाने का माध्यम बनाया जा सकता है । इसका उदाहरण "विशाख" में मिलता है—

"भिक्षु—अच्छा बैठ जाऊं । (बैठता है, प्रेमानन्द नाक बजाता है जिसे सुनकर भिक्षु चौंक कर खड़ा हो जाता है ।)

भिक्षु—नमो तस्स......नमो .... न न मैं नहीं भगवतो......भग जाता हूं । (कांपता है, शब्द बन्द होता है, भिक्षु फिर डरता हुआ बैठता है और कांपता हुआ मूत्रपात करने लगता है । लोमड़ी दौड़ कर निकल जाती है । भिक्षु घबड़ाकर जयचक्र फेंक मारता है ।)

१. पूर्वभारत—चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ ६३

२. पूर्वभारत—चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ १२६

प्रेमानन्द—(स्वगत) वाह, जयचक्र तो सुदर्शन चक्र का काम दे रहा है। देखूँ, इसकी क्या अभिलाषा है।

भिक्षु—(टूटा हुआ जयचक्र लेकर बैठकर) यहा तो भगवान लोमड़ी के रूप में आकर भाग जाते हैं और मुझे भी भगाना चाहते हैं, क्या करूँ।"[१]

इनका व्यग्य भी मार्मिक है। इनके व्यग्य कोरी गालियाँ नहीं है। वे सयत एव परिष्कृत है। उनमें "प्रेम द्वारा ताडना" का सिद्धान्त अपनाया गया है। "वासन्तक और जीवक" का वार्तालाप देखिए—

"वासन्तक—महाराज ने एक दरिद्र कन्या से विवाह कर लिया।

जीवक—तुम्हारे ऐसे चाटुकार और चाट लगा देंगे, दो चार और जुटा देंगे।

वासन्तक—श्वसुर ने दो ब्याह किये तो दामाद ने तीन। कुछ उन्नति हो ही रही है।"[२]

इनके अतिरिक्त द्विवेदी युग में अन्य प्रहसन भी लिखे गये। जिनमें सुदर्शन का "आनरेरी मजिस्ट्रेट" अधिक प्रसिद्ध है। इसमें खुशामदी लोगो की आनरेरी मजिस्ट्रेट वनने की लालसा का खाका खीचा गया है। प० रूप नारायण पाडेय लिखित "प्रायश्चित प्रहसन" में देशी होकर भी विदेशी चाल चलने वालो का अच्छा खासा चित्रण मिलता है। अध्यापक रामदास गौड का "ईश्वरीय-न्याय" एक व्यग्य नाटक है जिसमें दिखाया गया है अछूतो के प्रति बहुत प्रेम दिखलाने वाला हिन्दू-सभ्य अवसर पडने पर कैसे बगलें झाँकने लगता है। पारसी कम्पनियो के नाटको में जो कॉमिक दिखाये जाते थे वे अश्लील तथा भद्दे होते थे, पति-पत्नी में जूतम-पैजार, कमर पकड़ के नाचना इत्यादि दिखाये जाते थे। बाद में ये कथावस्तु के साथ में ही सम्मिलित किये जाने लगे। विशेषकर सवाद के सहारे हास्य का उद्रेक किया जाता था। "वीर-अभिमन्यु" में "राजा वहादुर" तथा हश्र के "लिवर किंग" में "जीटक" और वेताव के महाभारत में व्यग्य और हास्य का पुट मूल कथा-वस्तु के साथ-साथ पात्रो के सवादो में प्राप्त हो जाता है।

---

१ विशाख—पृष्ठ ६४

२ अजातशत्रु—पृष्ठ १६६

आधुनिक-काल

यह युग प्रहसनों के कलात्मक विकास के लिए प्रसिद्ध है। पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित प्रहसन इस युग में लिखे गये। धार्मिक पाखण्डियों का स्थान सामाजिक विद्रूपताओं ने ले लिया। आधुनिक युग के प्रहसनकारों ने सिनेमा के अन्धभक्त, स्वार्थी नेता, शिक्षित बेकार, मनुष्य के समान अधिकार चाहने वाली प्रगतिशील नारी को आलम्बन बनाया। स्मिति-हास्य का चलन कम हुआ तथा चरित्र-चित्रण को अधिक बल मिला। नई शैली अपनाई गई। पाश्चात्य कामेडी के सिद्धान्तों पर प्रहसनों की रचना होने लगी। सामाजिक विकृतियाँ जोकि युग के प्रभाव से उत्पन्न हो गई थीं, व्यंग्य का शिकार बनने लगीं। इसके साथ-साथ साहित्यिक कुरीतियों पर व्यंग्य करने की परम्परा भी कायम रही।

प्रमुख प्रहसनकार

हरिशंकर शर्मा

आप आर्य-समाजी रहे हैं तथा आप पर आर्य समाज के सिद्धान्तों का पूर्ण प्रभाव है। "बिरादरी-विभ्राट" प्रहसन में हिन्दू समाज पर तीखा व्यंग्य है। हिन्दू धर्म के अन्ध-विश्वास, रूढ़िवादिता, पोंगापंथी, अछूतोद्धार के प्रति असहिष्णुता, जाति-पाँति की कट्टरता, छुआछूत आदि का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया गया है। इसमें एक अंक तथा तीन दृश्य हैं। अन्धेर-नगरी में "द्वारपाल" तथा "दम्भदेव" का वार्तालाप है। इनके अतिरिक्त "उद्दण्ड सिंह", "दुर्जनमल", "चरणदास" आदि पात्र हैं। धर्म के ठेकेदार भंगी, चमार इत्यादि अछूतों को तो उठाना चाहते हैं किन्तु अन्धेर नगरी के उद्दण्ड सिंह, दम्भदेव, दुर्जनमल का मान करते हैं। सुधारकों तथा नई विचारधारा वाले नवयुवकों को सजा दी जाती है। नये दृष्टिकोण का एक युवक गँवारों में फँस जाता है जो नई रोशनी को तनिक भी नहीं समझते और तनिक से सुधार को भी कोई आश्चर्यजनक बात समझते हैं। दम्भदेव के शब्दों में सुधारवादी युवक का दोष इस प्रकार है—

> "दुर्जनमल—महाराज! इस बेवकूफ ने पंचपुराण द्वारा संस्थापित बिरादरी बिल्डिंग की बुनियाद को हिलाने की चेष्टा की है। अतएव यह कौमी कौंसिल के वर्ण विपर्यय एक्ट की ७४६ वीं धारा के अन्तर्गत आता है।

दम्भदेव—हाँ हाँ, यह तो बहुत ही सगीन जुर्म है। इसके लिए तो मामला पचराज के सुपुर्द करना पड़ेगा।"[१]

पाखड-प्रदर्शन — इस प्रहसन में चार दृश्य है। इसके पात्र प० डमरूदत्त, ठा० सितारसिंह, लाला मजीरालाल, मौलवी साहब आदि है। इसका ध्येय भी हिन्दू समाज की सकुचित-हृदयता एव आपसी भेदभाव है। महाराज चमार से तो इतनी घृणा करते हैं कि नाम सुनने से पूजा बिगड़ने का भय करते हैं, किन्तु चुगी के मुसलमान चपरासी से कुछ नही कहते जो ऐन आचमन के समय महसूल के तकाज़े के मारे उनका नाक में दम कर देता है।

"डमरूदत्त—जो है ते ठकुरिया, तू बड़ो लठ है। अरे दुष्ट, आज हम पाठ कर रहे हते, सोई, जो है ते, चेता चमार को चाचा हमें पालागं करके चलो गयो, जासूं हमारी सबरी पूजा बिगड़ गई। पूजा में चमारादिकन कों सब्द सुनबोहू बुरो बतायो गयो है। समझो कि नायँ ?

ठकुरी—महाराज! चमार से तो तुम इतनी घृणा करते हो, पर उस चुगी के चपरासी (मुसलमान) से कुछ नहीं कहा जिसने ऐन आचमन के वक्त पानी के महसूल के तक़ाजे के मारे तुम्हारा नाक में दम कर दिया था।"[२]

स्वर्ग की सीधी सड़क —इस प्रहसन में तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण है। चुनाव के समय वोटर की खुशामद, मिनिस्टर लोगो की ब्रिटिश सरकार की चापलूसी में आत्मगौरव का अनुभव (उस समय भारत स्वतन्त्र नही हो पाया था), हिन्दी प्रचारकों का भी अग्रेज़ी पढने तथा बोलने में गर्व का अनुभव होना, आदि प्रवृत्तियो पर व्यग्य किया गया है। इनका यह प्रहसन अन्य प्रहसनो से श्रेष्ठ है। इसमें वादाविवाद के सहारे बाबा विचित्रानन्द के द्वारा तत्कालीन विकृतियो पर व्यग्य कसवाये गये है —

"मैं—नेता किसे कहते हैं ?

बाबा—जो सदैव अपने ही व्यक्तित्व का ध्यान रखता है और अपनी ही बात चलाता है। लोकमत का तनिक भी आदर नहीं करता।

---

१ चिड़ियाघर—पृष्ठ ९८

२ चिड़ियाघर—पृष्ठ १०५

मैं—स्वराज्य कब मिलेगा ?

बाबा—जब भारत में एक भी हिन्दुस्तानी न रहेगा, सर्वत्र अंग्रेज ही अंग्रेज छा जायेंगे।

मैं—आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वोत्तम पोथी कौनसी है ?

बाबा—आल्हा-ऊदल के स्वांग, आधुनिक रामायण और भोंगा भजनीक का भजन-तमंचा।"[1]

बुड्ढे का ब्याह—इसमें वृद्धविवाह, दहेज और अनमेल विवाह की आलोचना की गई है। इसकी कथावस्तु में कोई नवीनता नही है। इसमें सात दृश्य हैं। पात्र लम्पटलाल, दुर्मतिदेव, भोंधूमल इत्यादि हैं। इसमें अन्त में लम्पटलाल तथा द्रव्यदास जी दोनो अनमेल विवाह करते हैं, और गिरफ्तार हो जाते हैं।

नाट्य कला तथा हास्य विधान—हरिशंकर जी के प्रहसनों में उच्च-कोटि की नाट्यकला दिखाई पड़ती है। कथोपकथन सजीव है। "स्वर्ग और नरक" के मध्य तथा अन्त में तीव्रता है। कथा-वस्तु का विन्यास सफल हुआ है। हास्य का उद्रेक गँवारू बोलियो द्वारा अधिक कराया गया है। पात्रो के नाम भी अटपटे हैं और वे हास्य उत्पन्न करते हैं किन्तु ये साधन अधिक कलात्मक नही। प्रश्नोत्तर रूप में वाक्छल का अच्छा उपयोग किया गया है।

उपेन्द्रनाथ "अश्क"

पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ—यह अश्क के सात प्रहसनो का संग्रह है जिनके नाम हैं (१) पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, (२) कइस्सा साहब रहमी आया, (३) बतसिया, (४) सयाना मालिक (५) तौलिये, (६) तम्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन और (७) मस्केबाजों का स्वर्ग।

"पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ" प्रहसन में अव्यवसायिक नाटक करने वालों की परेशानियों का दिग्दर्शन कराया गया है। सदस्यों का हीरो पार्ट को प्राप्त करने की संकुचित मनोवृत्ति की व्यंग्यात्मक आलोचना की गई है। हीरो पार्ट न मिलने पर 'कलचौक" बीमार बनने का बहाना बना कर घर बैठता है। एक "किसनू" चपरासी को रुपया देकर उस पार्ट के करने के लिए तैयार किया जाता है। नौकर स्टेज के ऊपर अकड़ जाता है और नाटक समाप्त होने से पूर्व ही पर्दा गिराना पड़ता है—

1 निरिजापर—पृष्ठ १४५।

गिल्ली-डडे की एक टीम इग्लिस्तान ले जायेंगे और इस पुरुषत्व-पूर्ण खेल का सिक्का अंग्रेजो पर बैठायेंगे।

"मस्केबाजों का स्वर्ग" में फिल्मी दुनिया की एक झलक दिखाई गई है। इसमें फिल्मी जीवन पर एक तीखा व्यग्य है। यह प्रहसन भी वम्वइया हिन्दी में लिखा गया है। वहाँ कला की कोई कद्र नही। डाइरेक्टर तथा निर्माताओ की सनक पर सब निर्भर रहता है —

> **"सापले—आर्ट फार्ट को कौन पूछता है, यहाँ चलता है मस्का, पालिश और चलता है रिश्ता-नाता। नया वास आयेगा तो अपने साथ नया टीम लायेंगा। हमारा डिजाइन ले जाकर अपनी बीबी को दिखायेंगा और पूछेंगा, "बोलो कैसा बनेला है?" उसको पसन्द आया तो पास, नहीं तो उठा सापले अपना बोरिया विस्तर।"[1]**

नाट्यकला एव हास्य विधान—प्रत्येक प्रहसन में नई सूझ है। परिस्थिति-प्रधान तथा चरित्र-प्रधान दोनों प्रकार के प्रहसनो में सफल प्रयास किया है। नाटको के पात्र सजीव है। अतिरजना का सहारा कही नही लिया, यथार्थ एव स्वाभाविक चित्रण हुआ है। प्रहसन सूक्ष्म, सयत एव मार्मिक हैं। इनके हास्य-विधान के सम्वन्ध में इस पुस्तक की भूमिका में श्री जगदीशचन्द्र माथुर लिखते हैं—

"उनके पात्र कार्टून नहीं, उनके मजाक स्थूल नहीं, उनकी परिस्थितियां सरकश की कलावाजिया नहीं। उनकी पैनी दृष्टि दैनिक जीवन में ही अट्टहास की सामग्री खोज निकालती हैं दूसरे शब्दों में अश्क की विनोद भावना वार्तालाप के विद्रूप या पात्रों के भौंडे व्यवहार के रूप में प्रकट नहीं होती, वल्कि चरित्र और कार्य सम्पादन की पृष्ठभूमि के रूप में।"

वास्तव में अश्क की कला वहुत विकसित है। उनके प्रहसन पाश्चात्य ढग से लिखे गये हैं। प्रत्येक प्रहसन के प्रारम्भ में वातावरण का चित्रण सुन्दर हुआ है।

ज्योतिप्रसाद मिश्र "निर्मल"

"**हजामत**"—इसमें आठ प्रहसन सग्रहीत है—(१) हजामत, (२) समालोचना का मर्ज, (३) व्याख्यान वाचस्पति, (४) घर वाहर, (५) रावर्ट

[1] पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ — पृष्ठ [illegible]

नर्थेनियल ओझा, (६) पति-पत्नी, (७) विवाह की उम्मेदवारी और (८) आनरेरी मजिस्ट्रेट।

"हजामत" में मुंशी हुरमतराय का खाका खींचा गया है। ये मनकी स्वभाव के हैं। "समालोचना का मर्ज" में बमकविहारी नामक आलोचक को आलम्बन बनाया गया है जिसे सदैव आलोचना की सनक सवार रहती है। यहां तक तरकारी बेचने वाली जब उनकी इच्छानुसार दाम लेने को तत्पर नहीं होती तो उसे भी आलोचना करने की धमकी देने लगते हैं। "व्याख्यान वाचस्पति" में अधकचरे व्याख्यानदाता का विद्यार्थियों द्वारा मजाक उड़वाया गया है। "घर बाहर" में समाज सुधारक पति एवं अशिक्षित पत्नी के वैषम्य पर व्यंग्य किया गया है। "राबर्ट नर्थेनियल ओझा" में एक मूर्ख एवं पोंगा विद्यार्थी का खाका खींचा गया है। "पति-पत्नी" में मियां-बीवी के झगड़े हैं तथा "विवाह की उम्मेदवारी" में लड़के वालों की सौदेबाजी पर व्यंग्य है। "आनरेरी मजिस्ट्रेट" में आनरेरी मजिस्ट्रेट बनने वालों की हंसी उड़ाई गई है। इनकी भाषा का नमूना 'समालोचना का मर्ज' में इस प्रकार देखिए—

"बमक—(नाराज होकर) तो क्या मैं चोर हूं, जानता नहीं मैं कौन हूं ? मैं तेरी आलोचना कर दूंगा, समझा !

उजियारी—आलू, चना तो मेरे ही पास है सरकार, आपके कहने की जरूरत नहीं है। हां, छः पैसे की तरकारी आपने ली है।

बमक—(बिगड़ कर) अरे आलोचना ! आलोचना ! ! आलोचना ! ! ! कुछ पढ़ा लिखा भी है या नहीं, हूँ। चार पैसे की मैंने तरकारी ली, कहती है छः पैसा ! अगर छः पैसे की लेनी थी तो चार पैसे घर से लेकर चलता ही क्यों ? क्या मैं बेवकूफ हूँ?" [1]

नाट्यकला एवं हास्य-विधान—जी०पी० श्रीवास्तव की भांति निर्मल जी का हास्य भी धौल-धप्पे का हास्य है। इनके प्रहसनों में सर्कस की कलाबाजियां दिखाई गई हैं। चरित्र-चित्रण तो नाम को भी नहीं। पात्रों की सृष्टि केवल मूर्खता-प्रदर्शन के लिए ही की गई है। अतिनाटकीयता एवं अतिरंजित वर्णनों की भरमार है। संकलनत्रय का कहीं ध्यान नहीं रक्खा गया। वार्तालाप के स्थान पर लम्बी-लम्बी स्पीचें व लम्बे-लम्बे प्रस्ताव हैं। इनके प्रहसनों

१. हजामत—पृष्ठ ४२.

में प्रहसन के कोई गुण नही। हास्य भी भौंडा है और वह भी स्थितिजन्य है। कही कोई पात्र वरावर डूवने की धमकी देता है लेकिन डूवने का नाम नही लेता, तो कही पात्र केवल अपनी पत्नियो से हाथापाई करके ही हास्य-सृजन करने में सफल हो सके है। सव मिलाकर, क्या नाट्य-कला की दृष्टि से और क्या हास्य-विधान की दृष्टि से, ये प्रहसन निकृष्ट कोटि के हैं।

रामसरन शर्मा

सफर की साथिन—यह नौ प्रहसनो का सग्रह है। "सफर की साथिन", "वन्द दरवाज़ा", "वेचारी चुडैल", "वकालत", "पत्रकारिता", "वीमारी", "मिल की सीटी", "भूतो की दुनिया", और "आवारा"। पूरे पढने पर भी इन प्रहसनो की कथा-वस्तु पकडाई में नही आती है। "वन्द दरवाज़ा" का उद्देश्य सम्भवत "जवानी के तूफान को ताले में वन्द करना" वेवकूफी जान पडता है। "वेचारी चुडैल" में उन लोगो को हास्य का आलम्बन वनाया गया है जो भूत प्रेतो में विश्वास करते हैं। "वकालत" प्रहसन अवश्य कुछ अच्छा है। नये वकील अपनी वकालत चलाने को कैसे-कैसे हथकडो का प्रयोग करते हैं। वुद्धिस्वरूप एक नये वकील हैं। उनके सलाहकार उनको यह सलाह देते हैं कि कचहरी में अपने तख्त के पास एक मचान वनवा लिया जाय जिससे जो मुवक्किल आ फसे उसे उस पर चढा दिया जाय ताकि वह निकल न सके। अत में वकील साहव मच पर से गिर पडते हैं। "पत्रकारिता" में तथाकथित पत्र-कारो पर व्यग्य किया गया है जो पत्रकारिता के नाम पर धन हडप करते है। "वीमारी" में दिल की वीमारी का खाका खीचा गया है। "मिल की सीटी" करुण रस प्रधान हो गया है, हास्य अन्तर्ध्यान हो गया है। "भूतो की दुनिया" का उद्देश्य नाम से स्पष्ट है। "आवारा" में नशेवाज़ो की दुर्दशा कराई गई है।

नाट्यकला एव हास्य-विधान—कला की दृष्टि से यह नाटक अच्छे नही वन पडे। इनमें कथा-वस्तु का विन्यास नही के वरावर है। चरित्र-चित्रण भी शून्य है। "कही की ईट, कही का रोडा, भानुमती ने कुनवा जोडा" वाली कहावत चरितार्थ हुई है। वाक्छल, व्यग्य, वक्र-उक्ति, आदि हास्य के किसी भी भेद का प्रयोग सफल नही हुआ है। एक मात्र "वकालत" प्रहसन कुछ सन्तोपजनक कहा जा सकता है। उसमें अवश्य थोडा हास्य का उद्रेक हो पाया है। उसमें वार्तालाप भी सजीव है एव कथानक में भी तीव्रता है। सव मिलाकर कहा जा सकता है कि ये प्रहसन प्रहसन कहलाने योग्य नही।

विशेष

डा० रामकुमार वर्मा

वर्मा जी के अधिकतर नाटक एकांकी ऐतिहासिक एवं सामाजिक कथा-वस्तु को लेकर ही लिखे गये हैं। "रिमझिम" शीर्षक एक वर्मा जी का संकलन हाल ही में निकला है जिसमें उनके हास्य-रस प्रधान एकांकी संकलित हैं। उनका एक प्रहसन जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है उसका नाम है "घर का मकान"। इस प्रहसन में सेठ अमोलकचन्द एक पात्र हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को अपने मकान को इस रूप से देने को तैयार रहते हैं मानो वह उस रहने वाले के ही घर का मकान हो। सेठ जी के कुत्ते, बिल्लियाँ, बीस मुर्गियाँ आदि भी उसी मकान में रहते हैं। श्यामकिशोर सेठ जी के मेहमान हैं जिनको यह घर रहने को दिया जाता है और इन जानवरों के पालन पोषण का भार भी घर में निःशुल्क रहने के कारण उन्हीं को करना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि दो ही दिन में उन्हें अपना "घर का मकान" विवश होकर छोड़ना पड़ता है। इसमें कुछ वार्तालाप बड़े रोचक हैं—

"श्याम किशोर—शेरा! यह शेरा कौन है?

लीला—क्या सरकस का भी शौक है सेठ जी को?

बैजनाथ—नहीं साहब, क्या खूबसूरत मुर्गा है। अगर वह न बोले तो सूरज की मजाल है कि निकल जाए। गरदन उठाकर ऐसा बोलता है जैसे किसी कालिज का प्रोफेसर हो।"[1]

नाट्यकला एवं हास्य-विधान—प्रहसन श्रेष्ठ है। कथोपकथन में रोचकता है। वस्तु विन्यास सुन्दर है। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक एवं यथार्थता लिए हुए है। विशुद्ध हास्य का जैसा सुन्दर उद्रेक इस प्रहसन में हुआ है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिला। स्मित हास्य का सृजन कठिन कार्य है जिसे वर्मा जी ने पूरा किया है। चरित्रों का चित्रण सफलतापूर्वक किया गया है। शैली भी उभारी गई है जो प्यार के साथ, कटुता एवं कठोरता कहीं नहीं।

देवराज दिनेश

आपने कई सुन्दर प्रहसन लिखे हैं। आधुनिक जीवन में जो विद्रूपतायें उत्पन्न हो गई हैं वे ही आपके प्रहसनों की कथावस्तु हैं। "बदला" नामक प्रहसन में नरेश नामक एक पात्र है जो [illegible] प्रवृत्ति का है वह मित्रों के साथ होटलों में अपने स्वयम् आर्डर देकर सुन्दर तथा [illegible]

१. हिन्दुस्तान साप्ताहिक—२० नवम्बर ५५, पृष्ठ ११

पदार्थ मँगवाता है किन्तु विल आने पर उसका बटुआ खो जाता है। अन्त में उसके मित्र उससे बदला लेते हैं और उसको होटल का विल चुकाने के लिए अकेला छोड देते हैं तथा उसको सब मित्रो का विल चुकाना पडता है। यह चरित्र-प्रधान प्रहसन है। नरेश में चाटुकारिता की मात्रा भी यथेष्ट है। वह अपने मित्र की नाटक की प्रशसा करने लगता है जिसको उसने कभी देखा ही नही—

"नरेश—क्या कहने हैं "सवेरा" के। जितनी प्रशसा की जाय कम है। सभी कलाकारो ने अपने कार्य को खूब निभाया है और आपके अभिनय का तो कहना ही क्या !

दीपक—(चौंकता है) जी, मेरा अभिनय। मैं तो उसमें अभिनय नहीं कर रहा था। मेरा तो वह लिखा हुआ है। हाँ, वैसे निर्देशक उसका मैं ही था।

नरेश—(बात बदलता है) कमाल है। मुझे एक साहब पर आप का ही भ्रम था।

दीपक—क्या बात कर रहे हैं आप ? उसमें तो कोई पुरुष-पात्र था ही नहीं, बस, केवल तीन लडकियो ने ही अभिनय किया था।"[1]

इनका दूसरा प्रहसन "पास पडौस" है। इसमें अशिक्षित स्त्रियो का सग्राम एव पडौसियों की परेशानी का हास्यमय वर्णन है। लडाई का एक वर्णन देखिये—

"एक औरत—मेरे मरें, तो क्या तेरे न मरें !

दूसरी—मरें तेरे। मेरे क्या तेरे घर खाना खाते हैं, रांड ! जो इन्हें तू फूटी आँखों भी नहीं देख सकती।

पहली—आँखें फूटें तेरी, तेरे घरवालो की, सतखसमी। जब देखो तब भौंकती रहती है, देखती कैसे है आँखें फाडकर जैसे खा ही जायगी।

दूसरी—झुलस दू गी तेरा मुह, जो ज्यादा बातें की तो। आ लेने दे तनिक शाम को मेरे कालूराम को।

पहली—मरा तेरा कालूराम। मार-मार जूते सिर न गजा कर दूं तो कहना। उसको भी औरतों की लडाई में बोलने का बहुत शौक है, जनाना कहीं का।"[2]

---

१ बटुए—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृष्ठ ८ (२८ जून ५३)

२. पास पडौस—साप्तातिक हिन्दुस्तान, पृष्ठ १० (३० अक्टूबर ५५)

नाट्य-कला एवं हास्य-विधान—दिनेश के प्रहसनों में चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है। नाटक की कथावस्तु एवं चरम-बिन्दु स्वाभाविक है। पात्रों का चुनाव नित्य-प्रति के जीवन से किया गया है न कि ऊटपटांग पात्रों की सृष्टि की गई हो। कथोपकथन में स्वाभाविकता है। हास्य का उद्रेक पात्रों के कार्य कलाप से स्वत होता है, कृत्रिम घटनाओं द्वारा हँसाने की चेष्टा नहीं।

उपसंहार

प्रहसनों का प्रारम्भ भारतेन्दु काल से हुआ। उनके समय में यथेष्ठ प्रहसन लिखे गये। उनमें नाटकीय तत्त्व एवं कलात्मक विकास का अभाव रहा। द्विवेदी युग में गम्भीरता छाई रही, तब भी थोड़े बहुत प्रहसन लिखे गये किन्तु कलात्मक विकास सन्तोषजनक नहीं हो सका। द्विवेदी-काल के उपरान्त के प्रहसनों में मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, बौद्धिक हास्य एवं भाषा में परिष्कार उल्लेखनीय है।

•

: ७ :

कहानी-साहित्य में हास्य

सस्कृत-साहित्य में पचतत्र तथा हितोपदेश की कहानियो में हास्य मिलता है। हिन्दी साहित्य में गद्य का अविक प्रचलन भारतेन्दु काल से हुआ। गद्य के विभिन्न प्रकार यथा नाटक, कहानी, उपन्यास तथा निवन्ध आदि का प्रारम्भ भी भारतेन्दु काल में हुआ। भारतेन्दु काल के साहित्य का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि उस काल में प्रहसन तथा निवन्ध तो अवश्य अधिक लिखे गए लेकिन कथा-साहित्य—विशेष कर हास्य-रस की कहानियो का नितान्त अभाव रहा। "चोज की बातें" शीर्षक वाक्छल से पूर्ण लघुकथाएँ तत्कालीन पत्रो में अवश्य दृष्टिगोचर होती हैं। द्विवेदी युग में तथा उसके बाद ही विशुद्ध हास्यरसात्मक एव व्यग्यात्मक कहानियो का प्रादुर्भाव तथा प्रचलन हुआ। कहानी-कला का साहित्यिक एव वैज्ञानिक विवेचन भी बीसवी सदी की वस्तु है।

कहानी-कला

सक्षेप में कथावस्तु, चरित्र-चित्रण एव कार्य-व्यापार तीन ही कहानी के उपकरण माने गये हैं। इन्ही के आधार पर कहानियो का वर्गीकरण—(१) चरित्र-प्रधान, (२)कथा-प्रधान, (३)वातावरण-प्रधान और (४) कार्य-व्यापार-प्रधान नामो से किया गया है। हिन्दी साहित्य में उपरोक्त चारो प्रकार की कहानिया मिलती हैं जो कलात्मक रूप से श्रेष्ठ हैं। हमें यहाँ हास्य-रस-प्रधान कहानियो का ही विवेचन करना है। जहाँ तक कहानी के आवश्यक तत्वो का प्रश्न है, वह तो हास्य-रस की कहानियो पर भी लागू होता है। हास्य-रस की कहानी में जो विशेष गुण वाछनीय है वह है हास्य-विधान। लेखक ने हास्य का उद्रेक किस प्रकार से किया है और वह उसमें कहाँ तक सफल हुआ है? उसके चरित्र वास्तविक जीवन से लिए गए हैं अथवा कल्पित हैं? कार्य-व्यापार स्वाभाविक है अथवा अतिरजित? वस्तु-विन्यास अस्वाभाविक तो नही हो गया है?

हास्य-विधान

हास्य-रस की कहानी में हास्य के सब प्रभेदों का प्रयोग मिलता है। हास्य का सृजन विविध प्रकार से किया जाता है। पात्रों की यांत्रिक क्रिया, किसी चरित्र-विशेष की असामाजिक विद्रूपताओं का चित्रण, किसी वाक्य-विशेष की पुनरावृत्ति, किसी भाषा विशेष का अधिकाधिक प्रयोग, पात्रों की हास्यास्पद स्थिति, वाक्-छल आदि साधनों से हास्य का सृजन किया जाता है। इनमें से किसी की अतिशयता ही अतिरंजना एवं अतिनाटकीयता की संज्ञा में आ जाती है और सारा गुड़ गोबर हो जाता है।

वर्गीकरण

हास्य-रस की कहानियों के वर्गीकरण से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हास्य के प्रभेदों में इतना सूक्ष्म अन्तर है कि वे एक दूसरे में घुले मिले पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ शुद्ध हास्य-रस कहानी में भी व्यंग्य के छींटे मिल सकते हैं, वक्र-उक्ति तथा वाक्छल का प्रयोग भी मिल सकता है। वर्गीकरण का हमारा दृष्टिकोण यह है कि कहानी में हास्य के जिस प्रभेद का बाहुल्य है वह कहानी उसी वर्ग में ली जा सकती है। हास्य-रस की कहानियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) मनोरंजक कहानी—हास्य-रस की वह कहानी जिसका उद्देश्य केवल हँसाना हो, उसे हम मनोरंजक कहानी कह सकते हैं। ऐसी कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम हैं।

(२) व्यंग्यात्मक कहानी—व्यंग्य सदैव सोद्देश्य होता है। समाज सुधार की भावना अथवा किसी कुरीति की निन्दा इसका ध्येय होता है। इस प्रकार की कहानियों का हिन्दी में बाहुल्य है।

(३) चरित्र-प्रधान कहानी—हास्य-रस की वे कहानियां जिनमें एक चरित्र विशेष को लेकर उसका चित्रण किया गया हो, चरित्र-प्रधान कहानी कही जाएगी।

काल-विभाजन

हास्य-रस पूर्ण कहानियों के विवेचन के लिए हम अपने आलोच्य काल को दो विभागों में बांटते हैं—प्रथम भारतेन्दु-काल (१८५०-१९००) तथा द्वितीय भारतेन्दोत्तर काल (१९००-१९५०) अथवा आधुनिक काल।

भारतेन्दु काल

इस काल में हास्य-रस की कहानियो का अभाव है। या तो यात्रा वर्णन को कथात्मक ढग से कहा गया है अथवा "चोज की बाते" मिलती है जिनमें थोडा कथा तत्व मिलता है। भारतेन्दु अपनी "जनकपुर यात्रा" का वर्णन कहानी के ढग से कहते हुए लिखते है—

"आज दोपहर को पहुँचे। राह में रेल में कुछ कष्ट हुआ क्योंकि सैकेन्ड क्लास में तीन चार अंग्रेज थे, बस उनमें मैं अकेला "जिमि दसनन महँ जीभ विचारी", कष्ट हुआ हो चाहे "नर बानरहि सग कहु कैसे"। बरसात और सैकेन्ड क्लास—पानी की बौछार आने पर साहब ने पूछा, "Have you made water" मैंने कहा "Not I but God." इस पर वह बहुत प्रसन्न हुआ।"[1]

आगे ओ० टी० आर० रेलवे का वर्णन करते हुआ लिखा है—

"झण्डी मालूम होती थी कि कोई खेत वाली स्त्री की मैली फटी सारी का पल्ला फाड कर लकडी में लगा कर कौआ हाँकता है। खैर दरभगा पहुँचे, कल जनकपुर जावेंगे।"[2]

"चोज की वातें" शीर्षक से कुछ चुटकले भी निकलते थे—

"एक भले आदमी से किसी ने पूछा, "औरतों के पेट में भी कोई बात पच सकती है।"

उसने जवाब दिया, "हा, सिर्फ एक बात।"

"कौन सी ?"

"उनकी उमर।"[3]

इसी प्रकार "ब्र-मो-कूल" नाम से "हिन्दी-प्रदीप" में एक लेखक ने डायरी की शैली में तत्कालीन फैशन परस्ती पर लिखा था —

"आज ५००) इस शर्त पर कर्ज लिया कि जब बाप मरेंगे तब १०००) देंगे। उन्हीं रुपयों से आज राम-नवमी का जलसा हुआ। शहर की खूबसूरत और नौजवान तवायफें आई। उनकी दावत बडे धूमधाम के साथ की गई। मैंने भी पी। साहब के साथ उनके दफ्तरखान में शरीक हुआ बल्कि पिता जी

---

१ हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका—जुलाई १८७८—पृष्ठ १५
२ हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—जुलाई १८७८—पृष्ठ १५
३ हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—नवम्बर १८७७—पृष्ट १५

इसी वजह से घर से निकल गए। बुड्ढा बहाने बाजी करता है। पीछे पछताय आप ही घर आ जायगा।"

आगे चलकर "अ-मो-कूल" ने अपने आलम्बन फैशन-परस्त नवयुवक का फैशन में किया जाने वाला व्यय उसी के हाथो उसकी डायरी मे लिखवाया है—

"१ कोट सिल्क—धोलाई आना ४—वापिस किया तह ठीक नहीं है।

१ कोट हालैन्ड—ब्राउन धोलाई—४ आना।

२ वेस्ट कोट—धोलाई २ आना।

६ शर्ट—धोलाई ६ आना—वापिस-कफ और कालर की तह ठीक नहीं।

२ पैन्ट—धोलाई २ आना—वापिस—तह ठीक नही।

२ कौलर-धोलाई—२ आना।

२ नकटाई—धोलाई—४ आना।

२ बीबी साहिबा की साडी—धोलाई १ रुपया।

रिमार्क—कुल टोटल धोलाई का हिसाब १ हफ्ता ३ रुपये—१२ रु० महिना।"[1]

कहानी-कला एव हास्य-विधान—उस समय कहानी कला इतनी विकसित अवस्था में नहीं थी इसलिये उनमे वह कथा-शिल्प नहीं मिलता जो आज है। भारतेन्दु जी की "मोज की बातो" में वाक्-छल का सुन्दर प्रयोग मिलता है। उनका यात्रा-वर्णन भी कहानी का आनन्द देता है एव उसमें "स्मित हास्य" की सुन्दर व्यजना हुई है। "अ-मो-कूल" का व्यग्य कटु हो गया है। वर्णन भी अतिरजित है। लेखक ने तत्कालीन फैशन-परस्ती पर व्यग्य-बाण डायरी के माध्यम से छोडे है। उस सस्ते जमाने में १२) रु० मासिक धोबी पर खर्च करना मूर्खता थी। साथ ही पिता की मृत्यु की आशा में कर्ज लेकर फैशन करना एक सामाजिक विडूपना थी। लेखक इनके चित्रण में सफल हुआ है।

आधुनिक काल

जी० पी० श्रीवास्तव

"हास्य-रस की कहानियाँ लिखने वाले जी० पी० श्रीवास्तव की पहली कहानी भी "इन्दु" में सवत् १९६८ में ही निकली थी।"[2] जी० पी० श्रीवास्तव

---

१. हिन्दी प्रदीप —जुलाई १९०५, पृष्ठ ११-१७.

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—संशोधित एवं परिवर्द्धित सस्करण, पृष्ठ ४३८.

हास्य-रस की कहानियो के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। इनकी कहानियो का सग्रह "लम्वी-दाढी" के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें छ कहानियाँ सग्रहीत हैं—(१) मौलाना बरबादअली वाही तवाही उर्फ मौलवी साहब (१९१२), (२) महामहोपाध्याय प० चापरकरन अगडम वगडम उर्फ पण्डित जी (१९१४), (३) बावू झटपटनाथ एफ० ए० फेल उर्फ मास्टर साहिब (१९१३), (४) कालिज मैच, (५) चचा भतीजे (१९१२), और (६) एक अण्डरग्रेजुएट की शादी (१९१२)।

पहली कहानी में मौलवी साहब हास्य के आलम्वन वनाये गये हैं—

"मैंने अपनी विल्ली को मछली पर इतना साध लिया कि ज्योंही मैं एक टुकडा फेंकता था त्यों ही ऊपर ही ऊपर वह उसे गडाप से ले लेती थी। एक दिन जब मौलवी साहेब पढ़ाने के लिए आए तो मैंने पीछे से उनकी पगडी पर एक छोटी मछली रखकर सामने सलाम करके बैठा ही था कि बिल्ली ने ऐसा धावा मारा कि मछली के साथ साथ झपट्टे में पगडी भी उतार ले गई। मौलवी साहब चौंक के उचके और ढिमला के दूर गिरे और लगे हाँफने।"

अधिकतर इन्होंने शिक्षा-जगत की समस्याएँ ही अपनी कहानियो में ली हैं। श्रीवास्तव जी की दृष्टि में सस्कृत के पण्डित कितने कूप-मण्डूक होते हैं एव सस्कृत अध्यापन की विधि कितनी दोषपूर्ण है, पढाई का ढग कितना नीरस है, इसका वे चित्रण करते हैं—

"एक तो गाव के पण्डित खुद गावदी। न बोलने का तरीका न बात करने की तमीज, दूसरे मिले दो साथी—रटने में तोता, देखने में उल्लू। सिधाई का ऐसा सिर मुडा के पीछा किया था कि न घर के काम के रहे न बाहर के। अगर चार आदमियो में फंस गए तो भडके हुए बैल का मजा देखिए।"

अन्त में श्रीवास्तव जी का उपदेशक रूप सम्मुख आता है—

"अए ऐसे अक्ल के अन्धे पण्डितो, तुम अपने ही हाथ से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारते हो और इसके साथ सिर्फ अपनी बेवकूफी की वजह से बेचारी निर्दोष सस्कृत की जड खोदते चले जाते हो। ईश्वर जाने तुम्हारी आँखें कब खुलेंगी।"

—(लम्वी दाढी)

"कालिज-मैच" शीर्षक कहानी में उन्होने विद्यार्थी-वर्ग में वढती हुई फैशनपरस्ती का खाका खींचा है—

"छुट्टी हुई—बोर्डिंग हाउस गया तो रावर्टसन के चपरासी ने फर्शी सलाम कर मेरे हाथ में पहले एक लिफाफा दिया, उसे फाड़कर मैं पढ़ने लगा—

सूट एक	५८-१४-०
एक सेमी नार्फक कोट	२८- ०-०
दो क्रिकेट सिन टेनिस बूट	२०- ०-०
१ टेनिस सर्ज पेन्ट	९- ०-०
२ वकस्किन टेनिस बूट	१४- ०-०
१ बूट रेक्स	१५- ०-०
१ चेस्टरफील्ड	६०- ०-०
१ बूट फुटबाल	८- ०-०
कालर और टाई	१०- १-६
	२२३- ०-४

इस मैच के लिए मैंने बड़ी किफायत की यानी कपड़ों में केवल २२३) ही रुपये खर्च किये। ट्रंक में और कपड़ों के साथ इनको भी रक्खा और रास्ते में जलपान के लिए हन्टले और पामर्स का एक डिब्बा बाईस और एक डिब्बा "मैरी बिस्कुट" का भी रख लिया।"

—(लम्बी दाढ़ी)

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—इनकी कहानी कला की चार विशेषताएँ हैं—(१) अस्वाभाविकता में स्वाभाविकता का भ्रम (२) स्वभाव या बुराई का हास्य-जनक प्रदर्शन, (३) कुप्रथाओं पर चोट और (४) मनोरंजन के साथ सुधार। काश, इनमें अश्लीलता न होती। इनकी अतिरंजित एवं अतिनाटकीयता ने इनकी कला को हीन बना दिया। कहीं-कहीं इनका हास्य "मुंहफट" हो गया है एवं व्यंग्य भी कटु हो गया है। इनका महत्त्व इतना ही है कि इन्होंने हास्य-पूर्ण कहानियों को जन्म दिया एवं हिन्दी साहित्य की इस कमी को पूरा किया। घटना-प्रधान कहानी ही इनकी अधिक हैं। चरित्र-चित्रण सफल नहीं हो सका। आचार्य शुक्ल ने इनकी कहानी-कला के बारे में लिखा है जिससे हम पूर्णतः सहमत हैं—"जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियों में शिष्ट और परिष्कृत हास की मात्रा कम पाई जाती है।" इनके अधिकतर पात्र कार्टून हैं। उनमें स्वाभाविकता नहीं। उनके कार्य-कलाप सदैव उटपटांग होते हैं। वे सन्तुलन खो देते हैं। उनकी सरसता नष्ट हो जाती है। यही कारण है कि साधारण पाठक चाहे इनकी रचनाओं से प्रसन्न हो उठे, पर विद्वानों ने इनको

पर उनसे सरल मुस्कान नही फूटती और उन्हे कहानियो का स्तर साधारण दिखाई देता है।

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द जी मुख्यत हास्यरस के लेखक नही थे, उन्होने गम्भीर कहानियाँ ही अधिक लिखी, लेकिन वे तो मेधावी कलाकार थे। हास्यरस की भी जो कहानियाँ उन्होने लिखी वे उच्चकोटि की लिखी। "मोटेराम शास्त्री" को नायक बनाकर उन्होंने कुछ हास्य-रचनात्मक कहानियाँ लिखी। मोटेराम का सत्याग्रह तथाकथित सत्याग्रहियों पर सुन्दर व्यग्य है। मोटेराम तथा उनके मित्र चिन्तामणि को आलम्बन बना कर उन्होने ब्राह्मणो के पेटूपन एव भुक्खडपन पर व्यग्य किया है। उनकी एक "ग़मी" शीर्षक कहानी में जो हास्य-रसात्मक है एक ऐसे चरित्र का चित्रण किया गया है जो अपने यहाँ बालक होने पर अपने मित्रो के यहा वह खबर भिजवा देता है कि उनके ग़मी हो गई है। जब लोग उसके यहा पहुँचते है तो यह कह देता है कि बालक के होने से उसकी परेशानियाँ बढ गई इसलिए वह उसे गमी समझता है और सबसे कहता है—

"मै इसे ग़मी समझता हूँ और इसीलिए इस जन्म को ग़मी कहता हूँ। आप लोगों को कष्ट हुआ। क्षमा कीजिए। आप लोग गगा-स्नान के लिए तैयार होकर आए, चलिए मैं भी चलता हूँ। अगर शव को कन्धें पर रख कर चलना ही अभीष्ट हो तो मेरे ताश और चौसर को लेते चलिए। इन्हें चिता में जला देंगे। वहाँ मैं गगाजल हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करूगा कि अब ऐसी महान मूर्खता फिर न करूगा।"[1]

कहानी-कला एव हास्य-विधान—इनका चरित्र-चित्रण एव कथोपकथन स्वाभाविक हुआ है। विशुद्ध हास्य की कहानी लिखने में ये सफल हुए है। हास्य का उद्रेक असगित द्वारा किया गया है। हास्य "स्मित" है, कही पर कटुता एव अतिरजना नही। व्यग्य का भी जहाँ उपयोग किया है, वह मृदुल है, उसकी अभिव्यक्ति सहज है, मलिनता रहित एव निष्कलुष।

अन्नपूर्णानन्द वर्मा

इनकी कहानियो के सग्रह है—महाकवि चच्चा, मेरी हजामत, मगन रहु चोला, मगलमोद तथा मनमयूर। समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर उन्होने तत्कालीन समाज में प्रचलित विधवा-विवाह विरोध, फैशन परस्ती, जी

१ मतवाला (साप्ताहिक), कलकत्ता—अगस्त १९२९, पृष्ठ ६

हुजूरी आदि कुप्रथाओं पर कड़ी चोट करके उनके निवारण की प्रेरणा अपनी रचनाओं द्वारा दी। इनके अतिरिक्त इनमें हिन्दी के साहित्यिकों, कवियों, पत्रकारों, इतिहास लेखकों तथा हिन्दी के उन्नायक राजा महाराजाओं और प्रकाशकों की मनोवृत्तियों का अच्छा विश्लेषण किया गया है। 'जी हुजूरी' पर इनका व्यंग्य देखिये—

"सज्जनो! अंग्रेज अवतारी जीव हैं। हम पशु थे, उन्होंने हमें मनुष्य बनाया। हमें बड़ों के पैर छूने की गन्दी आदत थी, उन्होंने हमें गुडमार्निंग करना सिखाया। हमें उपकारों के लिए आजीवन कृतज्ञ रहने की बुरी आदत थी, उन्होंने हमें "थैंक यू" कहना सिखाया। हम बैलों की तरह भर पेट खाते थे, पंचायतों से फोकट में न्याय पाते थे, उन्होंने हमें गरीबी में सन्तोष करना सिखाया, न्याय का मूल्य बताया। उनके प्रताप से बाघ और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं, हिन्दू और मुसलमान एक कलवरिया में शराब पीते हैं।"[1]

"मेरी हजामत" में तीन कहानियाँ हैं—'मेरी हजामत' शीर्षक कहानी में हास्य का निखरा हुआ रूप मिलता है। "सैलून" में जाकर जाने पर जब लेखक सूट-बूट धारी नाई से ही पूछते हैं—"आप बता सकते हैं कि इस दुकान का मालिक कहाँ मर गया।"[2] तो पाठक सहसा हँसे बिना नहीं रह सकता।

"अपना परिचय" शीर्षक आत्म-कथात्मक कहानी में देखिये—"मेरी खोपड़ी मेरे शरीर का वह उन्नत भाग है जो अक्सर चौखटों से भिड़ा करता है। इसी शिखर पर एक शिखा है जिसकी चक्रवेदी गाय के खुर को परकार से नाप कर की गयी थी। लोगों का कहना है कि मेरी इस शिखा से मूर्खता टपकती है। लेकिन मेरा कहना है कि मूर्खता भी मूर्खता करती है जो टपकने के इतने स्थान छोड़ चुटिया से टपकती है।"[3]

उनका एक उद्धरण और देने का हम लोभ संवरण नहीं कर सकते। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त आधुनिक भारतीय नवयुवकों के जीवन और चरित्र का स्पष्ट चित्र उन्होंने अपनी इस कहानी में प्रस्तुत किया है। अपने एक मित्र के लिखने पर वह उनके छोटे भाई की खैर-खबर लेने उनके कालिज के होस्टल

१. महाकवि चच्चा—पृष्ठ ८३
२. मेरी हजामत—पृष्ठ ५९
३. मगन मयूर—पृष्ठ २

में पहुँच गए। लगभग १५ मिनट के वाद दरवाजा खुला। उसका वर्णन वह इस प्रकार करते हैं—

"दरवाजा खोलने वाला व्यक्ति—क्या कहा जाए? एक बार मुझे यह भ्रम हुआ कि मै लडकियों के बोर्डिंग हाउस में तो नहीं चला आया? अवस्था १८ वर्ष की रही होगी। जान पडता था कि मूँछों ने जब जब निकलने का अपराध किया तब तब उनकी खबर "राजरानी सोप" से ली गई थी। गरदन सुराहीदार, कमर कमानीदार, बाल चिकने और आबदार, मानों किसी पेटेंट गोद से चिपकाए गए हों। माग जैसी कसौटी पर कचन की लीक . ।"[१]

कहानी-कला एव हास्य-विधान—अन्नपूर्णानन्द जी की कहानी लिखने की अपनी विशिष्ट शैली है। इन्होने "बिलवासी मिश्र" एव "महाकवि चच्चा" पात्रो की सृष्टि कर अपनी घटनाओ को सजोया है। भाषा पर तो मानो इनका अधिकार है। कथोपकथन, घटनाएँ सब वास्तविक जीवन से ली गई हैं। विशुद्ध हास्य का सृजन इनकी विशेषता है। इनका व्यग्य इतना तीखा नही कि तिलमिला दे, वरन् एक सिहरन पैदा करता है। मनोरजन के साथ समाज-सुधार की प्रेरणा देना इनका ध्येय रहा है और उसमें इनको सफलता मिली है। अपने आलम्बनो के प्रति इनका वैर-भाव नही वरन् ममता-पूर्ण व्यवहार है। यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि इनकी कहानियाँ खाँड की रोटियाँ हैं जो जिधर से तोडो उधर से मीठी होती हैं। इनकी कहानियाँ अस्वाभाविक हास्य एव अश्लीलता से बची हुई हैं। इनकी कल्पना-शक्ति प्रतिभापूर्ण एव वर्णन-शैली रोचक है। इनको जितनी सफलता व्यग्यात्मक कहानी लिखने में मिली है उतनी ही शुद्ध हास्यात्मक एव चरित्र-प्रधान लिखने में। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—"अन्नपूर्णानन्द जी का हास सुरुचिपूर्ण है।"[२]

बेढब बनारसी

इनकी कहानियो के प्रथम सग्रह का नाम "बनारसी इक्का" है। तत्पश्चात् "गाधी जी का भूत", "मसूरीवाली" तथा "टनाटन" नाम से और प्रकाशित हुए हैं। इनकी कहानियो में कुछ तो व्यग्यात्मक हैं, बाकी केवल मनोरजन के लिए लिखी गई हैं जिनमें सुधार की कोई भावना नही। सिनेमा की बढती हुई रुचि, फैशनपरस्ती, डाक्टर, वैद्य, मूर्ख कवि तथा इनकी

---

१ महाकवि चच्चा—पृष्ठ ८६

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास—सशोधित एव परिवर्द्धित सस्करण, पृष्ठ ४७४

व्यंग्यात्मक कहानियों में कवि प्रोफेसर, अन्धविश्वास, पुरातत्व की सनक, सम्पादकों की परेशानी आदि विषयों पर व्यंग्य किये गये हैं।

"बनारसी एक्का" उनकी श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इसमें उपमाओं का संयोजन सुन्दर है। एक चित्रण देखिए—"साधारण एक्के के घोड़े भारतीय दरिद्रता के अलबम हैं, या यों कहिए कि आजकल के स्कूलों और कालिजों के अधिकांश विद्यार्थियों की चलती फिरती दौड़ती तसवीरें हैं.... 'यह मजनूं की तसवीर है। पसली की हड्डियां ऐसी दृष्टिगोचर होती हैं जैसे एक्स-रे का चित्र। हांफने की गति हिन्दी के कहानी लेखकों की पैदाइश की संख्या से कम न होगी। मोटाई इन वीर तुरगों की ऐसी होती है कि आश्चर्य होता है कि इनकी कमर से कवि और शायर अपनी नायिकाओं की कमर की उपमा न देकर इधर उधर क्यों भटकते रहे? इनका सारा शरीर ऐसा लचकता है जैसे अंग्रेजी कानून, जिधर चाहो उधर मोड़ लो।"[1]

इनकी व्यंग्यात्मक कहानियों में "बकरी" प्रसिद्ध है। इसमें केवल इस भाव की व्यंजना है कि मनुष्य जब यन्त्रवत हो जाता है तो उसका जीवन कितना हास्यास्पद हो जाता है। इस कहानी में हास्य के आलम्बन कलक्टरी कचहरी के पेशकार पालना प्रसाद हैं। उनका चित्रण देखिये—

"इनके साथी कहते थे कि उस जन्म में यह मशीन थे। किसी कार्य में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती थी। कचहरी में जब यह मिसिल पढ़ कर सुनाते थे तब ऐसा जान पड़ता था कि ग्रामोफोन में से शब्द निकल रहे हैं। सिर पर टोपी ऐसे रखते थे कि यदि एक दिन उसका चित्र ले लिया जाता तो जब चाहे उससे मिला लीजिये—एक अंश का भी अन्तर न मिलेगा। यदि एक दिन कोई गिन लेता कि कितना चावल इन्होंने खाया तो सदा इनकी थाली में उतना ही मिलता। एक चावल का भी अन्तर न मिलता। धोबी को रविवार के दिन आठ बज कर सैंतीस मिनट पर यह कपड़ा दिया करते थे यदि मृत्यु भी उस समय आती होती तो यह कपड़ा देकर ही मरते ऐसा इनका विचार था। सारा कार्य बनी योजना के अनुसार होता था।"[2]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—बेढब जी की कहानी-कला में त्रुटि केवल इस बात की है कि कहीं-कहीं वे वीभत्स तक अश्लील हो गए हैं और वहाँ उनका हास्य हास्यास्पद हो गया है। उपमाओं के प्रयोग करने में वे कुशल

१. बनारसी एक्का—पृष्ठ ३

२. गांधी जी का भूत—पृष्ठ ३१

है। ये इनकी शैली की विशिष्टता है। उक्तियाँ भी सुन्दर वन पडी है। इन्होंने हास्य का उद्रेक पात्रो के अपकर्ष तथा चरित्र-चित्रण के सहारे किया है। घटनाओ द्वारा भी हास्य का उद्रेक किया गया है। इनके व्यग्य कटु नही हैं। इन्होने मात्रा में अधिक लिखा है किन्तु स्तर कही-कही गिर गया है। इनकी वर्णन शैली सुरुचिपूर्ण अवश्य है लेकिन कही-कही कुरुचिपूर्ण वर्णन खटकता है। भाषा परिष्कृत है।

कान्तानाथ पाडे "चोच"

इनके कहानी सग्रह में "छडी वनाम सोटा" एव "मौसेरे भाई" प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भी सामाजिक विद्रूपताओ का चित्रण किया है। नारी की पुरुप के समान होने की सनक, नवयुवको की फैशनपरस्ती, कवि-सम्मेलनो की बाढ, कथा-वाचक पण्डितो की ज्ञान शून्यता, कचहरियो की दुर्दशा आदि विपयो पर हास्यपूर्ण कहानियाँ लिखी है। "भदोही मे अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन" शीर्षक कहानी मे कवि-सम्मेलन के समाप्त होने के वाद सयोजक जी तथा कवियो में जो वार्तालाप हुआ वह देखिए—

"वाह साहब, जनता अलग नाराज और आप लोग अलग झल्ला रहे हैं। ६।। के वजाय ९ वजे आप ही लोगो के कारण सम्मेलन शुरू हुआ, मेरा क्या दोष ? विना दाढी वनवाए कविता नहीं पढ सकते थे ? चारपाई हम कहाँ से लावें ? पब्लिक का काम है। आप लोग तो समधी-दामाद से भी वढ़कर ऐंठ दिखला रहे हैं। यह ऐंठ किसी और को दिखलाइयेगा। आप लोगो की तो करनी ऐसी है कि किराया तक देने को जी नहीं चाहता है और किस मुंह से किराया लीजिएगा ? कौन-सा परिश्रम किया है आपने ? आप में से किसी एक ने भी समस्या-पूर्ति की थी ? वही पुरानी कविताएँ सुनाईं जो अखवारों में छप चुकी थीं। उनमें से दो एक की जमी। बाकी लोग तो नायिका की तरह गलेबाजी कर रहे थे। जनता कविता सुनने आई थी, गीत सुनने नहीं। इससे अच्छा था कि हम लोग कुछ कत्यक या तवायफें बुला लिए होते। ठाकुर गोपालशरण सिह के आने का भरोसा था, वे भी नहीं आए। पता है उनके न आने पर पब्लिक क्या कह रही थी ? यही न कि सिह नहीं कुछ स्यार अवश्य आए हैं।"[1]

आजकल की फैशन-परस्ती पर व्यग्य उन्होने "मेरे घर की प्रदर्शिनी" नामक कहानी में किया है। लेखक की पत्नी और उनका साला गौराग दिन भर

१ मौसेरे भाई—पृष्ठ ४१

प्रदर्शिनी चलने की बात सोच कर षड्यन्त्र करते हैं और अन्त में जब गौराग लेखक से प्रार्थना करता है तो वह कहता है —

"देखो गौराग ! मेरी प्रदर्शिनी कितनी अच्छी है ·····दिन भर में पन्द्रह बार पन्द्रह तरह की साड़ियाँ बदल बदल कर जब तुम्हारी दीदी मेरे पास से निकलती है तो मालूम पड़ता है कि बनारसी और अहमदाबादी दुकानों के स्टाल लगे हैं।······लड़के जब मिठाई देने पर भी लड़ते हुए शोरगुल करने लगते हैं तो मालूम होता है कि मुशायरा हो रहा है।"[1]

कहानी-कला और हास्य-विधान—उनकी कहानियों में अधिकतर स्वप्न का सहारा लिया गया है। लेखक जो स्वप्न में देखता है, उसी का वर्णन करता है। इसलिए अधिकतर पात्र कल्पित हो गये हैं, साधारण जीवन से उनका अधिक मेल नहीं। दूसरे हास्य का उद्रेक वर्णन करने से होता है, स्वाभाविक रूप से नहीं। कहीं कहीं हास्य "अपहसित" की श्रेणी में भी आ जाता है, "स्मित" नहीं रहता। लम्बे लम्बे कथोपकथनों से नीरसता भी यत्र-तत्र आ गई है। उनका हास यत्नज है, उनमें स्वाभाविकता नहीं।

निराला

"सुकुल की बीवी" तथा "चतुरी चमार" इनके हास्य रस की कहानियों के संग्रह हैं। उन्होंने समाज की विद्रूपताओं का चित्रण किया है। निराला ने उन्मुक्त प्रेम, उन्मादिनी शिक्षित युवतियों के स्वतन्त्र प्रेम, वृद्ध-विवाह आदि पर व्यंग्य किया है।

श्री गजानन्द शास्त्री ने अपनी चौथी शादी क्यों की है? लेखक व्यंग्यात्मक शैली में उनका औचित्य बतलाता है—

"श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पं० गजानन्द शास्त्री की धर्मपत्नी हैं। श्रीमान् शास्त्री जी ने आपके साथ चौथी शादी की है—धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को सोलही कन्या के लिये पैंतालीस साल का वर बुरा नहीं लगा—धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किये शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ शास्त्रिणी की साइन-बोर्ड टांगा-धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी ने उतनी ही उम्र में गहन पाणिग्रन्थ पर अविराम लेखनी चलायी—धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है—धर्म की रक्षा के लिए।"[2]

---

१. दुनी बनाम गोटा—पृष्ठ १०.

२. सुकुल की बीवी—पृष्ठ ४०.

इसके अतिरिक्त इसमें तीन कहानियाँ और हैं—सुकुल की बीवी, कला की रूपरेखा और क्या देखा। सुकुल की बीवी कहानी में परीक्षा के निकट लेखक की दशा का हास्यमय वर्णन किया गया है—

"किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फेल हो जाने वाली चिन्ता अन्त में निश्चय किया, प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूँगा, सभ्य लड़के की भाँति लौट आऊँगा।" परीक्षा के बाद फिर—"मेरे अविचल कंठ से सुनकर कि सूबे में पहला स्थान मेरा होगा, अगर ईमानदारी से पर्चे देखे गये पर ज्यों ज्यो फल के दिन निकट होते आते मेरी आत्मा-वल्लरी सूखती गयी।"[1]

कहानी-कला और हास्य-विधान—निराला जी की कहानी मुख्यतः व्यंग्य प्रधान है और वह व्यंग्य है तीखा, कलेजे में चुभने वाला। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक है। पात्र सजीव है, कथोपकथन में तीव्रता है। हास्य का उद्रेक पात्रो के क्रिया-कलापो से स्वयं हुआ है, यत्न करने की आवश्यकता नही पड़ी।

विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक"

ये "चाँद" में "विजयानन्द दुबे" के नाम से चिट्ठियाँ लिखा करते थे। उन पत्रो का संकलन "दुबे जी की चिट्ठियाँ" नाम से प्रकाशित हो चुका है। उनमें कुछ पत्र कहानी की श्रेणी में आते है, कुछ निबन्ध की श्रेणी में। वह युग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन तथा महात्मा गांधी के द्वारा प्रेरित समाज-सुधार का था। गम्भीरता उस युग का विशेष गुण था। उस युग के लेखको का साहित्य समाज की गम्भीर समस्याओ को लेकर ही आगे बढता है। इनकी कहानियो में समाज में प्रचलित बुराइयो पर व्यंग्य है। आर्य समाजी लोगो में बहस और शास्त्रार्थ करने की बीमारी होती है। न समय देखते हैं न स्थान, उन्हे अपनी बहस करना। कौशिक जी ऐसी ही एक बारात का वर्णन करते है जिसमें ब्याह की लग्न पास आ रही है लेकिन आर्य-समाजी कहते हैं लग्न किस चिड़िया का नाम है—

"बात बात में वेदों का हवाला देना तो इन लोगों का तकिया-कलाम सा था परन्तु ईश्वर झूठ न बुलवाए, उनमें से अधिकांश ऐसे थे जिन्होंने वेद की कभी सूरत भी नहीं देखी थी। परन्तु लड़की वाला टस से मस न हुआ। उसने कह दिया कि विवाह सनातन धर्म के अनुसार होगा। इसी समय एक महाशय

१ सुकुल की बीवी—पृष्ठ १६

जी बोल उठे—अच्छा, इस विषय पर शास्त्रार्थ हो जाय। मुझसे न रहा गया। मैंने कहा—आप बहुत ठीक कहते हैं। शास्त्रार्थ अवश्य होना चाहिए, विवाह हो चाहे न हो। यदि आप लोगो ने यह मसला तय कर दिया कि विवाह वैदिक रीति से होना चाहिए अथवा सनातनधर्मी रीति से तो बडा उपकार होगा। ऐसे महत्वपूर्ण मसले को सुलझाने के लिए यदि विवाह भी रोक दिया जाय तो कोई बुरी बात नहीं।"[1]

इसके अतिरिक्त कुछ कहानियो में विधवा-विवाह के विरोधियो तथा पर्दा-प्रथा के समर्थको, जी-हुजूरो, नेताओ आदि की खूब खबर ली गई है। कौशिक जी की मृत्यु से पूर्व उनका अन्तिम पत्र प्रकाशित हुआ था। उसमें नेताओ पर करारा व्यंग्य किया गया है—

"नेता की परिभाषा यही है कि अपनी कहो, दूसरे की न सुनो, ससार भर में अपने को ही बुद्धिमान समझो और शेष सारे ससार को वज्र मूर्ख'''। भाई अब तो मेरा भी जी यही चाहता है कि मैं नेतापन पर कमर बाँध लूं। अवसर अच्छा है, ऐसी घाँधली में भी जो नेता न बना उसका सवेरे सवेरे देखना पाप है। बस, मैं नेता और मेरा बाप नेता, और जो मुझे नेता न माने उसको हिन्दुस्तान से निकाल दो, वह देशद्रोही है।"[2]

उन्होंने नेतापन की "क्रीड" भी बताई है। उसको उद्धृत करने का लोभ हम सवरण नही कर सकते—

"(१) दोनो वक्त गहरी छानना, (२) अपने आगे किसी की कुछ न सुनना और जो अधिक बडबडाए तो ठोक देना, (३) हिन्दुस्तान से बाहर घूमने के लिए रेल और जहाज का किराया इकट्ठा करना (४) बात बात में अपने को नेता कहना, (५) अपने दल में नित्य एक बार जूता-लात कर लेना, (६) किसी बात पर कभी जमे न रहना कभी कुछ कहना, कभी कुछ, और (७) जनता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये रोज नए-नए स्वांग लाना जैसे थियेटर, बाइस्कोप वाले रोज नया तमाशा दिखाते हैं।"[3]

कहानी-कला और हास्य-विधान—कौशिक जी की कहानी में दो विशेष गुण हैं। प्रथम पाठक को मनोरंजन की सामग्री देना और दूसरे उसकी

---

१ दुबे जी की चिट्ठियाँ—पृष्ठ २८६

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान—१९ सितम्बर १९५४, प० विश्वम्भर नाथ कौशिक के लेख—लेखक प्रद्युम्न पण्डित।

३ साप्ताहिक हिन्दुस्तान—१९ सितम्बर १९५४, प० विश्वम्भर नाथ कौशिक के लेख—लेखक प्रद्युम्न पण्डित।

उत्सुकता बनाये रखना। इनकी भाषा प्रसाद-गुणयुक्त है। इन्होंने हास्य का उद्रेक पात्रों के वार्तालाप में वाक्-छल का पुट देकर किया है। घटनाएँ भी स्वाभाविक हैं। इनमें "स्मित हास्य" तथा व्यंग्य दोनों पर अधिकार है। हमारा निश्चित मत है कि "दुबे जी की चिट्ठियाँ" हिन्दी साहित्य में हास्य-रस की एक स्थायी सम्पत्ति हैं। इन्होंने जिस समस्या को उठाया है उसे अधूरा नहीं छोड़ा, जिस चरित्र का चित्रण किया है उसे पूर्णत ढाँचे में उतारा है। इन्होंने जो कुछ लिखा वह वास्तविक जीवन से लेकर लिखा। कल्पना का सहारा लेकर उन्होंने हास्य पैदा करने का प्रयत्न नहीं किया। उनके हास्य साहित्य को पढ़ते समय हमें ऐसा लगता है कि जैसे हम जीवन को देख रहे हैं, कौशिक जी के हास्य में दूसरों को तन्मय कर लेने की क्षमता है।

भगवती चरण वर्मा

आपकी कुछ कहानियों में सामाजिक व्यंग्य का सृजन कलात्मक ढंग से हुआ है। "प्रज़ेण्टस" शीर्षक कहानी में लेखक ने शशिबाला नाम की एक ऐसी स्त्री का चरित्र-चित्रण किया है जिसके माध्यम से आधुनिक शिक्षित युवतियों के एक वर्ग विशेष के प्रेम-व्यापार पर एक कटु व्यंग्य किया गया है। कहानी का नायक शशिबाला के मकान में है, शशिबाला स्नान-घर में है, नायक ड्रेसिंग टेबिल में लगे दर्पण में अपना मुख देखता है। उस टेबिल में चिपके हुये कागज़ को देखता है तो उसमें नाम लिखा हुआ है प्रकाशचन्द्र। वह यही सोच रहा था कि यह प्रकाशचन्द्र कौन है, तो उसकी निगाह 'वैनेटी-बाक्स' पर पड़ जाती है उसमें नाम लिखा हुआ है "सत्यनारायण"। इसी प्रकार शशिबाला जी के ग्रामोफोन, हारमोनियम पर भी विभिन्न प्रेमियों के नामों की चिटें लगी हुई मिली। "**अब तो मैंने कमरे की चीजों को गौर से देखना आरम्भ किया। सब में एक एक कागज चिपका हुआ और उस कागज पर एक एक नाम—जैसे "विलियम गर्बो", "पेस्टनजी सोराबजी बागलीवाला", "रामेन्द्रनाथ चक्रवर्ती", "श्रीकृष्ण रामकृष्ण मेहता", "रामनाथ टण्डन", "रामेश्वर सिंह", आदि आदि।**"[1] लेखक को वह उन भेंट की हुई वस्तुओं की संख्या ९७ बताकर कहती है—"**आपका नम्बर अट्ठानवें होगा।**"

नारी के अर्थ-प्रेम पर कितना कटु व्यंग्य है? प्रेम के सौदे "प्रेज़ेण्टस" के लिए किये जाते हैं। इतना मनोवैज्ञानिक तथा हास्य-मय वर्णन अन्यत्र दुर्लभ

१ इन्स्टालमेन्ट—श्री भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ ६

है। "विक्टोरिया क्रास" अंग्रेजों के जमाने में उस व्यक्ति को दिया जाता था जो लड़ाई में बहुत बहादुरी दिखाता था। वर्माजी ने "विक्टोरिया क्रास" शीर्षक कहानी में सुखराम पात्र को विक्टोरिया क्रास मिल जाने का वर्णन किया है जो कि लड़ाई से जान बचाकर भागता है। "बाबू साहब सुखराम की ऐसी बेशरम जिन्दगी भी हम लोगों ने नहीं देखी। चारों तरफ से गोलियों की बौछारें हो रही हैं, तोप के गोले गिर रहे हैं, बम फूट रहे हैं और सुखराम उन सबों के बीच से सही सलामत भागे जा रहे हैं। एक गोली कान से सटती हुई निकल गई, तोप के गोले से जो जमीन फट के उछली उसी के साथ उन्होंने भी दस फुट की छलांग मारी। उनका साफा गोलियों से छलनी हो रहा था, जूते की एड़ियों में गोलियां चिपकी हुईं, वर्दी गोलियों से छिदी हुई और सुख-राम के बदन पर एक खरोंच तक नहीं। किन्तु कर्नल साहब पर उसका विप-रीत ही असर होता है—

"सुखराम ने बहुत बहादुरी का काम किया........ताज्जुब हो रहा है कि यह शख्स इतनी दूर जिन्दा कैसे चला आया। हजारों गोलियों के निशान इसके बदन पर के कपड़ों पर हैं, पर इसके एक भी गोली नहीं लगी........ साथ ही हम सिफारिश करते हैं कि सुखराम को विक्टोरिया क्रास दिया जाय।"

—(इन्स्टालमेंट—भ० च० वर्मा)

भाग्य के व्यंग्य की (Irony of Fate) इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति वर्मा जी की लेखनी के सामर्थ्य की ही बात है। हास्य का उद्रेक स्वाभाविक वर्णनों द्वारा हुआ है। कर्नल साहब यहाँ हास्य के आलम्बन हैं तथा सुखराम के भागने का वर्णन हास्यपूर्ण है। कहानी में सफल हास्य की अवतारणा होती है और कहानी के अन्त में पाठक मुस्करा भर देता है। कथोपकथन सजीव है, एवं चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक।

जगन्नाथ "नलिन"

'नवाबी सनक' एवं "जवानी का नशा" इनकी दो हास्य रस की कहानियों के संग्रह हैं। 'नवाबी सनक" में नवाबों की नाजुक-मिजाजी, पतंग-बाजी, मुर्ग-लड़ाई आदि का हास्यपूर्ण वर्णन है। 'जवानी का नशा" इनकी व्यंग्यात्मक कहानियों का संग्रह है। इसमें "हवाई हमला', 'मोटरकार के सफर' "क्रिकेट" '[illegible]' "उल्लू' आदि १२ कहानियां हैं। इनमें मनुष्य और समाज की न्यूनताओं और दुर्बलताओं को प्रकट किया गया है। "प्रेम की पीड़ा" में उन लोगों पर व्यंग्य किया गया है जो शादी करने के लिए

प्रेमी बनना आवश्यक समझते है एक ऐसे ही नवयुवक का जो कवि बनने के लिए रास्ता चलती स्त्रियो से प्रेम का अभिनय करता है और अपमानित किया जाता है, चित्रण किया गया है । अपनी प्रेमिका की वह कल्पना करता है—

"और आह—मेरी प्राण वह तो जनाब पहनती है हल्की सी साढे तीन तोले की झिलमिल साडी, जिसमें बिना हवा ही उठती हैं लाखों लहरियां, और जनाब पहनती है बिना बाहो की बाडी । कितने अच्छे लगते हैं उसके पतले पतले लटकते हुए सींक से सुकुमार हाथ । एक इधर हमारी श्रीमती जी के हाथ हैं—मोटे मोटे मूसल से, जैसे किसी दगल में उतरना हो ।"

इसके बाद वह प्रेम का रिहर्सल करता है—

"सोचते सोचते दिल में कुछ दर्द सा मालूम होने लगा । आँखों में आँसू अभी भी न थे । उठा और आँखों में पेन-बाम लगा लिया । उससे वाकई आखों में आँसू आ गये । अब समस्या यह थी कि दिल का दर्द कैसे सुनाऊँ । लल्ला की महतारी तो अपने चौके-चूल्हे में लगी हुई थीं । खाना बना चुकने पर वह मेरे कमरे में आईं । मैं एक दम करवट बदल कर रह गया और बड़े जोर से एक आह की । वह एक दम चौंक पडीं ।"[1]

कहानी और रेखाचित्र में विशेष अन्तर नही है । कहानी रेखाचित्र से अधिक व्यापक होती है । "कहानी के लिए घटना का होना जरूरी नहीं है, पर रेखाचित्र के लिए उसका न होना जरूरी है । घटना का भराव वह सहन नहीं कर सकता । इसी प्रकार कहानी के लिये विश्लेषण किसी प्रकार भी अवाञ्छनीय नहीं है, परन्तु रेखाचित्र का वह प्राय अनिवार्य साधन है ।"[2]

"शतरज के मोहरे" नलिन के रेखाचित्रो का सग्रह है । इसमें कुछ राजनीतिक नेताओ तथा कुछ साहित्यिको के "व्यग्य-शब्द-चित्रो" का सकलन है । हिन्दी में यह नई चीज है । व्यग्यात्मक कहानियाँ तो मिलती हैं किन्तु व्यग्यात्मक शब्द-चित्र नहीं । "हिन्दी का चर्खा" शीर्षक से आपने प० बनारसी दास चतुर्वेदी का व्यग्य-शब्द-चित्र लिखा है—

"आप इन देवता जी को पहचानते हैं न ? नहीं भी पहचानते, तो भी जानते हैं और नहीं जानते, तो भी मानते हैं । इनका शुभ नाम है—बनारसी दास चतुर्वेदी । इनको जानें या न जानें, या न पहचानें पर इनको मानना अवश्य पडता है । मजबूरी है, अपने हाथ की बात तो नहीं । चमत्कार को

१ जवानी का नशा, पृष्ठ ४५, ४६
२. विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ८०

नमस्कार है, चौबे जी को क्या। इनको आप क्या समझते हैं, इनके कार्यकलापों को सिर झुकाना पड़ता है। वामनेट घी की तरह आप प्रसिद्ध हैं और प्याज़ की तरह फायदेमन्द। हींग के बघार की तरह मशहूर इनके कार्यकलाप हैं, सनकियों के समान इनके वार्तालाप हैं।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—इनके रेखाचित्र कला की दृष्टि से कहानियों से श्रेष्ठ हैं। रेखाचित्रों के रंग और रूप का सन्तुलन ठीक है, कहानियां अतिरंजित हो गई हैं। उनमें कल्पित पात्र एवं घटनाओं के सहारे हास्य का सृजन किया गया है जो अस्वाभाविक हो गया है। रेखाचित्रों में भी कहीं-कहीं तीव्रता है एवं व्यक्ति का चित्र स्पष्ट नहीं हो पाता है। हिन्दी में प्रथम प्रयास होने के कारण इनका महत्व अवश्य है। [illegible] में यह बात नहीं कि पाठक के दिल में चित्रित पात्र की तस्वीर उतार दे।

जहूरबख्श

"हम पिक्चरीटेन्ड हैं" इनकी [illegible] हास्य-व्यंग्यात्मक कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में "नेताजी", "कन्ट्रोल का गुड़", "दवाई" "बहादुर बच्चे", "घर भर जाग उठा" आदि में सामाजिक एवं राजनैतिक विकृतियों पर व्यंग्य किया गया है। जिस कागज़ को अनपढ़ पिक्चरीटेन्ड जी आनरेरी मजिस्ट्रेट का हुक्मनामा समझ कर कस्बे भर में शोर मचाते फिरते हैं उसको पढ़ कर जब थानेदार कहकहा लगा कर कहता है—"देखा है, देखा है। यह तो सनलाइट साबुन का इश्तहार है। पचौली जी (एक अन्य पात्र) हमारे ही यहां से ले गये थे।"

कहानी-कला और हास्य-विधान—इनकी कहानियों में अधिकतर पात्र कल्पित हैं, उनका चित्रण अतिरंजित है। स्वाभाविकता नहीं। हास्य का उद्रेक भी स्वाभाविक नहीं है। कृत्रिम लगता है।

[illegible]

"[illegible]" में इनकी [illegible] की कहानियां संकलित हैं। [illegible] गम्भीर कहानियां [illegible] हैं। इनमें समाज के [illegible], [illegible] एवं [illegible] पर तीखा व्यंग्य किया गया है। इनमें एक '[illegible]' की योजना की गई है। [illegible] —"ऐसे राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ता जो

1. [illegible], पृष्ठ १२०

काक-वृत्ति से मानो कौवे की तरह छीन झपट कर अपना निर्वाह करते हैं। इस देश की बडी-बडी रियासतो के मालिक बेकार फिरा करते हैं या सेठ जी भी दुपहर के समय भोजन करने के बाद कुछ देर बेकार में सुस्ताते हैं। यह लोग बेकार नहीं गिने जायेंगे और न "बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड" के मेम्बर बनने के हक़दार होंगे।"[1] आधुनिक नारी फैशन के धुध में कितनी विकृत हो गई है कि उसमें से नैसर्गिक सौन्दर्य एव सुषमा मृतप्राय हो गये हैं। "साहित्य, कला और प्रेम" शीर्षक कहानी में अवांछनीय परिवर्तन पर लेखक ने व्यग्य किया है—"और आज आज तो वे जार्जेट की "डल रोज" साडी पहन, कान्जि की लारी में बैठ, साजन समूह पर बहुत सी धूल और उडती उडती नजर डालती हुई वहाँ जा छिपती हैं, जहाँ लोहे के सींखचे जडे फाटक पर लिखा रहता है—"बगैर इजाजत भीतर आना मना है"। गागर की जगह उनकी बगल में दबी रहती है छतरी। रुनुन-झुनुन करने वाले पायजेब की जगह उनके पैरो से आती है ऊँची एडी की खटपट आवाज। यह ऊँची एडी जिसे बेध कर कोई भाग्य-शाली काँटा उनकी महावर रगी एडी को चूम नहीं सकता और किसी भाग्य-शाली देवर को वह एडी छू पाने का अवसर नहीं।"[2]

यशपाल ने पूंजीपतियो की शोषण नीति, कॉंग्रेसी नेताओ की मदान्धता, धर्म का नाम लेकर अत्याचार पर पर्दा डालने वालो पर तीखा व्यग्य लिखा है।

कहानी-कला और हास्य-विधान—यशपाल का व्यग्य सुसंस्कृत है। उसमें तीखापन है पर वह सयत है। इनकी भाषा टकसाली है। "अंग्रेजी शब्दो" का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है किन्तु वह खटकता नही। हास्य का उद्रेक सजीव कथोपकथन के द्वारा किया गया है। पात्र यथार्थ जीवन से लिए गए हैं कल्पित नही। चरित्र चित्रण स्वाभाविक है। इनकी विशेषता है इनकी प्रसाद-गुण-युक्त शैली। स्वाभाविक वर्णन पाठक को बरबस मोह लेता है। मनोरंजन के साथ इनकी कहानियाँ शिक्षाप्रद भी हैं तथा वे समाज सुधार की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करती हैं।

अमृतलाल नागर

"नवाबी मसनद" इनका हास्यरस की कहानियो का सग्रह है। नागर जी का हास्य अधिकाशत नवाबी जीवन तक ही सीमित रहा है। कुछ इने गिने

---

१ चक्कर क्लब—परिचय, पृष्ठ ६

२ चक्कर क्लब—परिचय, पृष्ठ ११

पात्रों का वृन्त बनाकर ही उनके द्वारा नवाबों की आराम-तलबी, नाजुक-मिजाजी, नाजुकपन, फिजूल तकल्लुफ करने की आदत, अक्ल का दिवालियापन, बोदमपन आदि का सजीव वर्णन किया है। नवाब साहब को मामूली जुकाम हो गया है। दरबारी लोग निदान में लगे हुए हैं कि जुकाम का कारण क्या हो सकता है। एक साहब पता लगाते लगाते इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बारिश के मौसम में मूली की हवा जो सर्दी का काम करती है वह नवाब साहब को लग गई है। हकीम साहब के सामने तीन बार गश खाने के बाद नवाब साहब पश्चाताप करते हैं—

"हाय, तुमने मुझे पहले क्यों न बताया? तभी मैं कहूँ कि इस कम्बख्त मूली वाले के इधर गुजरते ही मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा कि मेरी छाती पर किसी ने बरफ की सिल रख दी। हाय, अब मैं क्या करूँ? अरे, तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया।"[1]

कहानी-कला और हास्य-विधान—पात्रों में परिवर्तन न होने के कारण सब कहानियाँ एक ही ढर्रे की हैं। मनोरंजन अवश्य होता है किन्तु पात्र कुछ अजीब से लगते हैं मानो वे किसी दूसरे लोक के हों। अतिनाटकीयता द्वारा वस्तु-विन्यास किया गया है। घटनाओं में भी कोई तारतम्य नहीं। हास्य का उद्रेक पात्रों की अतिरंजित घटनाओं द्वारा किया गया है जो कला की दृष्टि से श्लाघनीय नहीं कहा जा सकता।

सुन्दरचन्द्र जोशी

"आज सुबह जब उठा तब बदन टूट रहा था, जैसे खादी का डोरा हो। अस्वस्थ सा हो रहा हूँ। समझ में नहीं आता इतना खाने पर भी बदन कमजोर क्यों है। अडे, गोश्त, घी सब बेकार क्यो जा रहा है। शरीर को अब परिश्रम नहीं करना पडता नौकर से सुना बाहर एक अखबार का सम्पादक प्रतीक्षा कर रहा है। अखबार वाले आज कल बडे हरामखोर हो रहे है। एक सप्ताह हो गया मेरा कहीं फोटो नहीं आया छपकर। आखिर मन्त्री हूँ या मजाक हूँ? साले अभिनेत्रियों के फोटो छापते हैं। अरे हम क्या अभिनेत्रियों से कम हैं। मगर मैंने सोचा आ गया तो ठीक से मिल कर बोल लूं।"[1]

कहानी-कला एव हास्य-विधान—जोशी जी का व्यग्य अत्यधिक कटु है। आलम्बन के प्रति तीव्र घृणा के भाव लेखक के मन में हैं, उसी के कारण हास्य "मुँहफट" हो गया है। उसमें निन्दा की मात्रा अधिक है। इनकी सभी कहानियो में कटुता की मात्रा अत्यधिक हो गई हे। प्रतीत होता है कि लेखक पूर्वाग्रह से लिख रहा है। हास्य का उद्रेक भी अस्वाभाविक घटनाओ द्वारा हुआ है।

शारदाप्रसाद वर्मा "भुशडि"

इन्होने चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी "उसने कहा था" की पैरोडी "चिमिरिखी ने कहा था" शीर्षक से लिखी है। इसी कहानी के नाम पर इन्होंने अपनी पुस्तक का नाम भी वही रखा है। प्रेमचन्द्र जी की "मुक्ति मार्ग", प्रसाद जी की "गुण्डा", चतुरसेन शास्त्री की "दे खुदा की राह पर", सुदर्शन कृत "न्याय-मत्री" आदि कहानियो की भी पैरोडियाँ भी इसमे सग्रहीत है। "उसने कहा था" की पैरोडी को छोड कर बाकी पैरोडियाँ अधिक उत्कृष्ट नही है। "चिमिरिखी ने कहा था" का प्रारम्भ देखिये —

"प्राइमरी मदरसो के मुदर्रिसों की जबान के कोडों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों, लडको तथा लडकियों की बोली का मरहम लगावें। जब छोटे-छोटे स्कूलो में पढने वाले छात्र आपस में गाली-गलौज करते, या एक दूसरे के साथ साला-बहनोई का रिश्ता जोडते हुए नजर आते हैं, तब यहाँ के शिक्षित स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग वर्ग 'आइए बहन जी, कहिए कुँआरी जी, सुनिए भाई जी', इत्यादि मधुवेष्ठित शब्द बोलते हुए,दृष्टिगोचर होते हैं। क्या मजाल,

---

१ मत्री जी की डायरी—पृष्ठ १

एक भी लफ्ज मुंह से निकल जाय। उनका शुद्ध शिष्टाचार ऐसा सरस, सरल और आडम्बरहीन होता है, जैसे छिलका उतारा हुआ केला। उस पर "प्लीज" और "थैंक यू" तो सुन्दरता बढ़ाने में बिजली की लाइट का काम करते हैं।"[1]

कहानी-कला तथा हास्य-विधान—कविता की "पैरोडी" तो हिन्दी में बहुत लिखी गई है किन्तु कहानियों की पैरोडियाँ लिखने का श्री सर्वेश भुसडी जी ने ही किया है। उनकी "पैरोडियों" में यत्र-तत्र अश्लीलता आ गई है। कहानियों मे गति नहीं है बीच-बीच मे अवरोध आ गया है। कथानक शिथिल हो गए है तथा जिस कहानी की वह पैरोडी है उसके समानान्तर वह चल नहीं पाती। हास्य का उद्रेक पात्रों के बेढंगे क्रिया-कलापों से किया गया है जिसमे अस्वाभाविकता आ गई है। स्वस्थ हास्य का सर्वत्र अभाव है।

"मिलिन्द"

"बिल्लो का नकछेदन" आपकी कहानियों तथा लेखों का संग्रह है। आपकी कहानियो के आलम्बन हैं आजकल के ख्याति-प्रिय नेता, ढोंगी समाज-सेवी, तथा-कथित कवि, वैद्य और पेटू। आजकल जयन्तियाँ मनाने का एक रिवाज-सा हो गया है। एक सेठ जी ने एक व्यायामशाला बनवाई है। उनकी "स्वर्ण-जयन्ती" की योजना देखिए —

"खबर उडी है कि आगामी मास में सेठजी की स्वर्ण-जयन्ती पर दीन-बन्धु पार्क में सार्वजनिक सभा में विद्वानों और नेताओं के भाषण होंगे। सेठ जी अभिनन्दन का उत्तर देते हुए भाषण देंगे। इनकी व्यायामशाला के स्वयं-सेवक अंग्रेजी वेषभूषा के खिंचे इनके चित्र को सलामी देंगे, गरीबों को अनाज बाँटा जायगा और उक्त अवसर पर इनकी दानवीरता, धनसम्पन्नता, साहित्य-रसिकता और उदर की भाँति विराट् विद्याव्यसन के, व्यवसाय के, रंग-बिरंगे चित्रों से पूर्ण, दर्शन की एक पचास पेजी पुस्तिका मुफ्त बाँटी जायगी। जिसमें इनके उठने से सोने तक का अब तक के जीवन का सारा हाल दर्ज होगा, जिसका कम्पोजिंग होनोलूलू में हुआ है, छपाई टिम्बक्टू में और जिल्दबन्दी फूल शहर में।"

कहानी-कला और हास्य-विधान—इनकी कहानियों में कथानकता नहीं। कहानी केवल विवरण मात्र ही नहीं है, उसमें चरित्र-चित्रण, तथा कथानक भी आवश्यक है। इनकी कहानियों में घटना-तत्व कमजोर हो गया

१. [illegible] ने कहा था—पृष्ठ [illegible].

है। हास्य भी यत्नज है, स्वाभाविक नही। कही-कही अतिरंजित वर्णन भी मिलता है।

सरयू पंडा गौड़

आपका "कहकहा" शीर्षक कहानी-संग्रह हमारे देखने में आया। आप बिहार के निवासी हैं। इनकी कहानियो में नशेबाजो तथा सनकियो पर व्यंग्य किया गया है। आपकी "मास्टरजी" शीर्षक कहानी में एक ऐसे मूर्ख मास्टर की कहानी जो स्वप्न तो इतने ऊँचे देखता है किन्तु वैसे निरा बुद्धू है। जब इन्सपेक्टर साहब आते हैं तो उसकी क्या दशा होती है? वे इतिहास पढ़ा रहे हैं—

"अकबर का बेटा बाबर जब अपने बाप हुमायूं की यादगार में लाहौर के चौक में कुतुबमीनार बनवा रहा था... इसी बीच दारा के भतीजे शाहजहाँ ने अपनी प्यारी बीबी मोती महल के रहने के लिए आगरे में एक बड़ा खूबसूरत और नामी महल बनवाया और चूँकि इस बहुमूल्य महल के बनवाने में उसके खजाने का धेला-धेला खरच हो गया, इसलिए उसने अपना शाही ताज तक बेच कर इस महल में लगा दिया। इसीलिए उसका नाम पड़ा ताजमहल।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—पण्डा जी की अधिकतर कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से निम्न हैं। इनमें जी० पी० श्रीवास्तव के समान "धौल-धप्पे" का हास्य मिलता है। कल्पित पात्र, ऊटपटाँग घटनाएँ तथा अतिनाटकीय कथोपकथन इनके कहानियो के अंग है। "मुँहफट" हास्य की भरमार है। स्वाभाविकता का सर्वत्र अभाव है।

राहुल सांस्कृत्यायन

"बहुरंगी-मधुपुरी" शीर्षक इनके मनोरंजन कहानियो का संग्रह है। राहुल जी ने मूलत ब्रिटिश शासन के बाद तथा उससे पूर्व की सामाजिक विकृतियो का खाका खीचा है। साथ मे फैशन-परस्ती, छुआछूत आदि विषयो को भी ले लिया गया है। पहली कहानी "बूढ़े लाला" ने मानो पुस्तक की भूमिका का कार्य किया है और दूसरी "हाय बुढापा" में एक ऐसी महिला का चरित्र चित्रण किया गया है जो केवल कृत्रिम शृङ्गार के बल पर अपने यौवन को प्रदर्शित करते रहने का एक अभिनय करती है, परन्तु ऐसा अभिनय जिसमें

१ कहकहा—पृष्ठ ५०

मेजों पर बैठी अन्य नर्तकियाँ उसे व्यंग्य की दृष्टि से देखती हैं। "कुमार दुर्जय" नामक कहानी में सामन्तवाद के ढहते हुये महल का अच्छा खाका खींचा गया है। "महाप्रभु" में एक सन्यासी की पोल खोली गई है।

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—राहुल जी प्रतिभाशाली कलाकार हैं। उनकी कहानियों में बौद्धिक हास मिलता है। स्वाभाविक चरित्र चित्रण के साथ कथोपकथन भी अत्यन्त सजीव है। व्यंग्य मृदुल है, तीखा नहीं।

राधाकृष्ण

ये "चोंच-चोंच बनर्जी-चटर्जी" नाम से हास्य-रस की कहानियाँ लिखते हैं। सामयिक विडम्बनाएँ ही इनका विषय रहा है। "मैं और चपटू" में आज कल की योजनाओं की बाढ़ पर एक तीखा व्यंग्य किया गया है। चपटू नामक चरित्र कल्पनाओं के महल पर महल बनाता है। पहले लेखक बनने की सोचता है, फिर प्रकाशक, फिर मशीन बनाने वाला, अन्त में जब उसकी अपनी सब योजनाएँ असफल हो जाती हैं तब उन्हें सरकार में योजना बनाने का कार्य मिल जाता है। "मगर अब की बार जब ससुराल गया तो चपटू बाबू से मेरी मुलाकात ही नहीं हुई। पूछने पर पता लगा कि वे बड़ी ऊँची नौकरी पाकर दिल्ली चले गए हैं। वहाँ सारे देश की उन्नति और विकास के लिए योजना बना रहे हैं।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—इनकी कहानियाँ उच्च-कोटि की हैं। इनका कथा-शिल्प प्रौढ़ है, चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है। कहानियों का उतार-चढ़ाव अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया है। व्यंग्य बड़ा चुभता है। हास्य का उद्रेक चरित्र चित्रण में बिल्कुल स्वाभाविक रूप में हुआ है। जहाँ हास्य है वहाँ 'विट' है, जहाँ व्यंग्य है वहाँ भी सुरुचिपूर्ण। हास्य-रस की कहानियों में रस एवं कला की दृष्टि से इनकी कहानियाँ उच्च कोटि की कही जायेंगी।

कन्हैयालाल चतुर्वेदी

'हाथी के पाँव' में इनकी कहानियाँ तथा निबन्धों का संग्रह है। इनमें पारिवारिक समस्याओं को लेकर हास्य रस की सृष्टि की गई है। गृहस्थी की [illegible] किस्म की समस्या, दफ्तरों के मनोरंजक अनुभव [illegible]

१ 'हास्य सामयिकी'—पृष्ठ ६

पर "दफ्तर में देर हो गई" का वहाना, ग्रादि कहानी के विपय वनाए गए है। "मुझको ग्रौर न तुझको ठौर" में जव गाँव के दूव वाले से, गली के हलवाई से, डेरीफार्म की दूकान से, शुद्ध दूव मिलने की योजनाएँ ग्रसफल सिद्ध होती हैं तो ग्रन्त में यह निश्चय किया जाता है कि घर में ही गाय पाली जाय। कहानी का नायक नौकर पेशा है, दफ्तर से लौटता है तो घर में क्या स्थिति पाता है'—

"पहले दिन दफ्तर से लौटा तो घर में झगडा हो रहा था। पास वाले किरायेदार के वच्चे को गाय ने सींग मार दिया था। जाकर मैंने मामले को शान्त किया। श्रीमती जी की ड्यूटी शाम को सानी करने की थी। उन्होंने दो दिन तो की, तीसरे दिन उनकी पसली में दर्द हो गया। सानी करना मैंने स्वय प्रारम्भ किया। एक दिन वछडा खो गया। चार घटे में उसका पता लगा। दूसरे दिन सुवह उठते ही पता चला कि गाय गायव है दोस्तों को तो दिल्लगी सूझती है लगे पूछने,"कहाँ से ग्रा रहे हो"। मैंने कहा,"काजी हौज"। मुस्करा कर कहने लगे, "ग्रव तक वहाँ जानवर जाते थे, ग्रव क्या ग्रादमी भी जाने लगे।"[1]

कहानी कला एव हास्य-विघान—लेखक जव स्वय ग्रपनी ग्रालोचना करता है तव उसके एकाँगी होने का भय रहता है तव भी निष्पक्ष ग्रात्म-विश्लेषण करके यह कहा जा सकता है कि इनकी कहानियो में पारिवारिक स्थितियो को हास्य-मय वनाने का प्रयास किया गया है। वाक्-छल, व्यग्य एव स्मित तीनो हास्य के प्रभेदो का प्रयोग किया गया है। जहाँ तक हो सका है लेखक ने यथार्थ ही चित्रण किया है, समस्याएँ ग्रपनी ही लगती हैं, कल्पित नही। भाषा में परिष्कार की ग्रावश्यकता है।

उपसंहार

हास्य-रस की कहानियो के विश्लेषण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कहानियो में भी हास्य-रस पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुका है। कौशिक, राधाकृष्ण एव ग्रन्नपूर्णानिन्द की हास्य-रस कहानियाँ विश्व की किन्ही भी हास्य-रस की कृतियो के सम्मुख रखी जा सकती हैं। चरित्र-चित्रण, कहानी के शिल्प का सर्वांगपूर्ण विकास ग्रव हमें मिलने लगा है। प० रामचन्द्र शुक्ल ने जिस ग्रभाव का ग्रपने इतिहास में सकेत किया था—**"समाज में चलते जीवन के किसी**

---

१ हाथी के पख—पृष्ठ ६

विकृत पक्ष को, या किसी वर्ग के व्यक्तियों की बेढंगी विशेषताओं को हँसने-हँसाने योग्य बनाकर सामने लाना अभी बहुत कम दिखाई दे रहा है।"[1] यह कमी अब पूरी हो गई है। अब हमें राजनैतिक एवं सामाजिक वर्ग के विकृत पक्षों को लेकर लिखी गई अनेक सफल हास्य-रस की कहानियाँ मिलती हैं जो कला एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से परिष्कृत एवं सुसंस्कृत हैं।

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, पृष्ठ ६३६.

: ८ :

उपन्यास साहित्य में हास्य

हिन्दी में उपन्यास का प्रारम्भ भी भारतेन्दु काल से ही हुआ। हम पहले अध्याय में इस बात का वर्णन कर चुके है कि भारतेन्दु काल में जैसी उन्नति नाटको तथा निबन्धो के सृजन में हुई वैसी कथा साहित्य में नही। कहानी और उपन्यास बहुत कम मिलते है। हास्य रस के उपन्यासो का तो प्रारम्भ से ही अभाव रहा है जो अब तक बना हुआ है। डा० रामविलास शर्मा ने इस अभाव का कारण ठीक ही बताया है—**"उपन्यास और कहानियों का विकास जल्दी न हुआ, इसका मूल कारण निबन्धो की लोकप्रियता थी। रोचक निबन्धों में कथाएं भी गढ कर लेखक अपनी कथा-साहित्य वाली रचनात्मक प्रतिभा का वहीं उपयोग कर लेते थे।"**[1]

चरित्र-चित्रण, वस्तु-विन्यास एव कथोपकथन ही उपन्यास के उपकरण माने गये है। हास्य-रस के उपन्यासो में जो विशेष कला अपेक्षित है, वह है हास्य-विधान।

भारतेन्दु-काल में बालकृष्ण भट्ट के उपन्यास "सौ अजान, एक सुजान" में हास्य की अवतारणा हुई है। मुख्यत इस उपन्यास में एक अमीर के बिगडने और अपने एक सच्चे मित्र की सहायता से सुधरने की कथा है। पढे-लिखे बाबुओ की भाषा में अंग्रेजी के प्रयोग पर व्यग्य करते हुए भट्ट जी लिखते है—**"मैं आप लोगों के प्रपोजल को सेकिंड करता हूँ।"** एक स्थान पर लडने वाली औरतो का चित्रण किया गया है—**"हवा के साथ लडने वाली कोई कर्कसा न लडेगी तो खाया हुआ अन्न कैसे पचेगा, यह सोच अपने पडोसियों पर बाण से तीखे और रूखे बचनों की वर्षा कर रही है।"** चरित्र-चित्रण में भी हास्य का पुट मिलता है। बुद्धदास जैन पात्र का चित्रण देखिए —

---

१ भारतेन्दु युग—डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ १३२

"पानी चार चार छान कर पीता था, पर दूसरे की थाली समूची निगल जाता था। डकार तक न आती थी। उमर इनकी चालीस के ऊपर आ गई थी, दांत मुंह में एक भी बाकी न बचे थे, तो भी पोपले और सोठहे मुंह में पान की बीड़ियाँ जमाय, सुरमे की धज्जियों से आंख रंगे, केसरिया चन्दन का एक छोटा सा बेंदा माथे पर लगाय, चुननदार बालाबर अंगा पहन, लखनऊ के बारीक काम की टोपी या कभी लट्टूदार पगड़ी बांध जब बाहर निकलता था, तो मानो ब्रज का कन्हैया ही अपने को समझता था।"

द्विवेदी युग में उपन्यास साहित्य की वृद्धि हुई। हास्य रस के उपन्यासकारों में सर्वश्री जी० पी० श्रीवास्तव, निराला एवं उग्र ही मुख्य हैं।

"लतखोरी लाल' जी० पी० श्रीवास्तव का आत्मचरित शैली में लिखा उपन्यास है। यह उद्देश्यहीन है। कथा-वस्तु भी सुगठित नहीं है। केवल ऊटपटांग पात्रों से असंगत कथोपकथन कराकर पृष्ठों को भरा गया है। जेण्टिलमैनी की धूम, गवने के मजे, ससुराल की बहार, शान की शामत एवं साहीत बिल्ला कूचन नामक उसके पांच अध्याय हैं। 'पी० जी० वुडहाउस" जैसा 'शिष्ट" हास्य यहाँ देखने को नहीं मिलता। प्रारम्भ से अन्त तक अशिष्ट हास्य की भरमार है। संयोगी एवं ढेंगी घटनाओं के बल पर कथावस्तु आगे बढ़ती है। चरित्र-चित्रण अस्वाभाविक एवं असफल हुआ है। अश्लीलता भी प्रचुर मात्रा में मिलती है। पात्रों का वार्तालाप देखिये—

"मंगूमल—कहो बेटा, फूल झड़ रहे हैं?

बाबा ने भी खिलखिला कर कहा—और तुम कहो भतीजे, क्या अपनी अम्मा का दूध पी रहे हो?

गोबरगनेश—अबे तू क्यों तरस रहा है? तेरी भी अम्मा पास ही है। मार मुंह, देखता क्या है? बुढ़ापे में फिर एक दफे जवानी आ जावेगी।

दुर्गी—क्या कहा तूने हरामजादे?

गोबरगनेश—हे, जबान न तोड़ा दिखाओ नहीं ओंठ फोड़ ही दूंगा।

दुर्गी—चल-चल मुंहझोंसा, भला तू क्या बोलने को सकती है।

गोबरगनेश—चलो बाहरी अपने बाप की जोरू।

दुर्गी—चुप छिनाल।

गोबरगनेश—चुप हरजाई।

मुन्नी—दुर लुच्ची ।

गोदवाली—दुर कुत्ती ।"[1]

उक्त अश्लीलता पर प० बनारसी दास चतुर्वेदी की इस राय से हम सहमत है—"हमारी समझ में यह हास्य रस उच्चकोटि का नहीं जिसकी आशा श्रीमान् श्रीवास्तव जी से की जाती है। इसे तो लट्ठमार मजाक कहना उचित होगा ।"[2]

"गगाजमुनी" (१६२०) श्रीवास्तव का यह उपन्यास "लतखोरी लाल" से अच्छा है। इसमें सस्ते प्रेम का हास्यमय वर्णन किया गया है। नायक पहले एक बगालिन नलिनी से प्रेम करता है फिर एक कहारी स्त्री चचल से, फिर अपने एक ईसाइन विद्यार्थी जूलियट से और इसी प्रकार और भी अनेको स्त्रियो से प्रेम करता है। "प्रेम" का हास्यमय वर्णन देखिए—

"हत् तेरे प्रेम की। न जाने किस कम्बख्त का शाप पडा है कि तेरा रास्ता कभी सीधा नहीं रहने पाता। कभी बेचैनी तडपाती है, कभी रुलाई सताती है, कभी बेवफाई रुलाती है, कभी डाह जलाती है, कभी बदनामी जान लेती है और फिर विरह और वियोग तो सत्यानास ही करके छोड़ते है ।"

इनके उपन्यासो में अतिनाटकीयता का दोष सर्वत्र पाया जाता है।

"निराला"

कुल्ली-भाट एव बिल्लेसुर-बकरिहा इनके दो हास्य-रस प्रधान उपन्यास है। ये दोनो उपन्यास जीवन-चरित्र शैली में लिखे गये है। "कुल्ली भाट" में उन्होने अपने मित्र प० पथवारी दीन भट्ट का जीवन-चित्र उपस्थित किया है। इसमें लेखक ने एक बाह्य दर्शक के रूप में प्रचलित प्रशसात्मक ढग से ऊँचा उठ कर कुल्ली से अपना नाता जोडते हुए उन्हें स्वय बोलने का अवसर दिया है। ससुराल के स्टेशन डलमऊ पर निराला जी का कुल्ली से प्रथम परिचय हुआ जब कुल्ली लखनऊ ठाट-बाट में बने-चुने उन्हें शेरअन्दाजपुर पहुँचाने के लिए इक्के पर साथ-साथ बैठे। फिर सास की चेतावनी के विपरीत चलते हुए उन्होने कुल्ली के घर पर पान खाया और एक बार तो गगा में डूब जाने का भी उपदेश दिया। पश्चात्, निराला जी की साहित्यिक प्रगति के साथ कुल्ली के जीवन का सुधारवादी पहलू सामने आता है। कुल्ली ने एक मुसलमानिन को रख लिया, उसकी शुद्धि भी अच्छी कराई, हरिजन पाठशाला

---

१ लतखोरी लाल—पृष्ठ २०३

२ विशालभारत—मई १६२६, हिन्दी में हास्य-रस।

स्थापित की और फिर मरण-काल तक कांग्रेस के कार्य में योग दिया। कुल्ली ससुराल का वर्णन करते हैं —

"सवेरे जब जगा तब घर में बड़ी चहल पहल थी, साले साहब रो रहे थे......ससुर जी खुड्डी में गिर गये थे, नौकर नहला रहा था। घर में तीन जोड़े बैल घुस आये थे। श्रीमती जी लाठी लेकर हाँकने गयी थीं, एक के ऐसी जमायी कि उसकी एक सींग टूट गई ....महरी पानी भरने गई थी, रस्सी टूट जाने के कारण पीतल का घड़ा कुएँ में चला गया था।"[१]

इसके अतिरिक्त "धोती छप्पन छुरी हो रही थी", ऐसे मुहावरों का प्रयोग बराबर मिलता है। एक उपमा देखिये —

"कवि श्री सुमित्रानन्दन जी पन्त को रायबहादुर प० शुकदेव बिहारी जी मिश्र ने जैसे मेरी सास जी ने मुझे भी सौ में एक सौ एक नम्बर दिये है।"

चरित्र-चित्रण प्रशंसनीय तटस्थता से हुआ है। लेखक ने कहीं भी अति-रंजना एवं अतिनाटकीयता का सहारा नहीं लिया। संयोगों एवं दैवी घटनाओं का सर्वथा अभाव है। एक सामान्य चरित्र का उन गुणों के साथ चित्रण करना निराला जी की विशेषता है। घटना-क्रम तथा चरित्र चित्रण के द्वारा ही इनमें हास्य का उद्रेक हुआ है। व्यंग्य भी मृदुल है, विषाक्त नहीं।

"बिल्लेसुर बकरिहा" भी चरित्र-प्रधान उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है। बिल्लेसुर इसका नायक है जिसमें किसी प्रकार की भी असाधारणता नहीं है। इसमें यही एक विशेषता है कि इसने जीवन को निर्विवाद रूप में एक संघर्ष मान लिया है। यह जीवन में पग-पग पर ठोकर खाता है किन्तु उन विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारता। वह जीवन में असफल होकर भी पराजितवादी नहीं है। गाँव वाले उसका उपहास करते हैं किन्तु इस पर भी वह सोचता है—

"क्यों एक दूसरे के लिये नहीं खड़ा होता। जवाब कभी कुछ नहीं मिला। फिर भी जान रहते काम करना पड़ता है, यह सच है।"

—(बिल्लेसुर बकरिहा)

निराला जी की रचनाओं में चरित्र-चित्रण अत्यन्त सन्तुलित हुआ है। लेखक ने कहीं भी पात्रों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की। लेखक

१ कुल्ली भाट—पृष्ठ ५६

की नायक के प्रति तटस्थता ही चरित्र चित्रण को सुन्दर बनाती है। बिल्लेसुर के व्यक्तित्व का मूल्यांकन लेखक ने इस प्रकार किया है—

"हमारे सुकरात के जबान न थी, पर इसकी फिलासफी लचर न थी। सिर्फ कोई इसकी सुनता न था, इसे भूल-भुलैया से निकलने का रास्ता नहीं दिखा, इसलिये यह भटकता रहा।"

—(बिल्लेसुर बकरिहा)

डा० नगेन्द्र ने "बिल्लेसुर बकरिहा" में हास्य-विधान का विवेचन किया है—"बिल्लेसुर बकरिहा में हास्य का निवास प्राय परिस्थिति में नहीं है वरन् वर्णनो अथवा लेखक के अपने संकेत-स्पर्शो मे ही है। अपने वर्णनो और उक्तियों को निराला जी ने प्राय एक साधारण तथ्य को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक सामने उपस्थित कर साधारण और विशेष का अन्तर मिटाते हुए, हास्यमय बनाया है।"[1]

कहीं-कही मामूली सी बात के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवो का बडी सावधानी से वर्णन कर हास्य का सचार किया गया हे मानो उनकी शुद्ध गणना के बिना बात अपना मर्म ही खो बैठेगी। एक उदाहरण लीजिये—

"सास को दिखाने के लिये बिल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे। भोजन करके उठते वक्त हाथ में ले लेते थे और रख कर हाथ-मुँह धोकर कुल्ले करके बकरी के बच्चे को खिला देते थे। अगरासन निकालने से लोटे से पानी लेकर तीन दफे थाली के बाहर से चुवाते हुए घुमाते थे अगरासन निकाल कर टुनिकियाँ देते हुए लोटा बजाते थे और आँखे बन्द कर लेते थे।"

—(बिल्लेसुर बकरिहा)

इसके अतिरिक्त किसी अत्यन्त प्रसिद्ध सामयिक प्रसग से किसी छोटी मोटी घटना का सम्बन्ध बैठा कर वर्णन को हास्यमय बनाया गया है—

"बिल्लेसुर बिना टिकट कटाए कलकत्ते वाली गाडी पर बैठ गए। इलाहाबाद पहुँचते पहुँचते चैकर ने कान पकड कर उतार दिया। बिल्लेसुर हिन्दुस्तान की जलवायु के अनुसार सविनय कानून भग कर रहे थे, कुछ बोले नहीं चुपचाप उतर आए, लेकिन सिद्धान्त नहीं छोडा।"

दृष्टिकोण की तटस्थता "कुल्ली भाट" तथा "बिल्लेसुर बकरिहा" दोनो को हिन्दी उपन्यास साहित्य मे विशेष स्थान दिलाने की क्षमता रखती है।

१. विचार और विश्लेषण—पृष्ठ १६१

द्विवेदी युग में ही एक भिन्न शैली के उन्नायक "उग्र" रहे हैं। "सामाजिक अनाचार" के विरुद्ध जिहाद बोलने वालों में ये अग्रगण्य हैं। "बुधुआ की बेटी," "दिल्ली का दलाल," "चन्द हसीनों के खतूत," "गंगाजमुनी" तथा "शराबी" इनके पाँच प्रमुख उपन्यास हैं जिनमें नगर के चकलों, अनाथालयों, विधवाश्रमों और सेवा-सदनों की पोलें खोली गई हैं और समाज के उन कुम्भीपाकों को अनावृत किया गया है जो चोर-उचक्कों, गिरहकटों, सूदखोरों और पथ-भ्रष्ट नौकरपेशों के अड्डे हैं। इन्होंने सामाजिक विकृतियों का व्यंग्यात्मक वर्णन किया है। "चन्द हसीनों के खतूत" में एक वर्णन देखिए—"चारों ओर डण्डाशाही, ईंटाशाही, छुराशाही, तलवारशाही, औरंगशाही और नादिरशाही का बोलबाला था। धूर्त नौकरशाही, अपवित्र नौकरशाही और इन सब खुराफातों की जड़ नौकरशाही इस समय घूंघट में मुंह छिपाए है।"

"बुधुआ की बेटी" में लेखक ने गुलाबचन्द पात्र का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। वह अछूतोद्धार के बहाने बुधुआ भंगी की लड़की को फँसाने का उपक्रम करता है और एक दलाल को बहकाता है। दलाल उसे लड़की के घर लेजाते हुए रास्ते में कहता है—

"ज़रा जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाइए, शाम होने को आ रही है। देर हो जायगी तो वह मिलेगी भी अन्धेरे का ओढ़ना ओढ़े। वैसी हालत में, ऐं ऐं बाबू साहब! इधर मुड़िए, नाले की ओर नहीं, हमें नगवा नहीं जाना है, हम चल रहे हैं दुर्गाकुण्ड के आगे।"[1]

चरित्रों में अबदुल्ला मन्नो, बुधुआ तथा गुलाबचन्द, हिन्दी उपन्यास के अमर चरित्र हैं। हिन्दी के प्रमुख आलोचकों ने उग्र का उस समय घोर विरोध किया और उन पर समाज को विकृत करने का दोष लगाया। उस समय 'उग्र' ने जो उत्तर उन आलोचकों को दिया उसे हम सर्वथा तर्कसंगत एवं उचित समझते हैं। उन्होंने लिखा—"है कोई माई का लाल जो हमारे समाज को नीचे से ऊपर तक देख कर, कलेजे पर हाथ धर कर, सत्य के तेज से मस्तक तान कर इस पुस्तक के अकिंचन लेखक से यह कहने का दावा करे कि तुमने जो कुछ लिखा है गलत लिखा है। समाज में ऐसी घृणित, गंधाचवाली, काजलकाली तस्वीरें नहीं हैं। अगर कोई हो तो नोल्लाह सामने आवे, मेरे कान उमेठे और छोटे मुंह पर थप्पड़ मारे, मेरे होश ठिकाने करे। मैं उसके

१. मतवाला—जनवरी १९२८, पृष्ठ ८.

प्रहारों के चरणो के नीचे हृदय-पाँवडे डालूँगा, मैं उसके अभिशापों को सिर माथे पर धारण करूँगा, सभाल लूँगा। अपने पथ में कतर-ब्यौंत करूँगा। सच कहता हूँ, विश्वास मानिए—"सौगन्ध औ गवाह की हाजत नहीं मुझे।"[१]

इनका हास्य-विधान भी स्वाभाविक रूप मे हुआ है। व्यग्य तीखा है। उसमे निन्दा तथा घृणा के भाव भरे हुए हैं। आलम्बन के प्रति पाठक की घृणा एव तिरस्कार उभारना, जो लेखक का ध्येय है, उसमें लेखक सफल हुआ है। भाषा परिष्कृत है। वास्तव मे उग्र की भाषा मे जो ओज और धारा-प्रवाहिकता हे वह अन्यत्र दुर्लभ है। अतिशयोक्तियाँ कही कही अवश्य खटकती हैं किन्तु जिन कुत्सित सामाजिक अनाचारो का चित्रण "उग्र" ने किया है उसमे अतिरजना स्वाभाविक रूप से आ गई है। स्वाभाविकता एव अतिरजना का विरोधाभास ही इनकी शैली की विशेषता रही है।

"सेठ बाँकेमल" अमृतलाल नागर का हास्य-रसपूर्ण उपन्यास है। इसमें सेठ बाँकेमल तथा चौबे जी दो प्रमुख पात्र हैं। दोनो पात्र प्राचीन सस्कृति के प्रेमी हैं जो कि समाज के वर्तमान ढाँचे से अप्रसन्न हैं। वे आधुनिक प्रत्येक बात को देखकर चोकते हैं। लेखक ने उन्हे विभिन्न परिस्थितियो मे डालकर हास्य की अवतारणा की हे। "कुल की मर्यादा" एव "प्राचीन सस्कारो की कुण्ठा" इनको सदैव परेशान करती रहती है। यह उपन्यास जीवन चरित शैली मे लिखा चरित्र-प्रधान लघु उपन्यास हे। "डाग्डर मूँगाराम" अध्याय मे सेठ बाँकेमल चौबे जी को लाट साहब की मेमसाहब को जुकाम होने का किस्सा सुनाते हैं और साथ मे मूँगाराम का महत्व —

"भैया, मुँगाराम डाग्डर ऐसा गजब का था कि एक बार लाट-साव को छीके आने लगी सुसरी। वो जागे तो छींकें, और सोवे तो छींके, छिन छिन में ऐसी छीकें सुसरी कि कै महीने में लाटनी साली खुसकैट हो गई। महाराज विलायत से और लदन से और जर्मनी, अमरीका, अफरीका, चीन और सारी दुनिया तक के डाग्डर ही डाग्डर बुलवा लीने विस्ने पौंचे साव मूँगाराम। जाते ही लाटनी की नाक पकडी। दो मिनट देखभाल के मूँगराम ने कही—जरा एक कैंची मँगा सको हो आप ? लाटनी सुसरी खुसकैट हो गई भैयो। विन्ने कही-कहीं नाक तो नही काटेगो यह मेरी ? और लाट साहब भी भैयो, यें ही सोचे कि जो नाक कट गई तो ये नकटी मेम साली को लिए कहाँ कहाँ घूमूँगो

१ हिन्दी-उपन्यास—शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ २१४

.. मूंगाराम ने क्या कीना भैयो, कि नाक मे कैंची डाल कै एक बाल खैंच लीना और सब को दिखा के कही—ये लो भाव, ये छींक निकल आई। बात ऐसी थी कि जब ये सांस लेवे थीं तो बाल भी ऊपर को चढे था इसी से ये छींकें आवे थीं गुसरी।"[1]

इस उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक स्वाभाविक चित्रण हुआ है। भाषा सरल है। सेठ बाँकेमल तथा चौबेजी जैसे चरित्र समाज में नित्य प्रति देखने को मिलते हैं एवं उनकी बातचीत के विषय एवं भाषा भी ऐसी ही होती है जैसी इस उपन्यास में है। हास्य कहीं भी अपहसित नहीं हुआ है। हां, कहीं कहीं घटनाओं को तोड़ने मरोड़ने से अतिशयोक्ति हो गई है जो कि हास्य की उद्भावना के लिए उचित प्रतीत होती है तथा लाट साहब की मेम के जुकाम के लिए सारे देशों के डाक्टरों का एकत्रित करना किन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को जब तक थोड़ा रंग देकर न दिखाया जायेगा तब तक उत्फुल्ल हास्य की अवतारणा नहीं हो सकती।

'काठ का उल्लू और कबूतर" केशवचन्द्र वर्मा का आधुनिकतम हास्य-रस का उपन्यास है। शिवचरन नामक एक व्यक्ति के ड्राइंग रूम में एक काठ का उल्लू रक्खा हुआ है। रात के समय एक कबूतर रोशनदान से उसमें प्रवेश करता है। लेखक ने कबूतर और काठ के उल्लू के वार्तालाप के माध्यम से कथा-वस्तु का विस्तार किया है। यद्यपि ये शैली "किस्सा तोता मैना" के रूप में हमारे यहाँ बहुत वर्षों से विद्यमान है। अन्तर केवल यह कि जबकि किस्सा तोता मैना में सच्चे प्रेम की कथाओं का वर्णन है, "काठ के उल्लू और कबूतर" में आधुनिक समस्याओं का चित्रण है, किसी एक चरित्र का चित्रण नहीं। यहाँ शासन और सरकार का मजाक है जो कहीं लाट, पीटर आदि की [illegible] के नाम की जो बातें आई हैं, उनका सारा [illegible] गया है। [illegible] डेविड, पीटर आदि जिस तरह [illegible] [illegible] है [illegible] होते हैं। [illegible] पीटर ने लिखी है —

"मेरे दोस्त पीटर! तुम्हें यह जान कर खुशी होगी कि टेवल ने भी जल्वादी होना स्वीकार कर लिया है। मैंने यह तय कर लिया है कि अब मैं [illegible] जाति की [illegible] के लिये अपना जीवन दे दूँगा। मुझे यह दुनिया

१. सेठ बाँकेमल—पृष्ठ ५८-५९

में किस चीज् से मुहब्बत नहीं है और अब से मैं अपने को लकडी जाति का एक सेवक ही मानूगा। और ए साथी पीढे, अपने जडवादी होने की खुशी में मैंने एक रेशमी टेबुल-क्लाथ फाड दिया है और मालिक की उँगली से वह खून निकाल लिया है जो उसने लकडी जाति के लोगों से चूसा था।"[1]

इसके अतिरिक्त "आदर्श गुरु और वद्ज़ात चेले", "कपूत वेटे की दास्तान" आदि अध्यायो में मनोरजक कथाओ द्वारा हास्य का उद्रेक हुआ है। कथा का विकास स्वाभाविक रूप से नही हुआ है। हास्य भौडा है, उसमें स्थूलता है कोमलता नहीं। सर्वत्र सयोगो तथा दैवी घटनाओ का सहारा लिया गया है। चरित्र-चित्रण भी स्वाभाविक नही हो पाया। कथोपकथन अवश्य रमणीयता लिए हुए हैं।

"चाँदी का जूता" विन्ध्याचलप्रसाद गुप्त का हास्यरसात्मक लघु उपन्यास है। इसमें घूंसखोरो, रामराज्य की व्यर्थ दुहाई देने वालो, पाकिट-मारो आदि असमाजिक व्यक्तियो पर व्यग्य वाण चलाये गये है। वर्तमान समाज में हो रही वेईमानियों का वर्णन नारद जी स्वर्ग में विष्णु भगवान से करते है जो अपराधियो को उचित दण्ड की व्यवस्था करते हैं। चोर-वाज़ार सम्मेलन, स्वर्ग की गुफ्तगू, टिकट खरीदने का दृश्य, परमिट पथियो का जीवन तथा नारद जी की व्यस्तता सब कुछ इस उपन्यास में प्राप्त किया जा सकता है। चोर-वाज़ार सम्मेलन में सब अपना वक्तव्य देते हैं। यूनियन वोर्ड के प्रेसी-डेण्ट प्रसन्नता से कहते है—

"महातपस्वी जी! मैं सडकों की मरम्मत, नालियों और कूडों की सफाई से अपनी तिजोरी भरने का विशेष ध्यान रखता हूँ। टैक्स बढ़ाने में मेरा सामना कोई प्रेसीडेण्ट नहीं कर सकेगा।"[2]

इसमें अतिनाटकीयता एव अतिरजता अत्यधिक है। हास्य "मुँहफट" है। अस्वाभाविक वर्णनो द्वारा अपहसित हास्य का उद्रेक किया गया है। अश्लीलता भी यत्र-तत्र दिखलाई पडती है। हास्य का विधान भी निम्नकोटि का है।

"मिस्टर तिवारी का टेलीफोन" सरयूपण्डा गौड का लिखा हुआ हास्य-रस का उपन्यास है। वीस टेलीफोन वार्ताओ द्वारा इस उपन्यास की कथा-वस्तु का निर्माण हुआ है। मस्ते प्रेम, मेहमानो की परेशानी, धर्म-गुरुओ

---

१ काठ के उल्लू और कबूतर—पृष्ठ ४५

२ चाँदी का जूता—पृष्ठ ६९

गुरुओं की पोल, चन्दा बटोर कर हजम कर जाने वालों की समस्या, सिनेमा संसार की विशेषताएँ आदि का खाका खींचा गया है। इसके प्रमुख पात्र तिवारी जी तथा उनकी धर्मपत्नी हैं। पारिवारिक वार्तालापों के माध्यम से समस्याओं का विवेचन किया गया है। घटनाएँ कम हैं। कथोपकथन अधिक हैं। मेहमानों के बारे मे एक स्थान पर तिवारी जी कहते हैं—

"उस दिन हमारे घर घोर दुर्भाग्य से कुछ मेहमान सज्जन आ गये थे। ये मेहमान सज्जन क्या बला हैं और इनके शुभागमन से कैसी दुर्गति घर-वालों को उठानी पडती है, इसको हालत उस गरीब से पूछो जिनका घर महीने में पन्द्रह बार इन भलेमानसों के कदम-मुबारक से आबाद नहीं बर्बाद होता है। मेहमान क्या आये गरीब की शामत आयी। दोनों जून पराठों का कचूमर निकल जाता है और मेहमान भी ऐसे ब्रह्मपिशाच होते हैं, जहाँ पहुँचे कि फिर उसका पिण्ड काहे को छोड़ेंगे, जब तक उसे भली तरह तबाह न कर दें।"[1]

इनके वर्णनों में कलात्मक हास्य का निवास नहीं है। इनका हास्य जी० पी० श्रीवास्तव के हास्य की तरह 'मुंहफट' है। प्रारम्भ से अन्त तक अतिनाटकीयता व्याप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि आप जी० पी० श्रीवास्तव से अधिक प्रभावित हैं। उनकी छाप इन पर सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। लम्बे लम्बे कथोपकथन नीरस हो गए हैं। अतिरंजित एवं अपहसित हास्य ही सर्वत्र मिलता है। कहीं-कहीं तो कुरुचि-पूर्ण हास्य के भी दर्शन होते हैं। अस्वाभाविक वर्णन एवं अस्वाभाविक परिस्थितियों की भरमार है। यथार्थ चित्रण का सर्वत्र अभाव है। स्वाभाविक चित्रण तो नाम लेने को नहीं मिलता।

"नवाब नटखन" मस्त का हास्य-रस का उपन्यास है। यह चरित्र-प्रधान है। नवाब नटखन की मूर्खताओं का हास्य-मय वर्णन है। उनके मित्र उनकी मूर्खता का लाभ उठाते हैं तथा मनमाना घर भरते हैं। लोग उनको छोटी रोगन की चीजें इत्र, बनारस अर्थात् दामों में दे जाते हैं और वे उनकी चालाकियों को समझ भी नहीं पाते। एक वर्णन देखिए—

"नवाब साहब पं० राधेश्याम को एक कमरे में ले गए, जो फर्नीचर से खूब सजा हुआ था। नवाब साहब ने एक कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए कहा—"देखिये दोस्त! यह कुर्सी मैंने अभी-अभी मंगवाई है। ऐसी इसकी यह

१. मिस्टर तिवारी का टेलीफोन—पृष्ठ ६

है कि इस पर बैठे-बैठे ही चारो तरफ घूम जाइए, आपको क़तई उठाना न पड़ेगा।"[1]

साधारण वस्तु को असाधारण महत्व की बताकर हास्य उद्रेक किया गया है। हास्य-विधान सुन्दर हुआ है। कथानक सुगठित है। कथोपकथन सजीव है। नवाब लटकन का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक हुआ है। वह मनोवैज्ञानिक भी है और यथार्थ भी।

"गुनाह बेलज्जत" द्वारका प्रसाद एम० ए० का हास्य-रस का उपन्यास है। पी० जी० वुडहाउस का अधिक प्रचलन एवं ख्याति का प्रभाव लेखक पर पड़ा है जो कि मुखपृष्ठ के, "जिसे पी० जी० वुडहाउस ने नहीं लिखा", वाक्य से स्पष्ट है। इसका नायक वर्मन है जो, जहाँ तक खाने, कपड़े और खर्चे का सम्बन्ध है, वह अपने परिचितो की हर चीज़ को अपनी समझता है और सदा एक न एक नयी स्कीम लेकर अपने मित्रो की आँखो मे चकाचौंध उत्पन्न कर देता है। ऐसी ही एक स्कीम बी० बी० सी० अर्थात् "बैटर-ब्रीडिंग कालोनी" है। वर्मन का उद्देश्य है कि "बी० बी० पी०" के द्वारा इन्सान की नसल को बेहतर बनाया जाय। नीला उनकी प्रेमिका है। प्रेम का चित्रण देखिये—

"शेखर ने कहा—आपने मेरा मतलब समझा नहीं। यह आज की बात है। आप तो अपने आदमी हैं, आप से क्या छिपाऊँ? इसके पहले कम से कम पन्द्रह मर्तबा प्रेम कर चुका हूँ। लेकिन हर बार पाया, वह मेरी भूल थी। लेकिन इस बेर मेरे अन्दर जो हो गया है वह असली चीज है। मैंने कहा—तो आप नीला से प्रेम करने लगे हैं, इतनी ही देर में?"

"प्रेम करने नहीं लगा हूँ, हो गया है। नीला पर मेरी दृष्टि पड़ी और मैं चारो खाने चित्त हो गया, मानो किसी ने पीछे से जुजुत्सका का दाँव मारा हो।"[2]

इसमें "स्मित हास्य" का प्रस्फुटन सुन्दर हुआ है। कथोपकथन सजीव है कथानक में प्रवाह है। प्रारम्भ से अन्त तक उपन्यास रोचक है। वर्मन का चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है। घटना-वैचित्र्य एवं चरित्र-चित्रण दोनो ही दृष्टियो से यह उपन्यास सुन्दर है।

---

१ नवाब लटकन—अरुण, पृष्ठ ५४

२ गुनाह बेलज्जत—पृष्ठ ९६-९७

"बेढब बनारसी" की "मिस्टर पिगसन की डायरी" को भी हास्य-रस के उपन्यास की श्रेणी में लिया जा सकता है। मिस्टर पिगसन एक मिलिटरी के अफीसर हैं वे हिन्दुस्तान के विभिन्न उत्सवों में जाते हैं, कवि सम्मेलन देखते हैं, ब्याह शादियाँ देखते हैं तथा उनका हास्य-मय वर्णन करते हैं। एक दिन वे जंगल में घोड़े पर जा रहे थे। एक व्यक्ति पालकी में अपनी स्त्री को विदा करा के ले जा रहा था। जैसा कि गांवों में आम रिवाज है, लड़कियाँ ससुराल जाते समय रोती जाती हैं। मिस्टर पिगसन ये समझते हैं कि कुछ व्यक्ति एक लड़की को जबरदस्ती कहीं ले जा रहे हैं इसलिए वह रो रही है। वे उस लड़की के पति को धमकाते हैं और अन्त में उन्हें जब पता लगता है कि वह लड़की तो अपने पति के साथ ससुराल जा रही है तो स्वयं लज्जित हो कर वहाँ से चले जाते हैं। इनके वर्णन रोचक हैं। सामाजिक एवं साहित्यिक विद्रूपताओं पर मृदुल व्यंग्य किया गया है। लेखक ने जो माध्यम चुना है वह श्लाघ्य नहीं है। एक विदेशी द्वारा अपना मजाक बनवाना हमारी समझ में नहीं आता चाहे वह काल्पनिक ही क्यों न हो। हम इसे असन्तुलन समझते हैं साथ ही अब यह कथानक असामयिक भी हो गया है।

उपसंहार

हास्य-रस के उपन्यास साहित्य के विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे यहाँ इनका नितान्त अभाव है। "डिकिन्स" के "पिकविक पेपर्स", "स्विफ्ट" के "गुलीवर ट्रैवल्स" जैसे हास्य-रस के वृहत उपन्यास यहाँ दूर की वस्तु दिखाई देते हैं। "कुल्ली भाट' एवं 'बिल्लेसुर बकरिहा' को छोड़ कर अन्य उपन्यास सन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते। पी० जी० वुडहाउस सा प्रतिभाशाली हास्य उपन्यास लेखक हिन्दी में कब होगा, इसकी अभी कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती। हास्य-रस के उपन्यासों का जैसा उन्नत रूप विदेशी साहित्य में मिलता है वैसा यहाँ नहीं। किन्तु पिछले बीस वर्षों में जो उपन्यास लिखे जा रहे हैं यद्यपि उनमें इतनी कलात्मक प्रौढ़ता नहीं आती किन्तु वे इस अभाव की पूर्ति अवश्य करते हैं। यदि यह प्रगति मन्द न हुई तो भविष्य में हम उच्चकोटि के हास्य-रस के सृजन की आशा कर सकते हैं।

: ६ :

निबन्ध साहित्य में हास्य

निबन्ध गद्य की वह छोटी रचना है जिसके बन्धान में कसाव हो। निबन्ध का साहित्यिक रूप भारतेन्दु काल में स्थिर हुआ। इनका प्रचार साप्ताहिक एव मासिक पत्र-पत्रिकाओ द्वारा हुआ। भारतेन्दु काल से पूर्व की गद्य रचनाओ को निबन्ध की कोटि में नही रखा जा सकता। ये रचनाएँ धार्मिक कथा-वार्ताओ, काव्य-शास्त्रो, वार्ताओ के रूप में मिलती है जिनका कोई व्यवस्थित रूप नही मिलता। भारतवर्ष में हिन्दी-भाषियो की नई शिक्षा तथा अग्रेजी साहित्य से सम्पर्क निबन्ध रचना के सूत्रपात्र करने के दो प्रमख कारण थे।

निबन्ध-साहित्य की अधिक समृद्धि के मूल में एक प्रधान कारण और भी है वह है भारतेन्दु काल के लेखको की अपने पाठको से निस्सकोच भाव मे बातचीत करने की प्रवृत्ति। "**ले भला बतलाइए तो आप क्या हैं ?**" शीर्षक बातचीत निबन्ध को छोडकर साहित्य के और किसी अग में सम्भव नही थी। तत्कालीन लेखको को सन्तोष केवल तटस्थता से अपने पाठक से बातचीत करने में ही नही होता था वरन् वे उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध भी स्थापित करना चाहते थे। वे उससे मित्र की भाँति घुल मिल कर अपनी बात समझाना चाहते थे। इसीलिए भारतेन्दु युग में निबन्धो का सृजन सबसे अधिक हुआ।

निबन्धों का वर्गीकरण

प्रधानत निबन्ध का वर्गीकरण चार भागो में किया जाता है—(१) विचारात्मक, (२) भावात्मक, (३) विवरणात्मक और (४) आत्म-व्यजक। प्रस्तुत विवेचन मे हमारा सम्बन्ध उन्ही निबन्धो से है जो हास्य-रस पूर्ण है, अतएव हमने हास्य-रस के निबन्धो का वर्गीकरण उपरोक्त लक्ष्य को सम्मुख रख कर इस प्रकार किया है —

(१) हास्य-प्रधान निबन्ध अर्थात् वे निबन्ध जिनका उद्देश्य एक मात्र पाठकों का मनोरंजन करना हो।

(२) व्यंग्य-प्रधान निबन्ध अर्थात् वे निबन्ध जिनका उद्देश्य व्यक्तिगत सामाजिक एवं राजनैतिक विद्रूपताओं पर व्यंग्य करके उनकी भर्त्सना एवं उनका सुधार करना हो।

हास्य-विधान की दृष्टि से श्लेष एवं वक्रता का प्राचुर्य इन लेखों में मिलता है। शुद्ध हास्य का सृजन, आलोचना तथा आक्षेप के अतिरिक्त व्यंग्य के दोनों भेद मिलते हैं—मृदुल व्यंग्य एवं तीखा व्यंग्य।

सृष्टि-क्षेत्र की दृष्टि से व्यक्ति, समाज, राजनीति सभी व्यंग्य के विषय बनाये गए हैं। साधारण से साधारण वस्तु के अतिरंजित चित्रण द्वारा भी अनेक गूढ़ समस्याओं पर लुक-छिप कर व्यंग्य किया गया है। संप्रदाय धर्म, उच्च वर्गों के स्वार्थ, शोषक अधिकारियों द्वारा शोषण नेताओं की पोल, साहित्यिक डिक्टेटरशाही आदि सभी पर चोट की गई है।

मानसिक अवस्थान की दृष्टि से देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन लेखकों के मन में एक घुटन थी और वह चाहती थी निकलना। ब्रिटिश शासन में खुशामदियों का बोलबाला था, धार्मिक ठेकेदारों की तूती बोलती थी, प्रेस एक्ट का भूत हरदम सिर पर सवार रहता था, हास्य एवं व्यंग्य के सहारे इन लोगों ने अपने मन का असन्तोष प्रकट किया। द्विवेदी युग में साहित्यिक भाषा एवं व्याकरण को लेकर हास्य एवं व्यंग्यमय लेख लिखे गए। 'अनस्थिरता" शब्द को लेकर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं बालमुकुन्द गुप्त में जो वाद-विवाद हुआ था उसमें हास्य एवं व्यंग्यमय शैली ही अपनाई गई थी। आधुनिक युग में भी राजनैतिक एवं सामाजिक असंगतियों को विषय बना कर अनेक हास्य एवं व्यंग्यमय लेखों का सृजन हो रहा है।

शैली की दृष्टि से हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध भावात्मक भी हो सकते हैं तथा विचारात्मक भी हो सकते हैं। इनमें शब्दों का चुनाव तथा अर्थ अलग-अलग विशेषताएँ रखते हैं। शब्द का बाहरी आकार और होता है किन्तु प्रक्रिया से जो अर्थ निकलता है वह वास्तविक अर्थ नहीं होता। ऊपर से बड़ा मीठा लगता है पर खाने में तीखा स्वाद देता है। व्याज-स्तुति एवं व्याज-निन्दा इस शैली के प्रधान रूप होते हैं। शब्दों की वक्रता ही चमत्कारिता की आत्मा बन गई मानो है।

व्यग्य-शैली के तीन रूप हो सकते हैं—परिहासपूर्ण, तीखा एव श्लेषात्मक। परिहास-पूर्ण शैली मे शब्द कम मूल्य के प्रयोग किए जाते हैं। इस शैली में छेड-छाड अधिक मिलती है, गम्भीरता कम। श्लेषात्मक अर्थ इसमे नही रहता। इससे केवल मनोरजन किया जा मकता हे अन्य किसी उद्देश्य की पूर्ति नही हो सकती।

तीखा रूप वह होता हे जिममे कठोर, चुभीले तथा तीखे शब्दो का प्रयोग होता हे, अन्य के विश्वासो, आस्थाओ, विचारो पर चोट पहुँचाना, तानो तथा उपालम्भ की बोछार करना होता है।

श्लेषात्मक शैली मे भाषा की लक्षणाशक्ति प्रधान होती है। सीधे सादे शब्दो में व्यापक अर्थ भर देना, परम्पराओ, विचारो और आस्थाओ को ठोकर मारना, पर गुदगुदा कर, मीठी चुटकियाँ लेकर, नोच खसोट कर नही। "यह शैली ही यथार्थ रूप में "व्यग्यशैली" कहलाने का अधिकार रखती है। इसी में लेखक के मानसिक सन्तुलन का पता चलता है। इसमें प्रौढता की गम्भीरता भी रहती है और जवानी की मस्ती और छेडछाड भी। इसका प्रभाव भी अमिट होता है। बडी से बडी बात कह दी जाय, विरोधी भी मुस्करा कर बधाई दे। समाज, साहित्य, नैतिकता, शासन—किसी पर भी व्यग्य शैली में आक्रमण किया जा सकता हे। बडे तर्कों, दार्शनिक बहसों और प्रमाणों से यह काम नहीं निकलता जो इस शैली की रचनाओं से निकलता है।"[1]

सच तो यह है कि भारतेन्दु काल मे जिस व्यग्य-शैली ने जन्म लिया, वह द्विवेदी युग मे पल्लवित हुई तथा आधुनिक युग मे पुष्पित होकर मनोरजन ही नही कर रही हे वरन् समाज-सुधार की दिशा मे इसका योग कम महत्व-पूर्ण नही रहा।

भारतेन्दु-युग के प्रमुख निबन्धकार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व मे निबन्धकार के सच्चे गुण विद्यमान थे। उनके व्यग्य शैली में लिखे गये निबन्धो मे "आप ही तो हैं", "ककड-स्तोत्र", "पाँचवे पैगम्बर", "स्वर्ग मे विचार सभा का अधिवेशन", "जाति-विवेकिनी सभा" आदि मुख्य हैं। इन लेखो मे राजनीति, व्यक्ति एव समाज सभी व्यग्य के विषय बनाये गये हैं। हास्य-प्रधान लेखो मे जिनका उद्देश्य केवल

१ निबन्ध और निबन्धकार—जयनाथ नलिन, पृष्ठ ३५

मनोरंजन करना है, "आप ही तो हैं" महत्वपूर्ण है। लेख के शीर्षक के नीचे एक गधे की तस्वीर है और फिर लेख प्रारम्भ होता है—

"आप ही तो हैं क्या इसमें कुछ सन्देह है? सावन के अन्धों को हरियाली छोड़ कर और कुछ थोड़े ही सुझाई पड़ता है। अजी बहुत ही दुबले हो गए हैं सावन है न? ...... पर सहनशील बड़े हैं आप ही न हैं बिना आप के इतनी कौन सहे? और फिर आपके कोई दूसरा हो तो, कुछ कहा जाय—यहाँ तो साक्षात आप ही हैं।"[1]

इसमें व्याज स्तुति के माध्यम से शुद्ध हास्य की सर्जना की गई है। "लेवी प्राण लेवी" में राजनैतिक व्यंग्य है। इसमें रईसों को जो लार्ड मेयो के दरबार में आये थे, आलम्बन बनाया गया है। रईसों की भीरुता एवं अव्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं—

"लार्ड साहिब को "लेवी" समझ कर कपड़े भी सब लोग अच्छे पहिन आए थे पर वे सब इस गरमी में बड़े दुखदाई हो गए। जामे वाले गरमी के मारे जामे के बाहर हुए जाते थे, पगड़ी वालों की पगड़ी सिर को बोझ सी हो रही थी और दुशाले और कमख्वाब की चपकन वालों को गरमी ने अच्छी भाँति जीत रखा था... सब लोग इस बंदीगृह से छूट-छूट कर अपने घर आए। रईसों के नम्बर की यह दशा थी कि आगे के पीछे, पीछे के आगे, अन्धेर नगरी हो रही थी। बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा। ये बिचारे तो मोम की नाव हैं चाहे जिधर फेर दो। राम—पश्चिमोत्तर देश वासी कब कायरपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी।"[2]

'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन' एक कल्पनात्मक लेख है। इसमें भी हास्य प्रधान है और व्यंग्य प्रच्छन्न, सूक्ष्म तथा गहरा है। इसमें तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया गया है। इस लेख में भारतेन्दु की उदार भावना लक्षित होती है। "जाति विवेकिनी सभा" एक सामाजिक व्यंग्य है। इसमें जाति के पंडितों पर कटु व्यंग्य किया गया है। "पाँचवें पैगम्बर" में इस नगर की स्थिति पर व्यंग्य है। [illegible] के बहाने [illegible] और [illegible], धर्मविश्वास तथा कुरीतियों पर चोट करते हैं। शैली की दृष्टि से इनमें सामासिक शैली और व्यास शैली के दर्शन होते हैं। इनके निबंधों की भाषा

१. हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका—सन् १८७४, खण्ड १ संख्या ६ पृष्ठ ३८

२. कविवचनसुधा—खण्ड ७, नम्बर ४ [illegible] १४ सन् १८७०

में कही शब्द क्रीडा या चमत्कार की प्रवृत्ति दिखाई देती है तो कही मुहावरो की बंदिश तथा चलती भाषा की छटा दृष्टिगोचर होती है। अँग्रेजी के तथा उर्दू के शब्दो का भी इन्होने यथास्थान प्रयोग किया है।

बालकृष्ण भट्ट ने भी असाधारण तथा विचित्र विषयो पर मनोरजक लेख लिखे। "पुरुष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर हैं", "ईश्वर क्या ही ठठोला है", "नाक निगोडी भी बुरी बला है", "भकुआ कौन है" तथा 'खटका" आदि इनके शीर्षक हैं। "खटका" शीर्षक लेख का एक अश देखिए —

"स्कूल में मास्टर साहब साक्षात् यमराज के अवतार, घर में माँ बाप की घुडकी और झिडकी का खटका। बरसवें दिन परीक्षा और दरजा चढ़ाये जाने का खटका। कुछ याद नहीं है, बिना इम्तिहान दिये बनता नहीं। फेल हुए तो अपने साथियों में आँख नीची होती हैं, साल भर तक किताब के साथ लिपटे रहे, हिस्टरी याद है तो मैथेमैटिक्स का खटका है। खैर, किसी तरह इम्तिहान दे देवाय फारिग हुए अब तो एक नम्बर कम रहने का खटका रहा।"[१]

व्यग्य-प्रधान लेखो में सामयिक कुरीतियो पर व्यग्य किये गये हैं यथा "पुरातन तथा आधुनिक सभ्यता", "अकिल अजीरन" "दिल बहलाव के जुदे-जुदे तरीके" शीर्षक लेख का एक उदाहरण देखिए —

"कोई कोई ऐसे मनहूस भी हैं कि फुरसत के वक्त किसी अन्धेरी कोठरी में हाथ पर हाथ रक्खे पहरों तक चुपचाप बैठे रहने से दिल बहलाव हो जाता है। बाज बाज नौसिखिये नई रोशनी वाले जिनका किया धरा आज तक कुछ नहीं हुआ, मुल्क की तरक्की के खब्त में आय आज इस सभा में जाय हडाकू मचाया कल उस क्लब में जा टाँय टाँय कर आये। दिल बहलाव हो जाय। इन्हीं में कोई कोई बाऊधप्प गुरूघटाल किसी क्लब या समाज के सेक्रेटरी या खजानची बन बैठे और सैकडो रुपया वसूल कर डकारने लगे। भाँडों की नकल, सवारी की सवारी जनाना साथ, आमदनी की आमदनी, दिल बहलाव मुफ्त में।"[२]

भट्ट जी का व्यग्य और हास्य शिष्ट तथा सयत है। इनकी शैली सस्कृत-निष्ठ रही है किन्तु हास्य-प्रधान निबन्धो में "बाऊधप्प", "गुरुघटाल", "नौसिखिए" ऐसे शब्दो के प्रयोग से हास्य की सृष्टि की गई है। इन्होने "हिन्दी

१ भट्ट निबन्धावली—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृष्ठ १४३
२ भट्ट निबन्धावली—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृष्ठ १७

प्रदीप" के माध्यम से निबन्ध-साहित्य की समृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया। ये चुने-चुने शब्दों का प्रयोग करते हैं व्यर्थ का तूल नहीं, बांधते। इनकी भाषा प्रसंग के अनुसार चलती है। शैली की प्रभावात्मकता स्पष्ट है। वर्णन तथा विवरण प्रधान निबन्धों में चित्रांकन बहुत बड़ी सफलता है। देश की दशा देख प्राण तिलमिला उठते हैं। अवसर तलाश करके भी विदेशी शासन पर चोट करते हैं, समाज द्रोहियों और राष्ट्रीय-विरोधियों पर व्यंग्य बाणों की बौछार करते रहते हैं।

भट्ट जी ने हास्य-सृजन के हेतु निबन्धों की एक नई शैली को जन्म दिया था वह था दवाइयों के नुस्खों के रूप में व्यंग्य करना। "विज्ञापनों का शिवनेगाह महाविज्ञापन" शीर्षक से "सभ्यता बट्टी" का नुस्खा देखिए—

"कोई कैसा भी असभ्य हो नीचे लिखे अनुसार एक महीना लगातार इसके सेवन से सभ्य हो जायगा, अंगरेजी कपड़ा पहिने, हैट और चश्मा लगावे। इंगलिश क्वाटर में रहे। जहां तक बने अंगरेजी शब्दों का व्यवहार करे। घर वाली को साथ ले सांझ को बाहर हवा खाने जाय। खूब शराब पिये। अपने को हिन्दू कहते शरमाय। मूल्य एक डिब्बी एक बाइबिल।"[1]

स्थान संकोच के कारण अधिक उदाहरण देने में असमर्थ हैं किन्तु "मैम्बरी प्राश" का नुस्खा संक्षेप में दे देने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते—

"मेम्बरी-प्राश—यह एक आसव शरबत है। इसको एक "टैम" लेट रोज पी लेने से कौंसिल की मेम्बरी अथवा म्यूनिस्पल मेम्बरी आसानी से मिल सकती है तीनों हिक्मतों के गुण हैं और ये जुज में है...कलक्टर साहब की हां में हां का सत्त तीन पाव, लोगों में प्रतिष्ठा और आदर का आदर पानी, अवधू अधूरा जगह-दो सेर—हैड टैक्स और चुंगी का स्वारस्य ५ छटांक, मेम्बरों की आपस की "पारटीफीलिंग" का गूदा सवा सेर, इलेक्शन के समय वोट देने वालों की खुशामद और पैगाम का बुरादा ६ माशे, एक कराबे का दान,—वोट न आने से मेम्बरों के नाकामयाब होने वाले पर उदासी।"[2]

प्रताप नारायण मिश्र की रग रग में विनोद भरा हुआ था। ये मूल रूप में हास्य-प्रधान लेख लिखने के लिए प्रसिद्ध थे। ये 'ब्राह्मण' पत्र के

---

१. हिन्दी प्रदीप—जिल्द २८, संख्या ४, अप्रैल १९०६, पृष्ठ २३.

२. हिन्दी प्रदीप—जिल्द २८, संख्या ४, अप्रैल १९०६ पृष्ठ २३

सम्पादक थे जो हास्य-रस प्रधान था। ये फक्कड तथा मौजी जीव थे। इनके पत्रो में साधारण सूचनायें भी हास्य-मय निकलती थी जिससे इनकी हास्य-प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। ग्राहको को बारम्बार चेतावनी देने पर भी वे जब चन्दा नही भेजते थे तो आप लिखते हैं—

"बस बाँएँ हाथ से दक्षिणा रख दीजिए या ऋषि और पित्रों को जलदान करने के लिए महीना भर तक यो ही सब बैठे रहिए।"[१]

इनके हास्य-रस पूर्ण निबन्धो में "घूरे के लत्ता बिने, कनातन के डौल बाँधे," "भौं", "तिल","होली," "आप", तथा "और" है। इनमें सामयिक विषयो पर कटाक्ष किए गए है। इनके निबन्धो में श्लेष तथा कहावतो का प्रयोग अत्यधिक मिलता है तथा उन्ही से हास्य का सृजन किया गया है। श्लिष्ट भाषा का एक उदाहरण देखिये—'जब जड वृत्त आम बौराते हैं तब आम खास सभी के बौराने की क्या बात है।" "भौंह" शीर्षक लेख में मनोरजन के साथ शिक्षा भी मिलती है—

"यद्यपि हमारा धन, बल, भाषा इत्यादि सभी निर्जीव हो रहे हैं तो यदि हम पराई भौंहें ताकने की लत छोड दें, आपस में बात बात पर भौंहें चढाना छोड दें, दृढ़ता से कटिबद्ध होके वीरता से भौंहे तान के देश-हित में सन्नद्ध हो जायें, अपने देश की बनी वस्तुओं का, अपने धर्म का, अपनी भाषा का, अपने पूर्व पुरुषो का रुजगार और व्यवहार का आदर करें तो परमेश्वर हमारे उद्योग का फल दे।"

विदेशी शिक्षा तथा विलायत-यात्रा के बारे में प्रतापनारायण मिश्र उदार नही थे। "पढे लिखो के लक्षण" शीर्षक व्यग्य-प्रधान लेख में उन्होने फैशन-परस्तो की व्याज-स्तुति की है—

"कपडे ऐसे कि रामलीला के दिनो में सिर्फ काले चेहरे ही की कसर रह जाय, इस पर भी उनमें कोई देशी सूत न हो यदि हिन्दुस्तानी के हाथों से लिये भी न गये हों तो और अच्छा। भाषा ऐसी कि सस्कृत का शब्द तो कान और जबान से छू न जाना चाहिए। हिन्दी से इतनी लाचारी है कि आया गया इत्यादि शब्द नहीं बच सकते तथापि खास खास बातें अंग्रेजी अथवा टूटी-फूटी अरबी की ही हों। हां कोई दाम पूछ बैठे तो झकमार के राम रहीम आदि के

१ ब्राह्मण—कानपुर, १५ नवम्बर १८८३, पृष्ठ १२

साथ दत्त, प्रसाद, गुलाम आदि जोड़ के मुंह पर लाना पड़ता है पर इनमें अपना वश क्या है? यह पिता की बेवकूफी है।"[1]

प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों में विषय की प्रधानता के स्थान पर व्यक्तित्व की प्रधानता है। उन्होंने साधारण से साधारण विषय को अत्यन्त रोचक शैली से लिखा है। उनके व्यंग्य वैयक्तिक तथा तीव्र हैं। उन्होंने व्यंग्य से घरेलू वातावरण की सृष्टि की है।

उन्होंने भी अरबी-फारसी तथा अँग्रेजी शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इनकी शैली में आत्मीयता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो ये अपने पाठकों से बात चीत कर रहे हों। ये भट्ट जी की भांति किसी प्रकार की भूमिका नहीं बांधते वरन् अपने विषय पर सीधे आ जाते हैं। हास्य और व्यंग्य पूर्ण भाषा में नैतिक शिक्षा देना उनका अपना ढंग है।

हास्योद्रेक करने के इनके दो ही प्रमुख साधन थे—(१) श्लेष तथा (२) कहावतें। इनका व्यंग्य भाषा के बीच कुनैन की गोली पर शक्कर सा है पर शक्कर इतनी नहीं होने पाती थी कि कुनैन की कड़वाहट छिप जाय।

राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख लेखक थे। वृन्दावन से यह "भारतेन्दु" नामक मासिक पत्र निकालते थे। 'यमलोक की यात्रा" शीर्षक उन्होंने एक हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण लेख लिखा। यह पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो चुका है। इसके मुख पृष्ठ पर प्रकाशित है 'पच का पच और प्रपंच का प्रपंच! सब सच है!!! एक सची हँसी में कहूँगी बुरा न मानियेगा। मूल रूप में यह 'भारतसुधानिधि' में प्रकाशित हुआ था। इसमें धार्मिक एवं राजनैतिक व्यंग्य है। पारलौकिक दमन एवं सामाजिक कुरीतियों की पोल खोली गई है। पहिले लोग उन समय साहब लोगों को कुछ भेंट करते थे। जब यह मरता है तो वैतरणी पार करते समय प्रधान पूछता है कि गोदान किया है कि नहीं। जब वह मना करता है तो उसे निकालने की आज्ञा दी जाती है। बाद में विनती करता है—

"साहब, प्रथम प्रश्न सुन लीजिए, गोदान का कारण क्या है? यदि गौ की पूंछ पकड़ कर पार उतर जाते हैं, तो क्या बैल से नहीं उतर सकते। जब बैल से उतर सकते हैं तो कुत्ते ने क्या चोरी की है? मुझे याद आया कि साहब मजिस्ट्रेट की मेम को एक कुत्ता मैंने दान दिया था, जब तो क्या सामान

१. प्रतापनारायण मिश्र—[illegible] [illegible], पृष्ठ २५.

आ जाती है तो क्या प्रवत्त कुत्ता न आवेगा। मैंने झडाक सीटी दी, सीटी सुनते ही मेरा पाला पनासा प्यारा "रत्न" नामी कुत्ता कचहरी के लोगों को हटाता मेरे पास आ खडा हुआ मुझे चाटने लगा।"[1]

उक्त लेख आदि से अन्त तक हास्य-रस में डूबा हुआ है। गोस्वामी जी ने "स्तोत्रो" के रूप में भी कई हास्य-रसपूर्ण निबन्ध लिखे। "रेल्वे स्तोत्र" का एक अश देखिए—

"हे सर्व मगल मागल्ये ! स्टेशनों पर यात्री लोग तुम्हारी इस प्रकार बाट देखते हैं जैसे चातक स्वाति को, किसान मेघ को, विरहिणी पति को। पर तुम भी खूब झिकाय-झिकाय कठगत प्राण करके ही आती हो, बस जहाँ तुम्हें यात्रियों ने देखा कि लोट-पोट हो गए। कहीं लोटा कहीं डोर, कहीं गठरी कहीं पुटरी और कहीं लडका कहीं बाले, विशेष क्या उस समय उनकी ऐसी प्रेममयी दशा हो जाती है कि उन्हें आत्मज्ञान ही नहीं रहता।"[2]

"मदग्रेज देव महा महापुराण", "उल्लूगाथा" आदि सैकडो हास्य-रस-पूर्ण लेख आपने लिखे। इनका हास्य अतिहसित हास्य है। इन लेखो को पढ-कर पाठक बिना ज़ोर से खिलखिलाये रह नहीं सकता। कठिन समस्याओ को भी वे अपनी घरेलू और चित्ताकर्षक शैली में व्यक्त करने में सफल हुए हैं। इनमें प्रौढ़ चिन्तन-शक्ति एव तीक्ष्ण रचनात्मक प्रतिभा का परिचय मिलता है। इनके व्यग्य की चोट करारी है। **"जब राधाचरण धार्मिक अन्ध विश्वास पर चोट करते हैं तो उनकी बोली में कबीर के प्राण बजते दीखते हैं। कबीर के व्यग्य में कटु तीखापन है, गले से उतरते हुए लकीर सी खींचती है, गोस्वामी जी का व्यग्य शहद में डूबा, हँसी में लिपटा और कल्पना से रगा है।"[3]** हम "नलिन" जी के विचारो से पूर्णत सहमत हैं।

बालमुकुन्द गुप्त बडे सशक्त व्यग्य लिखने वाले हुए हैं। वह जिस युग में हुए वह कर्जनशाही अग्रेज राज्य की चढती धूप का जमाना था। दमनचक्र जारी था। ऐसे समय में हास्य एव व्यग्य के सहारे ही हृदय का असन्तोष प्रकट किया जा सकता था। उनका राजनैतिक व्यग्य कर्जन-केन्द्रित है। 'फुलर' और 'मिन्टो', 'मार्लो' को भी साथ में घसीटा गया है। वे 'शिवशम्भू के चिट्ठे' शीर्षक से राजनैतिक व्यग्य लिखा करते थे। शिवशम्भू को बालकपन

---

१ यमलोक की यात्रा (नये नासकेत)—पृष्ठ ४

२. भारतेन्दु (मासिक)—१४ नवम्बर सन् १८८३, पृष्ठ १२८

३ निबन्ध और निबन्धकार—जयनाथ नलिन, पृष्ठ ९८

में बुलबुलों का बड़ा शौक था परन्तु बुलबुल उसे मुश्किल से ही मिलती थी। एक बार वह स्वप्न में बुलबुलों के देश में पहुँच गया। कर्जन के आत्मसन्तोष की प्रसन्नता को उस स्वप्न की प्रसन्नता से तुलना करते हुए वे अपने पत्र में लिखते हैं—

"आपने माई लार्ड! जब से भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने के योग्य काम भी किया है? खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है या यहां की प्रजा के लिए भी कुछ कर्तव्य पालन किया? एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मन में विचारिये। आपकी भारत में स्थिति की अवधि के पांच वर्ष पूरे हो गए। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में मूलधन समाप्त हो चुका।"[1]

बंग-विच्छेद प्रसङ्ग पर उनका व्यंग्य देखिए—

"सब ज्यों का त्यों है। बंग-देश की भूमि जहाँ थी वहां है और उसका हरेक नगर और गांव जहाँ था वहीं है। कलकत्ता उठाकर चिरापूँजी के पहाड़ पर नहीं रख दिया गया और शिलांग उड़कर हुगली के पुल पर नहीं आ बैठा। पूर्व और पश्चिम बंगाल के बीच में कोई चीन की सी दीवार बन नहीं गई है। पूर्व बंगाल पश्चिम बंगाल से अलग हो जाने पर भी अंग्रेजी शासन ही में बना हुआ है और पश्चिम बंगाल भी पहले की भांति उसी शासन में है, किसी बात में कुछ फर्क नहीं पड़ा। खाली ख्याली लड़ाई है। बंग-विच्छेद करके माई लार्ड ने अपना एक ख्याल पूरा किया है। इस्तैफा देकर भी एक ख्याल ही पूरा किया है और इस्तैफा मंजूर हो जाने पर इस देश में पड़े रह कर भी श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्स के स्वागत तक ठहरना एक ख्याल मात्र है।"[2]

'आत्माराम' के नाम से उन्होंने साहित्यिक व्यंग्य भी लिखा। 'शिवशम्भु का चिट्ठा' शीर्षक निबन्धों में व्यंग्यात्मकता का प्राधान्य है। वे अनोखी घटनाओं को सगठित करने में दक्ष हैं। गुप्त जी का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उनकी भाषा चलती चलती, सजीव और विनोदपूर्ण है। उर्दू के प्रभाव से उनकी भाषा अधिक सजीव है। उनके विचार विनोदपूर्ण वर्णनों में छिपे रहते हैं। [illegible] सामने आते हैं। [illegible] [illegible] हुआ है, [illegible] [illegible] [illegible] है। उनकी भाषा में [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]

१ बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली—पृष्ठ [illegible]
२ बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली—पृष्ठ [illegible]

प्रस्तुत की प्रतीति यह बहुत सुन्दर और सफल ढग से कराते है। इनकी शैली मे भावव्यजना के चमत्कार के साथ-साथ निराली वक्रता है।

मधुसूदन गोस्वामी—ये राधाचरण गोस्वामी द्वारा सम्पादित "भारतेन्दु" मे बरावर हास्य-रस-पूर्ण निवन्ध लिखा करते थे। इनके व्यग्य 'स्तुति" शैली मे लिखे गए है। "समाचार पत्र" के विराट रूप का यह परिहास पूर्ण शैली मे वर्णन करते हैं :—

"जनरव आपकी जघा है कभी कभी उन पर आप भी चल निकलते है। लोकल प्रान्त सम्पादकीय आप के पेट और पीठ है। अगड बगड इनी मे भरा रहता है और सब सम्पादकीय प्रस्ताव के पीछे इनको जगह मिलती है। लोकल आपका कण्ठ है और सम्पादकीय आपका मुख है। नोटिस आपके नेत्र और इश्तहार आपकी अपॉग भगी है। आगामी मूल्य आपका आनन्द और पश्चात् देय आपका क्लेश है। आपका मन आपका अनुग्रह दाम है।"[1]

इनकी भाषा सस्कृत निष्ठ है। वक्र-उक्तियॉ एव श्लेप आपके हास्य उद्रेक करने के साधन हैं। व्याज-स्तुति के रूप मे भी आपने कतिपय लेख लिखे है।

द्विवेदी-युग

बाबू गुलावराय—द्विवेदी-युग के प्रमुख निवन्ध लेखको मे से है। तत्कालीन सामाजिक प्रश्नो तथा जटिल समस्याओ पर इन्होने विनोद-पूर्ण शैली मे सुन्दर निवन्ध लिखे। इनके अधिकाश लेख आत्म-व्यजक है। "मधुमेही लेखक की आत्मकथा" शीर्षक लेख मे इन्होने स्वय को ही आलम्बन बनाया है। इसके अतिरिक्त "समालोचक", "विज्ञापन युग का सफल नवयुवक", "प्रेमी वैज्ञानिक", "आफत का मारा दार्शनिक" भी इनके हास्य-रस-पूर्ण निवन्ध है। "ठलुआ क्लब" मे ये लेख ठलुओ के सामने पढे गये हैं। लेखक मधुमेही है। अपने प्रिय "डाक्टर" को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए आलकारिक शैली मे लिखे आपके निवन्ध का यह अश देखिए —

"आप साधारण जल को बहुमूल्य औषध बना, उसमे से लक्ष्मीदेवी का प्रादुर्भाव कर समुद्र मथन का नित्य अभिनय करते है। वैसे तो स्वय धन्वन्तरिरूप से आपका भी प्रादुर्भाव लक्ष्मी जी के साथ हुआ था। धन्वन्तरि जी अमृत

१ भारतेन्दु—दिसम्बर, जनवरी तथा फरवरी तथा मार्च सन् १८८४-८५ का सयुक्ताक—पृष्ठ १९०

का घट लिए हुए निकले थे। आप की दवाओं की पेटी पीयूषधारा से कम नहीं है। आप अपने ही में धन्वन्तरि एवं चन्द्रमा दोनों के व्यक्तित्व को सम्मिलित किए हुए हैं। चन्द्रमा को औषधियों का पति कहा है। इसी से उसका नाम सुधाकर पड़ा। आप भी सुधाकर हैं क्योंकि अमृतमयी औषधियाँ आपके कर कमलों में निवास करती हैं। वास्तव में आपके "कर" ही सुधा-रूप हैं। सुरा-देवी आपकी सहज भगिनी है। इसलिए आपकी प्रत्येक औषध में उनका प्रयोग होता है। लक्ष्मी देवी पर तो आप कृपा करते ही रहते हैं। बिना उनके "सुफल" बोले आपके मन्त्र तथा औषध और रोगी की "हा हा विनती" सब निष्फल हो जाती है।"[1]

गुलाबराय जी की भाषा में गम्भीर-हास्य मिलता है। भाषा व्यवहारिक बोलचाल की चलती हुई है। मुहावरों का भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। साथ में संस्कृत के सुभाषितों का भी उपयोग किया गया है। हास्य का उद्रेक वक्र-उक्तियों द्वारा किया गया है। व्याज-स्तुति एवं व्याज-निन्दा के माध्यम से हास्य का सृजन किया गया है। व्यंग्य अर्थगर्भित, परिष्कृत एवं 'सुसंस्कृत' है।

चन्द्रधरशर्मा गुलेरी की ख्याति हिन्दी-साहित्य में उनकी प्रसिद्ध रचनात्मक कहानी "उसने कहा था" शीर्षक से ही है किन्तु वे हास्य-रस के निबन्ध लिखने में भी उतने ही सिद्धहस्त थे। डा० रामचन्द्र शुक्ल ने उनके बारे में ठीक ही लिखा है—"यह बेधड़क कहा जा सकता है कि शैली की जो विशिष्टता और अर्थगर्भित वक्रता गुलेरी जी में मिलती है, वह और किसी लेखक में नहीं। इनके स्मित हास की सामग्री ज्ञान के विविध क्षेत्रों से ली गयी है।" उनके "कछुआ धरम" शीर्षक लेख का कुछ अंश देखिए—

"अच्छा, अब उसी पंचनद में "वाहीक" आकर बसे। अश्वघोष की फड़कती उपमा के अनुसार धर्म भागा, और दण्ड कमण्डल लेकर ऋषि भी भागे। अब ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि देश और आर्यावर्त की महिमा हो गई, और वह पुराना देश—न तत्र दिवसं वसेत्। बहुत वर्ष पीछे की बात है। समुद्र पार के देशों में और धर्म पक्के हो चले। वे लूटते मारते थे तो बेधर्म भी कर देते थे। बस समुद्र-यात्रा बन्द। कहाँ तो राम के बनाए सेतु का दर्शन करके ब्रह्महत्या मिटती थी और कहाँ नाव में जाने वाले द्विज का प्रायश्चित्त करने पर भी संग्रह बन्द। वही कछुआ धर्म। ढाल के अंदर बैठे रहो"।

---

१ कछुआ धरम—पृष्ठ १८

इनकी शैली विचारात्मक है। वाक्यो में प्रसग छिपे रहते हैं। इनके लेखो का पूरा आनन्द विद्वान ही ले सकता है।

जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी—हास्य रस के अच्छे निवन्ध लेखक थे। द्विवेदी युग में व्यग्य का अधिक प्रयोग आलोचना-प्रत्यालोचना में होता था। वालमुकुन्द गुप्त सम्पादक थे "भारतमित्र" साप्ताहिक के तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी थे सम्पादक "सरस्वती" मासिक के। आपस में भाषा तथा व्याकरण के प्रश्नो को लेकर नोक-झोक होती रहती थी। आक्षेप शैली ही अधिक प्रचलित थी। एक वार द्विवेदी जी ने वावू श्यामसुन्दर दास पर एक दोहा "सरस्वती" में निकाला—

"मातृभाषा के प्रचारक विमल बी० ए० पास,
सौम्य शील निधान बाबू श्याम सुन्दर दास।"

इसी पर व्यग्य करते हुए गुप्त जी ने पडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के बारे में लिखा—

"पितृ-भाषा के बिगाडक सफल एफ० ए० फिस्स
जगन्नाथ प्रसाद वेदी बीस कम चौबिस्स।"

जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी गुप्त जी के दल के थे तथा "भारत-मित्र में बरावर लिखा करते थे। एक वार श्री ललित कुमार वन्द्योपाध्याय ने कलकत्ता यूनीवर्सिटी इस्टीट्यूट में सर गुरुदास वनर्जी की अध्यक्षता में "अनुप्रासेर अट्टहास" शीर्षक वगला प्रवन्ध का पाठ किया। इसमें उन्होने वगभाषा में व्यवहृत, प्रयुक्त और प्रचलित सस्कृत, अग्रेजी, उर्दू, हिन्दी और वगला शब्द, मुहावरे और कहावतें उद्धृत कर अनुप्रास का एकाधिकार वगलाभाषा में दिखाया था। प्रवन्ध पाठ के अन्त में "वगवासी" के तत्कालीन सम्पादक श्री विहारी लाल सरकार वोले कि "**वगला ही कविता की भाषा है, क्योंकि इसमें जितना अनुप्रास है उतना और किसी भाषा में नहीं। अनुप्रास कविता का एक गुण है**" चतुर्वेदी जी ने इसी के उत्तर में "अनुप्रास का अन्वेषण लेख लिख डाला है जो अव पुस्तकाकार उपलब्ध है। उक्त निवन्ध में आपने वाणिज्य, व्यापार, साहित्य, धर्म, आश्रम, भोजन सबके वर्णन में अनुप्रास की छटा दिखाई है। "साहित्य" के वर्णन का कुछ अश देखिए—

"कविकुल कुमुद कलाधर, काव्यकानन केसरी और कविता कुंज कोकिल कालिदास भी काव्य-कल्पना में अनुप्रास का आवाहन करते हैं। कहीं कहीं तो कष्ट-कल्पना से काव्य का कलेवर कलुषित हो जाता है। यह कपोल-कल्पना

नहीं कवि कोविदों का कहना है। खैर, वंशीवट, यमुना निकट, मोर मुकुट, पीत-पट, कालिन्दीकूल, राधा माधव, ब्रजवनिता, ललिता, विधुवदनी, कुंवर कन्हैया, नन्द यशोदा, वसुदेव देवकी, वृन्दावन, गिरि गोवर्द्धन, ग्वाल बाल, गोप गोपी, बाल-मराल, रसाल साल, लवंगलता, विपिन विहारी, नन्दनन्दन, विरह व्यथा, वियोग व्यथा, संयोग वियोग, मधुर मिलन......प्राणनाथ, प्राणप्रिय, पीन-पयोधर प्रेमपत्र, प्रेमपताका, प्राणदान, सुखस्वप्न आलिंगन चुम्बन, चूमाचाटी, पाद पद्म, कृत्रिम कोप, भ्रूभङ्ग भृकुटीभंगी, मानमर्द्दन और मानभंजन भी अनुप्रास के अधीन हैं।"[1]

इनकी शैली आलंकारिक है। यहां असंगत नामों की संगत बैठने से हास्य का उद्रेक किया गया है। इनकी भाषा में धारावाहिकता है जो इनके निबन्धों को गति देती है। हास्य-रस के लेखकों का यह अपना गुण विशेष होता है। कुशल हास्य लेखक इस ढंग से अपना व्यंग्य-बाण चलाता है कि जिसे वह बाण लग जाए वह भी मुस्करा उठे और चुभे हुए बाण को निकाल कर चूमले और कह उठे "वाह" और चतुर्वेदी जी इसमें सफल हुए हैं चाहे आचार्य शुक्ल जी को उनके लेख भाषण ही लगते हों।

आधुनिक युग

शिवपूजन सहाय हास्य-रस-पूर्ण निबन्धों के उत्कृष्ट लेखक हैं। "मुर्गी-चन महारानी की जय", "प्रोपेगण्डा-प्रभु का प्रताप", "मेरी रामकहानी", "मैं धोबी हूँ", "मैं हज्जाम हूँ," "मैं माली हूँ", "मैं ग्रन्थी हूँ", आदि शीर्षकों से आपने अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक विडम्बनाओं पर व्यंग्य बाण छोड़े हैं। शिवजी की विशेषता है मीठी चुटकी लेना, गुदगुदाकर देना, चिकोटी लेना नहीं। इनके व्यंग्य-बाण विषाक्त नहीं हैं। इनके लेखों को हम वर्णनात्मक तथा आत्म-व्यंजक शैलियों में विभाजित कर सकते हैं। वर्णनात्मक शैली में लिखा "प्रोपेगण्डा प्रभु का प्रताप" शीर्षक लेख का एक अंश देखिये—

"इन प्रभु जी का भजन हुए बिना न कोई चांदी काट सकता है न मूंछ पर ताव दे सकता है, न हाथ में जीत का सपना देख सकता है, न किसी को उल्टे छुरे से मूंड सकता है, न दुनिया की आँखों में धूल झोंक सकता है, न मिथ्या महोदधि का मन्थन कर असत्य रत्न निकाल सकता है, न जादू की

१. "अनुप्रास का अन्वेषण"—पृष्ठ ८, ९.

छडी फेर कर गीदड को शेर बना सकता है, न छछूंदर के सिर में चमेली का तेल लगा सकता है, न सूखी रेत में नाव चला सकता है, न ढोल में पोल छिप सकता है, न कोयले पर मौहर की छाप लगा सकता है, इस दुनिया में कुछ भी नहीं कर सकता।"[1]

एक साधारण तथा तुच्छ वस्तु को असाधारण महत्व देकर हास्य का उद्रेक किया गया है। प्रोपेगडा को प्रभु की उपमा ही नही दी गई वरन् प्रभुता का पूर्ण समावेश उसमें करा दिया गया है। मुहावरो की झडी लगा दी गई है। मुहावरो पर ऐसा अधिकार तथा उनका उचित प्रयोग कम लेखको में देख पडता है।

"मै हज्जाम हूँ" इनका आत्म-व्यजक शैली में लिखा सुन्दर निबन्ध है। इसमें स्मित हास्य की छटा दर्शनीय है। पहले हज्जाम की प्रशसा मन भर के की गई है। "प्रथम पुरुष" में लिखे होने के कारण इसमें व्यजित व्यग्य की कटुता को शून्य कर देने का सफल प्रयास किया गया है। देखिए—

"आजकल हजामत का पेशा बहुतो ने अपना लिया है। यदि कोई नई उमंग का नेता है तो निस्सन्देह नापित भी है क्योकि जनता की हजामत बनाना ही उसका बँधा रोजगार है। दुनिया की सरकारें प्रजा की हजामत बनाती हैं। निरकुश लेखक भाषा की हजामत बनाता है स्वयभू कवि छन्दों की, डाक्टर मरीजो की, वकील मुवक्किलों की, टिकट चेकर मुसाफिरों की, दुकानदार ग्राहको की, पण्डा तीर्थयात्रियों की, समालोचक लेखको की, सम्पादक पुरस्कार की, प्रकाशक पाठको की और अनुवादक मूलभावों की हजामत बनाता है। कहाँ तक गिनाऊँ, सब तो हज्जाम ही हज्जाम हैं।[2]

पाठको के प्रति आत्मीयता का भाव कुशल लेखक का एक विशिष्ट गुण है। शिवपूजन सहाय, ऐसा प्रतीत होता है, मानो लेख के द्वारा अपना मन खोल कर रख रहे हैं। हँसी दूसरे की उडा रहे है किन्तु अपने ऊपर रख कर। मृदुल हास्य की ऐसी व्यजना अन्यत्र कम दिखाई देती है। हम निस्सकोच रूप से कह सकते है कि निबन्धों में इतना सुसस्कृत हास्य, परिष्कृत शैली एव प्राँजल भाषा का सुयोग बहुत कम मिलेगा।

---

१. "दो घडी"—पृष्ठ १२

२ ,, ,, ,, २६

हरिशंकर शर्मा के निबन्धों में सामयिक विषयों पर कठोर व्यंग्य मिलता है। व्यक्ति, चरित्र, समाज, व्यवसाय आदि को वस्तुविषय बनाकर शर्माजी ने उनकी विद्रूपताओं का खाका खींचा है। इनके कुछ लेख मनोरंजन-प्रधान हैं तथा कुछ व्यंग्य-प्रधान।

"भारतीय मूछमुण्ड-मण्डल" में मुच्छहीन-सम्प्रदाय की हास्यमय रीति से प्रशंसा की गई है—

"धार्मिक समाज ही नहीं, राजनैतिक जगत का भी मुलाहिजा फरमाइये ·· ··· दूर क्यों जाते हो वर्तमान काल में आँखें पसार कर देखिये, सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, श्रीनिवास आयंगर, सी० वाई० चिन्तामणि, भाई परमानन्द, श्रीनिवास शास्त्री इत्यादि सैकड़ों "मूछमुण्ड दल" के अनुयायी हैं। यह निमुच्छता साहित्य क्षेत्र में भी विहार करने लगी है। आप गौर से देखें, बदरीनाथ भट्ट, लक्ष्मीधर वाजपेयी, वियोगी हरि, शिवप्रसाद गुप्त, कृष्णकान्त मालवीय ·· साहित्य सेवियों के मुँह से मूँछें · ···के सींग की तरह उड़ गईं और उड़ती जा रही हैं।"[1]

इन्होंने साधारण या असाधारण रूप में वर्णन करते हुए व्याजस्तुति पद्धति का पुट देकर हास्य-सृजन किया है। [illegible] इनकी शैली का विशिष्ट गुण है। व्यंग्य इनका कटु नहीं, मृदुल है। '[illegible]' लेख व्यंग्य प्रधान है इसका कुछ अंश देखिये—

कल्पना का दामन पकड़ा है। इन्होने भी "स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी" कराई है तथा "कठी-जनेऊ" का विवाह कराया है। ये कट्टर आर्य समाजी थे। हास्य एव व्यग्य के माध्यम से इन्होने विरोधियो के सिद्धान्तो पर व्यग्यवाण छोडे है। इनकी शैली अलकार एव अनुप्रासो से बोझिल है। पाठक को रस-ग्रहण कराने में ये शैली बाधक होती है। भाषा सस्कृत-प्रधान है। विषय की एकरूपता भी नही मिलती। हास्य यत्नज है। स्वाभाविक नही। एक अश देखिये—

"प्रथम श्री गणेशजी खडे हुए परन्तु थोद बडी होने के कारण से पैर डगमगाये और धोती खुलने लगी बस यह तो मगल पाठ करके बैठ गए। तब श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने खडे होकर कहा . . किसी भाँति छल-बल से देवताओं की उन्नति करनी चाहिए।"[1]

और इस प्रकार यह कपोल-कल्पित वर्णन चलता जाता है जो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अस्वाभाविक एव असस्कृत है। जब कला किसी धर्म अथवा पक्ष के समर्थन करने का माध्यम बना दी जाती है तो यही परिणाम होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल यद्यपि गम्भीर विषयो के लेखक थे किन्तु हास्य-रस के छीटे उनके लेखो मे यत्र तत्र मिलते है। अरबी, फारसी तथा अगरेजी के शब्दो का प्रयोग वे बहुधा हास्य-सृजन के लिए करते थे यथा लाइसेन्स, लेक्चर, पास, फैशन आदि।

"अपनी कहानी का आरम्भ ही इन्होंने (इशा अल्लाखाँ ने) इस ढग से किया है जैसे लखनऊ के भाँड घोडा कुदाते हुए महफिल में आते है।"—
(इतिहास)

इनके लेखो में व्यग्य-प्रधान वाक्य भी मिलते है।

"ऊपरी रँग ढँग से तो ऐसा जान पड़ेगा कि कवि के हृदय के भीतर सेंध लगाकर घुसे है और बडे बडे गूढ़ कोने झाँक रहे है पर कवि के उद्धृत पद्यों से मिलान कीजिए तो पता चलेगा कि कवि के विवक्षित भावों से उनके वाग्विलास का कोई लगाव नहीं है।"— (इतिहास)

हजारी प्रसाद द्विवेदी—शुक्ल जी की भाँति द्विवेदी जी मुख्यत हास्य-रस के लेखक नही है किन्तु आपने भी कही कही हास्य रस की अच्छी पिचकारी छुड़ाई है। "शिरीष के फूल", "आप फिर बौरा गये", "समालोचक की डाक", "साहित्य का नया कदम" मे हास्य-रस के छीटे मिलते है। "क्या आपने मेरी

---

१ स्वर्ग मे सब्जेक्ट कमेटी—पृष्ठ १५

रचना पढ़ी है" श्रेष्ठ हास्य की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में अपना स्थान रखती है उसका एक अंश देखिये —

"सच पूछिये तो शुरु शुरु में मनुष्य कुछ साम्यवादी ही था। हँसना हँसाना तब शुरु हुआ होगा जब उसने कुछ पूँजी इकट्ठी करली होगी और संचय के साधन जुटा लिए होंगे। मेरा निश्चय मत है कि हँसना हँसाना पूँजीवादी मनोवृत्ति की उपज है। इस युग के हिन्दी साहित्यिक जो हँसना नापसन्द करते हैं उसका कारण शायद यह है कि वे पूँजीवादी बुर्जुआ मनोवृत्ति से मन ही मन घृणा करने लगे हैं। उनकी युक्ति शायद इस प्रकार है—चूँकि संसार के सभी लोग थोड़ा बहुत रो सकते हैं, इसलिए रोना ही वास्तविक धर्म है। फिर भी अधिकांश साहित्यिक रोते नहीं, केवल रोनी सूरत बनाये रहते हैं।"

अन्नपूर्णानन्द वर्मा ने भी हास्य रस पूर्ण निबन्ध लिखे हैं। आधुनिक कविता, आधुनिक समालोचक, प्रकाशक, दर्शन आदि इनके निबन्धों के विषय हैं। अधिकतर लेख आत्म-व्यंजक शैली में लिखे गये हैं। लेखक ने हास्य का उद्रेक स्वयं को आलम्बन बना कर किया है। व्यंग्य मृदुल है। हास्य एवं व्यंग्य का सृजन स्वाभाविक रूप से हुआ है। "कविता-नंद" शीर्षक लेख में आधुनिक कविता एवं आधुनिक तथाकथित समालोचकों पर शब्द-मय व्यंग्यबाण छोड़े गये हैं।

"पर यह मैं खूब समझता हूँ कि आधुनिक कविता की गतिविधि से अपरिचित होना उतनी ही बड़ी मूर्खता है जितनी बड़ी कि उनसे परिचित होते हुए भी उसके सम्बन्ध में अपने विचारों को सबके सामने प्रकट कर देना। मैंने आधुनिक काव्य-ग्रन्थ कम नहीं पढ़े हैं, जिन्हें नहीं भी पढ़ सका हूँ उनमें कई की समालोचना मैंने लिखी है। पर आनन्द जिसका नाम है वह राम जाने क्यों मुझे उनमें अधिक नहीं मिला। इधर अधिकांश हिन्दी कविता जो मेरे देखने में आरही है वह या तो बादी और अफरीकी उभार है, या फेफड़ों की फालतू फुन्कार।"[1]

शैली प्रसाद-युक्त है, आलंकारिक नहीं है। वर्मा जी बातचीत के ढंग में लेख लिखते हैं। जो लक्ष्य वह प्राप्त करना चाहते हैं, जिस शिकार का वे शिकार करना चाहते हैं उसे टेढ़े रास्ते से नहीं पकड़ते हैं, सीधे वार करते हैं और उनका तीर सीधा पड़ता है। चार यार "[illegible]" से और देखिए

"मुझे आज तक हिन्दी में दो ही ग्रन्थ अच्छे लगे, एक तो यह जो मैं लिखने वाला

१. मनमयूर—पृष्ठ ६६

था पर समय न मिलने से न लिख सका और दूसरा वह जो मैं लिखूँगा यदि समय मिला तो।"[१]

कान्तानाथ पाडे "चोच" के हास्य रस के निबन्ध वर्णनात्मक कोटि के है। अतिरजित घटनाओं का समावेश करके हास्य का सृजन किया है किन्तु वह कुरुचिपूर्ण नही है। प्रताप नारायण मिश्र के दाँत, भौं, आदि शीर्षकों जैसे निबन्धो की भाँति इन्होंने भी "मेरी पैंसिल" शीर्षक एक निबन्ध लिखा है।

"पैंसिल शब्द किस भाषा का है, यह तो आपको डाक्टर मंगलदेव शास्त्री बतलावेंगे, पर मैं आपको इतना अवश्य ही बतला दूँगा कि मेरे पास एक पैंसिल है। अभी उस दिन सुप्रसिद्ध कलाविद रायकृष्ण दास जी मुझसे यह पैंसिल कला-भवन मे रखने के लिए माँग रहे थे। आखिर उन्हें कब तक टरकाऊँगा। एक न एक दिन वह बाबू झटकूराम की तरह इस पैंसिल को मुझसे झटक ही ले जावेंगे। राष्ट्रकवि श्री मैथली शरण गुप्त की पगडी, कवि सम्राट प० अयोध्या सिंह उपाध्याय की दाढ़ी के काले बाल, मुन्शी अजमेरी के पायजामे का इजारबन्द, प्रसाद जी का लँगोटा, सुभद्रा कुमारी चौहान का फटा जम्पर, बा० जगन्नाथ प्रसाद "भानु" की शेरवानी तथा बा० गोपालराम गहमरी का अँगोछा आखिर वे लोग ले ही गए।"[२]

हास्य का उद्रेक अस्वाभाविक सभावनाओ को लेकर किया गया है। इनके निबन्धो में हास्य स्मित है। मनोरजन करने में कहानियाँ सफल हुई है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" ने दुबे जी की चिट्ठियो के रूप में कुछ हास्यरसात्मक पत्र लिखे है जिनमे कुछ मनोरजन-प्रधान लेखो की कोटि में रक्खे जा सकते है। आपने इन पत्रो द्वारा चुनावो में बेइमानियाँ, बारातो की विद्रूपताएँ, फैशन-परस्त युवको की दुर्दशा आदि अनेको विषयो पर छीटाकशी की है। इनके ये लेखवद्ध-पत्र आत्मीयता लिये हुये है। वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है। भाषा सरल एव प्रसाद-गुण युक्त है। बात सीधी साधी किन्तु अर्थ-विपर्यय ऐसा कि आप हँसी नही रोक सकते। कथोपकथन भी बीच बीच में हास्य का सृजन करता है। भारत पराधीन था। कलक्टर साहब के यहाँ जाकर सलाम झुकाना एक फैशन था। दुबे जी भी जाते है, वहाँ का वर्णन देखिए —

"हम साहब के सामने पहुँचे। भीतर जाते समय चपरासी ने टोपी और जूते ही रखवा लिए। हमने साहब को जाते ही एक लम्बा सलाम झुकाया

---

१ "मन मयूर"—पृष्ठ १७३
२ "मौसेरे भाई"—पृष्ठ ८१

साहब ने हमसे हाथ मिलाया—पुर्जों में से आधे दर्जन तो उसी समय गया में पिण्ड पाकर तृप्त हो गए। मैंने साहब से कहा—आपके चपरासी ने टोपी और जूते रख लिए हैं, कोई खटके की बात तो नहीं है? आपका जाना बूझा नौकर है न? साहब बोले—नहीं डुबे जी, कोई फिकर का बाट नहीं है। अगर आपका टोपी-जूटा चला जाएगा टो हम आपको हजार टोपी और हजार जूटे देने सकटा है। मैंने कहा—तब तो चपरासी टोपी जूते ले ही जाय तो अच्छा है। मैं यह सोच ही रहा था कि साहब फिर बोले—डुबे जी, मैं बीच ही में बोल उठा—साहब न मैं डूबा हूँ, न मैं बहा हूँ, मैं हट्टा-कट्टा आपके सामने बैठा हूँ। आप बार-बार 'डूबे' न कहिए।[1]

श्लेष एवं शब्द निर्माण द्वारा हास्य उत्पन्न करने में कौशिक जी सिद्ध-हस्त थे। भाषा में धाराप्रवाहिता बराबर मिलती है।

यशपाल के निबन्धों में भी हास्य की मात्रा यथेष्ट मात्रा में मिलती है। "न्याय का संघर्ष" उनका राजनैतिक निबन्धों का संग्रह है। इसमें भावात्मक एवं विचारात्मक दोनों कोटि के निबन्ध संग्रहीत हैं। "मच्छरों" का वर्णन कितने हास्यमय रूप से किया है।

"दूर पर बहुत से मच्छरों की भनभन सुनाई दी। सोचा, यह क्या दल बल से आक्रमण की तैयारी हो रही है? कह चुका हूँ रात के सन्नाटे में कल्पना अबोध हो उठती है। मच्छरों की उस कान्फ्रेंस की बात समझने में कुछ उलझन अनुभव न हुई, समझ गया, यह लोग अपने स्काउट के न लौट सकने से चिन्तित हो उठे हैं। सोचा कल मच्छर-संसार के समाचार पत्रों में सनसनी-खेज खबर छपेगी—

"एक वीर सैनिक का दुष्ट नर-राक्षस के हाथों बलिदान।

मच्छर-जाति के नर-रक्त पीने के जन्म-सिद्ध अधिकार के विरुद्ध मनुष्योंकी घृणित कार्यवाही।

मच्छर जाति के नौनिहालो! यदि तुम्हारी नसों में तुम्हारे पूर्वजों का रक्त वर्तमान है तो मानव-रक्तपान के अपने अधिकार के लिए मर मिटो।

सोचा, मच्छरों की असंख्य सेनाओं का आक्रमण होगा और दोनों हाथों के दो चार प्रहारों में अनेक सैनिक वीर-गति को प्राप्त कर जायेंगे।"[2]

१. दुबे जी की चिट्ठियाँ—पृष्ठ ११२, ११३
२. "न्याय का संघर्ष"—पृष्ठ ८४

बेढ़ब बनारसी के हास्यरसात्मक निबन्धो को दो भागो में बाँटा जा सकता है—विशुद्ध हास्यात्मक तथा व्यग्यात्मक। आप अनुप्रासो की झडी लगा देते है। शैली वर्णनात्मक है। "ऐनक" शीर्षक आपका एक लघु निबन्ध है उसमें आप "ऐनक" के लाभ बताते है—

"ऐनक में कितना लाभ है। बहुत बडी सूची है। कहाँ तक गणना कीजिएगा। आँख में कोई धूल झोकना चाहे तो आपकी ऐनक रक्षा करेगी। दूर की चीज देखना हो तो ऐनक दिखा देगा। अर्थात् वह आपका दूरदर्शी बना। आँखें उडना चाहें तो यह ढाल का काम देगा, आँखें उठना चाहें तो यह न उठने देगा। ठीक प्रयोग हो तो आँखो को बैठने भी न देगा। आँख आने वाली हो तो यह आने न देगा और यदि आँख जाने वाली हो तो यह रोक देगा। 'इसलिए विलायत के विज्ञानवेत्ताओ ने खोजकर रगीन ऐनक का आविष्कार कर दिया है। बडी-बडी सभा, कांग्रेस, कान्फ्रेस में, रेल में, मेला तमाशे में' रगीन ऐनक लगा कर जिसकी ओर आप चाहें घटों घूरा कीजिये। आप अपनी आँखों का फोक्स जिसकी ओर चाहें लगा दीजिए, उसे पता न होगा। शायद खुली आँखो को इस प्रकार कोई देखे तो कोई लात खाने की नौबत आ जाय। अवश्य ही रगीन ऐनक के आविष्कारक सरस मनुष्य वर्ग के धन्यवाद के पात्र हैं।"[1]

प० बालकृष्ण भट्ट की "खटका" परम्परा को ही बेढब जी ने आगे बढाया है। नित्य प्रति के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओ पर विनोद का रग चढाकर यह चित्र खीचे गये है। भाषा प्रसाद-गुण-युक्त है, व्यर्थ का शब्दाडबर नही। हास्य-रस के लेखक की एक सीमा होती है यदि वह उससे बाहर जाता है तो हास्य हास्यास्पद हो जाता है जो इनके लेखो में नही हो पाया है। इसी प्रकार "अध्यापक", "तोद का महत्व" "कुछ नई बाजियाँ", "विलायती" शीर्षक इनके हास्य एव व्यग्यमय लेख अच्छे बन पडे हैं। सबसे बडी बात यह है कि निबन्धो में नीरसता कही नही आ पाई है।

श्री गोपाल प्रसाद व्यास हास्य-रस पूर्ण निबन्धो के अच्छे लेखक है। डाक्टर, वैद्य, खुशामदी, मेहमान आदि को आलम्बन बना कर आपने उनका खाका खीचा है। अधिकतर इनके लेख व्यग्य प्रधान है। व्यग्य कही-कही कटु हो गया है और वह "सस्कृत" नही रहा। आलम्बन के प्रति ममता का भाव न होकर निन्दा एव घृणा के भाव मुखर हो गये है। "साहित्य का भी

१ उपहार—पृष्ठ १०३

कोई उद्देश्य" शीर्षक लेख मे "पेशेवर कवियो" पर व्यग्य करते हुए आपने लिखा है—

"लेकिन फिर भी मेरी समझ में नहीं आया कि कल जब पड़ोस की किसी लड़की को मुंह उठा कर देख लेता था तो मुहल्ले भर में फुसफुसाहट फैल जाया करती थी, लेकिन आज जब भरी सभा में अपने प्रेम का इजहार, अपने दिल का दर्द, अपने अरमानो की दुनिया और अपनी आकाक्षाओं के स्वप्न खुले से खुले शब्दो में बेधडक होकर सुनाता रहता हूँ, मगर क्या मजाल कि लोग फुसफुसायें, अगुली उठायें या विरोध करें, उल्टे मस्त हो हो कर झूमते रहते हैं। वाह-वाह के सिवाय उनके मुंह से कुछ निकलता ही नहीं, तब मैंने सोच लिया कि यह धन्धा भी कुछ बुरा नहीं है और मैं कवि बन बैठा। बाद में तो राम कृपा से लड़ाई छिडी, लोगों ने रुपया कमाया। बडे-बडे कवि सम्मेलन हुए। ब्लैक मार्केट के उन रुपयो में मेरा भी साझा हुआ।"[1]

इनका हास्य "मुंह फट" है। कहीं-कहीं तो वह कुरुचिपूर्ण हो गया है। शैली आत्मव्यजक है। भाषा में गति है किन्तु उसमे परिष्कार की आवश्यकता है।

कृष्णचन्द्र ने ब्रह्मचारी ज्योतिषी अखिल भारतीय हिन्दुस्तान कान्फ्रेंस, सेठजी, जनतन्त्र दिवस आदि हास्य-रस पूर्ण निबन्ध लिखे है। "हिन्दी का नया कायदा" शीर्षक लेख मे बालको की पाठ्य पुस्तकों की हास्यानुकृति की गई है। बच्चों के पढाने के माध्यम से लेखक ने उनमें व्यग्य का पुट डाल कर अपनी बात परोक्षरीति से कही है। "त" अक्षर पढ़ाने के लिए तोता दिखाया जाता है और बताया जाता है तोता वाला "त"। अब "तोता" की व्याख्या सुनिए —

"बच्चो, तोता उस आदमी को कहते हैं जो अपने मालिक का सधाया हुआ होता है, और वही कहता है जो उसका मालिक उससे कहलवाना चाहता है। तुमने अक्सर ऐसे तोते देखे होंगे। ये हर जगह, हर देश और हर जाति में पाये जाते हैं, और घरो में, जलसो में, दफ्तरो में, असेम्बलियो में अपने मालिक के रटाये हुए वाक्य बोलते रहते हैं। सच पूछो तो दुनिया में उन्हीं लोगों की इज्जत है।"[2]

इनका व्यग्य मार्मिक हे। विचारात्मक शैली मे लिखे गये निवन्ध राजनैतिक एव सामाजिक विद्रूपताश्रो पर करारी चोट करते है। भापा परिष्कृत एव प्रसादगुण युक्त है। व्यर्थ का शव्दाड्वर कही भी देखने को नहीं मिलता।

ब्रज किशोर चतुर्वेदी हास्य-रस "मिस्टर चुकन्दर" के नाम से लिखते है। "श्रीमती बनाम श्रीमता" श्रापके निवन्धो का सग्रह हे। इसमे "श्रीमती" एव "श्रीमता" के वार्तालाप के रूप मे लघु निवन्ध लिखे गये है। स्मित हास्य एव मृदुल व्यग्य का सुन्दर सयोजन किया गया है। छायावादी कवियो पर, मुच्छ विहीन युवको पर व्यग्य वाण वरसाये गये है। श्रीमती जी के यह पूछने पर कि मूँछ-दाढी के विपय मे किसी कवियित्री ने भी कुछ लिखा हे या नही, श्रीमता उत्तर देते ह —

"श्राज हिन्दी साहित्य मे वेदना-प्रधान कवियित्री श्री महादेवी वर्मा है। उन्होंने श्राचार्य शुक्ल की श्राज्ञा शिरोधार्य करके पुरुष कवियों का श्रनुकरण न करके श्रपनी रचनाश्रों में क्षितिज पर उठती मेघमाला को ही श्रपने परमात्मा प्रियतम की दाढी-मूँछ के रूप में देखा है। श्रौर वह मेघमाला जव विलीन हो जाती है तब वह समझती है परमात्मा प्रियतम "क्लीन शेव" हो चुका। इसी को सत्य मान कर जव विरह से विह्वल होकर उन्हें मिलने मे देर मालूम होती है तो यह भावना होती है कि "दाढी-मूँछ" काटने-छाटने मे ही देर हो रही हे। परन्तु विरह सत्य है। विरह ही सब कुछ है। इसलिये यह पूछना भी नहीं कि दाढी-मूँछ कितनी कट चुकी, कितनी शेष रही हे। विरह तो हे ही, जल्दी भी क्या करनी है? परन्तु दाढी-मूँछ को भी सजीव मान कर उनके विषय में जो कविता "दीपशिखा" मे लिखी गई है वह भी श्रद्वितीय है।"[1]

इनका व्यग्य व्यक्तिगत हो गया है जो शुभ नही। श्रवैयक्तिक व्यग्य से वर्ग गत व्यग्य श्रेष्ठ होता हे। इनकी भाषा सस्कृत-गर्भित है।

किशोरी लाल गुप्त ने भी हास्य-रस के निवन्ध लिखे है। "झूठ वोलने की कला", "कविता कैसे लिखे?", 'विचित्र दीक्षान्त समारोह" श्रादि विपयो पर इन्होने लेख लिखे है। "विचित्र दीक्षान्त समारोह" श्राजकल की शिक्षा-पद्धति पर श्रच्छा व्यग्य हे। श्राप लिखते है —

"हमारे विश्वविद्यालय के श्रधिकांश छात्र श्रसाधारण श्रौर बहुमुखी प्रतिभा वाले होते है। उनकी सम्मति में रेल टिकट का लेना दरिद्र भारत के धन

१ श्रीमती वनाम श्रीमता—पृष्ठ ५०

का अपव्यय करना है और अपनी सेवा आप कर लेना ही देश की सबसे ब[illegible] सेवा है। अपने पराये का भेद-भाव तो उनमें लेश मात्र भी नहीं है। दूसरों [illegible] सभी वस्तुओं को वे अपनी ही समझते हैं और परोपकार की भावना तो उ[illegible] इतनी अधिक है कि यदि कोई व्यक्ति उन्हें भोज का निमन्त्रण दे तो च[illegible] परीक्षा का पर्चा ही क्यों न छोड़ना पड़े, पर वे उसे निराश न करेंगे।"[1]

"कौतुक बनारसी" ने साहित्यिक विषयों पर बहुत व्यंग्य लिखे हैं। साहित्यिक ठग, चालीस स्वर्गीय कवि सम्मेलन, सरपट वाणी साहित्य सम्मेलन भावी कवियों के पत्र उनके निबन्धों के शीर्षक हैं जो स्वयं अपने विषयों [illegible] स्पष्ट करते हैं। "साहित्यिक चोरों" पर व्यंग्य देखिए—

"साहित्यिक ठगों की बनावट में, कोई विशेषता नहीं होती। वैसे नाक-कान होते हैं जैसे हम सबके हैं, और अब भी हम सब से ते ह[illegible] है। ··· लेकिन गजब का कमाल हासिल होता है इन लोगों को। मौ[illegible] मिला नहीं कि कैंची से साफ कर दिया अपने दोस्त का भी माल। हमने सु[illegible] था कि काश्मीर में लोग अंगूर और फलों के खेत के खेत चुरा लेते हैं, लेकि[illegible] अचरज तब हुआ जब एक साहित्यिक ठग ने बात ही बात में हमारी कहा[illegible] का सारा "आइडिया" हड़प लिया और उस सप्ताह ··· नामक पत्र में नि[illegible] कहानी निकल गई।"[2]

कवित्व निबन्धों में अस्वाभाविक बातों या अस्वाभाविक घटना द्वारा हास्य का उद्रेक किया गया है। शैली वर्णनात्मक है। स्थान स्थान प[illegible] [illegible]

"लेकिन यह कहानी भी एक बीमारी है, जो बेमुँह के होते हैं, ऐसा कहते रहते हैं। स्त्रियों के मुँह में वैसे ही लगाम नहीं होती। उनके मुँह के रग भी बदलते रहते हैं जैसे इन्द्र धनुष के। उनके मुँह को इस विज्ञापन युग में भी कवि लोग चन्द्रमुख कहते हैं, यह जान कर भी कि चन्द्र के समीप लाने का मतलब बर्फ से ठण्डे हो जाना है। कुछ लोग होते हैं जो स्त्री मुख देखते ही, या तो मुँह ताकते रहते हैं, या मुँह लटका लेते हैं या फुला लेते हैं। मुँह दिखाई बन्धुओ का खास अधिकार है। पर यह बात मैं मुँह पर क्यों लाऊँ कि स्त्रियां ही हैं जिनकी मुँह-धुराई मुँह से ही होती है। मैं पत की पक्ति नहीं कह रहा हूँ कि अधर से अधर, गात से गात। मै ऐसे भी कैसे मिजाज प्रेमी जानता हूँ जो इन मुँहों के पीछे मुँह के बल गिरे हैं, जिन्हें इन कलमुँहियों के पीछे अब मुँह छिपाना पड रहा है और शापनहावर की तरह जिन्दगी भर के लिए औरत जात से मुँह फुला कर बैठे हैं।"[1]

बरसाने लाल चतुर्वेदी ने हास्य-रस पूर्ण सुन्दर निबन्ध लिखे हैं। "चाटुकारिता भी एक कला है" में खुशामदियो की पोल खोली गई है। "बारात की बात" में बारातियो की बेढगी बातो का खाका खीचा गया है। इसी प्रकार "श्री मुफ्तानन्द जी से मिलिये" मै मुफ्तखोरो पर व्यग्यबाण छोडे गये है। "चाटु-कारिता भी एक कला है" में से एक अवतरण देखिए—

"आप पूँछना चाहेगे कि साहित्य कला, कविता कला, शिल्प कला इत्यादि पर जब प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं तो चाटुकारी कला पर एक भी प्रामा-णिक ग्रन्थ क्यों नहीं मिलता ? दरअसल इस कला की यही विशेषता है। यह कला गुप्त कला है। प्राचीन चाटुकार ये नहीं चाहते थे कि इस महान कला का प्रचार अनधिकारी व्यक्तियो में हो जिससे इसका महत्व कम हो जाय। उनकी इतनी दूरदर्शिता के होते हुए भी इस कला ने इतनी उन्नति की कि खुशामद कला के पारगतों की सख्या जितनी आज है उतनी पहले कभी नहीं थीं • अग्रेजी राज्य में इस कला की बडी उन्नति हुई। उन्होने तो यहां तक किया कि इस कला में दक्ष होने वालो को सार्टिफिकेट तक देना प्रारम्भ कर दिया। पर हमारी यह सरकार इस कला की उन्नति के बारे में विशेष ध्यान नहीं दे रही है, यह दु ख की बात है।"[2]

---

१ खरगोश के सीग—पृष्ठ १८

२ "हाथी के पख"—पृष्ठ ३२

इनकी शैली विचारात्मक है। स्मित हास्य की सुन्दर सृष्टि हुई है। भाषा सरल है। विचारों को बोधगम्य करने में पाठक को परिश्रम नहीं करना पड़ता। विश्लेषण स्पष्ट है।

उपसंहार

हिन्दी का निबन्ध साहित्य हास्य-रस की दृष्टि से समृद्ध है। भारतेन्दु काल में आलम्बन, अकाल, टैक्स, खुशामदी लोग रहे, द्विवेदी युग में साहित्यिक आलोचना-प्रत्यालोचनाएं हास्य एवं व्यंग्यमय निबन्धों के रूप में लिखी गईं। आधुनिक युग में राजनैतिक नेता, ब्लैक मार्केट एवं अन्य सामाजिक विद्रूपताएं हास्य का आलम्बन बनीं। भारतेन्दु ने हास्य-रस के निबन्धों की जो धारा बनाई उसे पं० बालकृष्ण भट्ट एवं प्रताप नारायण मिश्र ने आगे बढ़ाया। भारतेन्दु युग में बालमुकुन्द गुप्त हास्य-रस के निबन्ध लेखकों में मील के पत्थर के समान हैं। बाबू गुलाब राय एवं हरिशंकर शर्मा ने हास्य-रस के सुन्दर निबन्ध लिखे। वर्तमान लेखकों में कौशिक, यशपाल, प्रभाकर माचवे, बेढब बनारसी, शिवपूजन सहाय, कृष्णचन्द्र, अन्नपूर्णानन्द, आदि उत्कृष्ट कोटि के निबन्ध लेखक हैं जिनकी कृतियों में उच्च कोटि के हास्य-रस की सृष्टि हुई है।

: १० :

कविता में हास्य

हिन्दी साहित्य में हास्य-रस की परम्परा वीर-गाथा काल से ही पाई जाती है। कायर और डरपोक उस समय में आलम्वन थे। कबीरदास हिन्दी के प्रथम हास्य एव व्यग्य कवि माने जा सकते है क्योकि उन्होने ही प्रथम बार व्यग्य का अस्त्र लेकर धर्मध्वजियो की धज्जियाँ उडाई। विद्यापति ने भी इसके पूर्व अपने "छद्म-विलास" में "जटलाँ" सास को मूर्ख बनात हुए शिवशकर की हँसी उडाई है। जायसी ने भी पद्मावती रतनसेन के प्रथम मिलन (मधु-चन्द्र) प्रसग में हास्य की अच्छी योजना की है। महाकवि सूर ने भी व्यग्य और वक्रोक्ति के अत्यन्त मधुर प्रयोग किये है। "भ्रमर-गीत" उपहास एव व्यग्य की एक उत्कृष्ट धरोहर है। सूर में हमें हास्य के सब प्रभेदो का आभास मिलता है। तुलसीदास की रामायण में भी हास्य-रस यत्र-तत्र विखरा पडा है। नारद-मोह प्रसग एव शिवजी की वारात में हास्य-रस की अच्छी सृष्टि हुई है। रहीम, बिहारी एव गग ने भी हास्य-रस के दोहे और सवैये लिखे। रीतिकालीन अलीमुहीवखाँ, प्रीतम और वेनी "वन्दीजन" ने भी हास्यरस के अनेक कवित्त एव सवैये लिखे।

हास्य के आलम्वनो का क्रमविकास और परिवर्तन भी आदि काल से ही होता रहा है। वीरगाथा काल में कायर, भक्ति काल में आडम्वरी साधु, धर्मध्वजी नेता, भक्तो के आराध्य, सूर के उद्धव, तुलसी के नारद, परशुराम, रीतिकाल में वैद्य, खटमल, दम्भी, सूम और अरसिक रहे है।

"उन्नीसवीं शताब्दी में रीतिकाल का अन्त और आधुनिक काल का आरम्भ होता है। भारतेन्दु बाबू दोनों प्रवाहों के सगम-स्थल पर खड़े हुए हैं। उनके समय से ही जहाँ कविता की अन्य प्रगतियो में परिवर्तन हुआ वहाँ हास्य के क्षेत्र में भी नवीनता आई। हास्य से आलम्वन अव सूम तथा अरसिक ही

नहीं रह गये, सरकार के खुशामदी, दम्भी देशभक्त, पुरानी लकीर के फकीर, फैशन के गुलाम आदि मे भी हंसने की सामग्री मिलने लगी।"[1]

भारतेन्दु-युग हास्यरस के काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। उस समय के लेखकों का दृष्टिकोण और मानसिक अवस्थान मे महान् परिवर्तन लक्षित होता है। "हरिश्चन्द्र तथा उनके सम-सामयिफ लेखकों मे जो एक सामान्य गुण लक्षित होता है वह है सजीवता या जिन्दादिली। सब में हास्य या विनोद की मात्रा थोडी बहुत पाई जाती है।"[2] इस काल के लेखकों ने हास्य के सब प्रभेदों का उपयोग किया है। द्विवेदी-युग में यद्यपि अपेक्षाकृत गम्भीरता छाई रही किन्तु द्विवेदी-युग के उपरान्त आधुनिक युग में हास्य-रस पूर्ण कविताओं का प्रवाह निरन्तर बह रहा है।

पश्चिमी सभ्यता का सम्पर्क, पराधीनता, टैक्स, अकाल, महामारी, विवशता ने हास्य-रस के आलम्बनों पर अत्यन्त गहरा प्रभाव डाला था। कण्ठावरोध था। "मारे और रोवन न दे" वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो रही थी। भारतेन्दु और उनके समसामयिक लेखकवर्ग के पास शासकों एवं खुशामदियों पर मखमल में लपेट कर पादत्राण प्रहार करने के और कोई चारा नहीं था। यही उन लोगों ने किया। हास्य के प्रभेदों का विवेचन अध्याय २ मे किया जा चुका है। आलोच्य-काल के हास्य-काव्य को उसी दृष्टिकोण से नापजोख यहाँ अपेक्षित है।

व्यंग्य

भारतेन्दु बाबू ने कविता में हास्य-रस का प्रयोग किया। उनकी कविताएं उनके नाटकों में तथा उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में मिलती हैं। जनता तक पहुँचने के उद्देश्य से उन्होंने उस समय के प्रचलित छन्दों का ही प्रयोग किया, जैसे आल्हा, मुकरी, दोहा आदि। उपहास सदा किसी उद्देश्य से किया जाता है। उसमें निन्दा का भाव निहित है। अंगरेजी जाति पर लिखी हुई यह मुकरी देखिये—

"भीतर भीतर सब रस चूसै, हंसि हंसि कै तन मन धन मूसै,
जाहिर बातन मे अति तेज, क्यो सखि सज्जन नहिं अंग्रेज।"[3]

---

१. हिन्दी साहित्य मे हास्यरस—डा० नगेन्द्र (वीणा—नवम्बर १९३७)
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ३९३.
३. हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य—जगदीश पाण्डेय

इन राजनैतिक व्यंग्यो में वह तेजी है जैसी विजली केकरेंट में। रस की दृष्टि से यदि देखे तो इस छोटी सी मुकरी में हास्य-रस का अच्छा परिपाक हुआ है। अगरेज आलम्बन है, रस चूसना और धन का हरण करना, बातें बनाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। इसी प्रकार अग्रेजी, शिक्षा और बेकारी, सरकारी अमलो तथा पुलिस पर क्रमश कितनी मार्मिक चुटकियाँ ली है—

"सब गुरुजन को बुरो बतावें, अपनी खिचड़ी आप पकावें,
भीतर तत्व न झूँठी तेजी, क्यों सखि सज्जन नहि अग्रेजी।"[1]

शिक्षा और बेकारी पर—

"तीन बुलाए तेरह आवें, निज निज विपदा रोइ सुनावें,
आँखें फूटें भरा न पेट, क्यों सखि सज्जन नहि ग्रेजुएट।"[2]

सरकारी अमलो पर—

"मतलब ही की बोलें बात, राखें सदा काम की घात,
डोलें पहिनें सुन्दर समला, क्यों सखि सज्जन नहि सखि अमला।"[3]

पुलिस पर—

"रूप दिखावत सरबस लूटै, फन्दे में जो पडे न छूटै,
कपट कटारी हिय में हुलिस, क्यों सखि सज्जन नहि सखि पुलिस।"[4]

"व्यग्य के लिए यथार्थ ही यथेष्ट विषय है। पर जहाँ यथार्थ के फेर में पड कर लोग स्वताल्प ब्यौरों को जुटाने में ही एतिहासिक साधुता का पाण्डित्य प्रदर्शन करने में ही रह जाते है वहाँ आलम्बनो को हम परिचित पाकर निद्य तो समझ लेते है पर हँस नहीं पाते"।[5] भारतेन्दु के व्यग्य में यही विशेषता है कि उन्होने यथार्थ को ही अपना विषय-वस्तु बनाया है और समाज में तत्कालीन प्रचलित दूषणो पर ही व्यग्य लिखे हैं। "मदिरा-पान" पर दो दोहे देखिए—

"वैष्णव लोग कहावहीं, कठी मुद्रा धारि,
छिपि छिपि के मदिरा पियहि, यह जिय माँहि विचारि।

---

१ भारतेन्दु-युग— पृष्ठ १३८
२ " " " "
३ " " " "
४ " " " "
५ " " " "

होटल मे मदिरा पियें, चोट लगे नहि लाज,
लोट लए ठाढे रहत, टोटल देवें काज।"[1]

शराबखोरी पर कैसा करारा व्यंग्य है। विशेषकर उन धर्मध्वजी पाखण्डियों पर जो समाज को धोखा देते हैं। वास्तव में व्यंग्य का उद्देश्य किसी सामाजिक अथवा राजनैतिक कमजोरी पर चोट करना ही होता है। "मुशायरा. चिड़ीमार का टोला, भाँति भाँति का जानवर बोला"—इसी मुशायरे के द्वारा बाँके तिरछे लोगों की खासी सी नुमायश दिखाई गई है। बिगड़ी रुचि के लोगों को वे एक प्रकार से दो पैर का जानवर समझते थे। इसी टोले के मुशायरे मे एक नई रोशनी की प्रेमिका अपने पति से कहती है—

"लिखाय नहीं देतो पढाय नहीं देत्यो, सैंया फिरगिन बनाय नहीं देत्यो।
लहंगा दुपट्टा नीक ना लागे, मेमन का गवनु मगाय नहीं देत्यो॥
सरसो का उबटन हम ना लगैबे, साबुन से देहिया मलाय नहीं देत्यो।
बहुत दिना लग खटिया तोडी, हिन्दुन का काहे जगाय नहीं देत्यो॥"[2]

इसी प्रकार "कब्रिस्तान के नये शायर" नाम की उनकी उर्दू की गजल है, उसकी अन्तिम पंक्तियों में टैक्स पर क्या तीखा व्यंग्य है—

"नाम सुनते ही टिकस का आह करके मर गये,
जानको कानून ने बस मौत का हीला हुआ।"[3]

उस समय हिन्दी उर्दू का व्यवहार सौतिहा डाहो का सा चल रहा था। राजा शिवप्रसाद आदि जो सरकार-परस्त थे, उर्दू की हिमायत किया करते थे और उन्हीं की तूती बोल रही थी। भारतेन्दु ने ऐसे लोगो पर "स्यापा" लिखा—

"है है उरदू हाय हाय, कहाँ सिधारी हाय हाय, मेरी प्यारी हाय हाय,
मुंशी मुल्ला हाय हाय, बल्ला बिल्ला हाय हाय, रोयें पीटें हाय हाय।
टांग घसीटें हाय हाय, सब दिन सोचें हाय हाय, डाढी नोचें हाय हाय।
दुनिया उलटी हाय हाय, रोजी बिलटी हाय हाय, सब मुखतारी हाय हाय,
किसने मारी हाय हाय, खबर नवीसी हाय हाय, दाना पानी हाय हाय,
एडीटरपोशी हाय हाय, सौगतयारी हाय हाय, फिर नहि आनी हाय हाय।"[4]

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली—पृष्ठ ३८१
२. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—अगस्त १८७९, पृष्ठ २९
३. " " " " " "
४. " " " १८७४, भाग १ पृष्ठ ३

उपरोक्त व्यग्य सीमा पार कर गया है। इसमें क्रोध एव निन्दा की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो गई है। भारतेन्दु काल में "स्यापा" हास्यरस की कविता लिखने का एक माध्यम था। पडित बालकृष्ण भट्ट एव प० राधाचरण गोस्वामी ने भी इस माध्यम को अपनाया था। ब्रिटिश शासन था। टैक्सो की भरमार थी। जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। भट्ट जी ने महगी और टैक्स को लक्ष बनाकर लिखा—

"गाओ स्यापा, हय हय टिक्कस, सब मिलि रोओ हय हय टिक्कस।
इन्कमटैक्स के बाबा जन्मे, चुंगी के परपोते,
चाखो यह फल ब्रिटिश रुल को, जिनके हैं हम जीते, हय हय टिक्कस।
जो जन यह स्याया को गैंहें, टिक्कस की व्याधा नहिं पैंहें,
खैर मनाओ आठो याम, एडीटर को खत राखो राम, हय हय टिक्कस।"[1]

जिस प्रकार हनुमान-चालीसा के पाठ करने से बाधायें दूर हो जाती हैं, भट्ट जी ने "स्यापे" का वही महत्त्व बताकर व्यग्य किया है। "इलवर्ट-बिल" के विरोध में उस समय गर्म वातावरण था। प० राधाचरण गोस्वमी ने "इलवर्ट-विल" पर "स्यापा" माध्यम के व्यग्य लिखा—

"है इलवर्ट विल हाय हाय, है है मुश्किल हाय हाय,
है हकतल्फी हाय हाय, सब इकतरफी हाय हाय।
बच्चा बच्ची हाय हाय, चच्चा चच्ची हाय हाय,
सच्चा बनियाँ हाय हाय, बडा कहनिया हाय हाय।
बूढा बेडा हाय हाय, रेड मरेडा हाय हाय,
हिन्दुस्तानी हाय हाय, मरियो नानी हाय हाय।
पार्ली से नट् हाय हाय, मिस्टर बेनट हाय हाय,
जोडो चन्दा हाय हाय, हुक्मी बन्दा हाय हाय।
इगलिश माइन हाय हाय, हर इक लाइन हाय हाय,
जब तक दम है हाय हाय, सिर की कसम हाय हाय।"[2]

यह हास अपहसित हास है। इस व्यग्य में कठोरता अधिक है। भारतेन्दु काल के व्यग्य लेखको में राजनैतिक व्यग्य की मात्रा अधिक पाई जाती है। प० प्रतापनारायण मिश्र का व्यग्य उच्चकोटि का था। उस समय

---

१ हिन्दी प्रदीप—मार्च, सन् १८७८

२ भारतेन्दु—२० जून, सन् १८८३, पृष्ठ ४८

नवयुवकों ने अँगरेजी फैशन का प्रचार बड़ी तेजी के साथ बढ़ रहा था। जागरूक कवि इसमें अपनी भारतीय संस्कृति का ह्रास देख कब चुप रहने वाले थे—

"तन मन सों उद्योग न करहीं, बाबू बनिबे के हित मरहीं,
परदेशिन सेवत अनुरागे, सब फल खाय धतूरन लागे।"[1]

मिश्र जी ने पाखंडियों और दम्भियों पर भी व्यंग्य कसे हैं—

"मुख में चारि वेद की बातें, मन पर तन पर तिय की घातें,
धनि बकुला भक्तन की करनी, हाथ सुमरनी बगल कतरनी।"[2]

जिस प्रकार कबीर दास ने अपने युग के पाखंडियों पर व्यंग्य किये हैं उसी भाँति मिश्र जी ने भी उनकी खूब खबर ली है। दयानन्द स्वामी उस समय ही समाज-सुधार आन्दोलन चला रहे थे। यद्यपि मिश्र जी भी सनातन धर्म के मानने वाले थे किन्तु इनके साथ वे सनातनधर्मी पाखंडियों की धज्जियाँ उड़ाने में कभी नहीं चूकते थे। ऐसे पण्डितों की कमी नहीं थी कि जिनके घर पर वेद के निशान भी नहीं थे लेकिन वे दयानन्द स्वामी पर ईंट-पत्थर फेंकने को तैयार थे—

"पोथी केहि के घर ते आवैं, कबहूँ सपन्यो देखा नाहिं,
रिगविद जुजविद साम अथर बन, सुनियत आल्हखण्ड के माहिं।"[3]

कैसी विडम्बना है? अक्षर ज्ञान नहीं है किन्तु पण्डित बनने में सब से आगे हैं। जिस समय यह निश्चय हुआ कि चन्दा करके वेदों को मंगाया जाय उस समय सब खिसक गये। इन लोगों की धूर्तता पर मिश्र जी ने लिखा है—

"मरत मरत दयानन्द मरिगे, हिन्दू रहे आपु तस सोय,
पूत बियाहैं पांच बरस को, गहने धरत फिरें घरबार।
रुपया फूँकैं जल्लादन पर, घर भरि देंय पतुरियन क्यार,
वेद मगैबे के चन्दा की सुनतै, नाम सूखि जिउ जाय।"[4]

प्रताप नारायण मिश्र की व्यंग्य कला "तृप्यन्ताम्" शीर्षक कविता में सुन्दर प्रकार से प्रस्फुटित हुई है। हिन्दुओं में अपने पूर्वजों के नाम पर तर्पण किया जाता है। उसका प्रदर्शन भी खूब किया है। कवि कहता है कि उन

---

१. प्रताप लहरी (लोकोक्ति-शतक), पृष्ठ ६०.
२. प्रताप लहरी (लोकोक्ति-शतक)—पृष्ठ ६५
३. ,, ,, ,, ६५
४. ,, ,, ,, २१०.

गुलाम हाथो मे कैसे तर्पण करूँ ? इस गुलाम मस्तक को कैसे झुकाऊँ ? उस समय के कविगण अपनी प्रेयसियो की नागिन जैसी जुल्फो का वर्णन करने में नही चूक रहे थे। ऐसे कवियो पर उन्होने करारा व्यग्य किया है—

"महगी और टिकस के मारे हमहि क्षुधा पीडित तन छाम,
साग पात लौं मिलै न जिय भरि लेवौं वृथा दूध को नाम।
तुमहि कहा प्यावैं जब हमरो कटत रहत गोवश तमाम,
केवल सुमुखि अलक उपमा लहि नाग देवता तृप्यन्ताम।"[1]

मरे हुओ को खाने को मिल रहा है किन्तु जीवित व्यक्ति भूखो मर रहे हैं—

"मरेहु खाउ तुम खीर खाँड, हम जियहि क्षुधा कृश निपटि निकामा।"[2]

व्यग्य में जितनी कटुता अधिक होगी, जितनी तिक्तता अधिक होगी, वह चोट उतनी अधिक करेगी। "तृप्यन्ताम" कविता के अन्त में भी मिश्र जी यह कह कर कि अकाल और महँगी में किसी और देवता का तर्पण तो सभव नही है, केवल मृत्यु देवता के तृप्त होने के सभी साधन मौजूद हैं —

"लैसन इनकम चुँगी चन्दा, पुलिस अदालत बरसा घाम,
सब के हायन असन वसन जीवन, ससयमय रहत सुदाम।
जो इनहू ते प्रान बचै तो गोली बोलति हाय धडाम,
मृत्यु देवता नमस्कार तव सब प्रकार बस तृप्यन्ताम॥"[3]

मिश्र जी के व्यग्य में पित्त का अश भी अधिक हो गया है। इसलिए उसमें घृणा का भाव अधिक प्रवल हो गया है। कर्जनशाही का समय था और जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। बालमुकुन्द गुप्त का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी व्यग्य साहित्य में गुप्त जी की देन बहुत ही महत्वपूर्ण है। उन्होने भी अपने समसामयिक एव पूर्ववर्ती कवियो की भाँति लोक-साहित्य के छन्द चुने। टेसू, जोजीडा, आदि में ही उनकी कविता मिलती है। प्रेमचन्द की भाँति गुप्त जी भी उर्दू से ही हिन्दी में आये थे। इसलिए उनकी भाषा में उर्दू का चुलबुलापन और रवानगी मिलती है। उनका व्यग्य मुख्यत राजनैतिक एव साहित्यिक है।

---

१ ब्राह्मण—१५ अक्टूबर, हरिश्चन्द्र सवत् ५
२ " " " "
३ गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ६६८

लार्ड कर्जन के समय में दिल्ली दरबार हुआ था। कर्जन ने उस पर देश का बहुत सा रुपया खर्च किया था। उस घर-फूँक तमाशा दिखाने वाले जश्न पर गुप्त जी ने टेसू लिखा—

> "अब के टेसू रंग रंगीले, अब के टेसू छैल छबीले।
> होगा दिल्ली में दरबार, सुनकर चौंक पड़ा संसार।
> शोर पड़ा दुनिया में भारी, दिल्ली में है बड़ी तयारी।
> देश देश के राजा आवें, खेमे डेरे साथ उठावें।
> घर दर बेचो करो उधार, बढ़िया हो पोशाक तयार।
> हाथी घोड़े भीड़ भड़ाका, देखें सब घर फूँक तमाशा ॥"[1]

जब कर्जन ही इस धनुष यज्ञ के राम थे तो उनके वैभव को देखने उनकी सास और सालियाँ विलायत से आईं। हिन्दुओं में न्यौछावर करके पानी पीना प्रसन्नता का द्योतक है। इस रिवाज के माध्यम से गुप्त जी ने कैसी मार्मिक चुटकी ली है—

> "माता सास ठाठ यह देखें, वार वार के पानी पीवें।
> देखेंगी यह छटा निराली, पास लाट के सालू साली ॥"[2]

"मुफ्त का चन्दन, घिस मेरे नन्दन"। दूसरे के पैसे पर ही जब शान दिखाने को मिले तो उसमें कमी ही क्यों की जाय। गुप्त जी ने कर्जन की उस शानबान का जिसके आगे सम्राट के 'ड्यूक आफ कनाट' को भी नीचा देखना पड़ा था, इस प्रकार दिया है—

> "मुझसा कोई हुआ न होगा, यह जाने कोई जानन जोगा।
> मैं जो कुछ चाहूँ सो होय, मेरे ऊपर और न कोय।
> राजा का भाई था आया, उसको भी नीचा दिखलाया।
> पहले मुझको मिला सलाम, तब फिर उससे हुआ कलाम।
> मुझको सोना उसको चाँदी, मुझसे ओछी उसकी बाँदी ॥"[3]

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना लोकोक्ति को चरितार्थ करके हास्य की सृष्टि की गई है। रस की दृष्टि से कर्जन इसके आलम्बन हैं, उसकी ऐंठी मेंठी बातें उद्दीपन और अपने को राजा से भी ऊँचा सिद्ध करने के प्रयास

१. गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ६६८
२. " " " ६६९
३. " " " ६७०

आदि सचारी भाव है। वास्तव में ड्यूक को चाँदी की कुर्सी और कर्जन ने अपने लिए सोने का सिंहासन ही रक्खा था। किचनर और कर्जन में इस कारण मतभेद हो गया था कि किचनर वाइसराय की कौंसिल में फौजी मेम्बर के अस्तित्व को फौजी मामलो में अनुचित हस्तक्षेप समझते थे। वे स्वय फौजी मामलो में भी सर्वेसर्वा रहना चाहते थे। गुप्त जी ने इस सघर्ष को "मल्लयुद्ध" का नाम दिया है। कर्जन ने एक बार हिन्दुस्तानियो को भूँठा कहा था। इस पर व्यग्य करते हुए वे लिखते हैं—

"बन के सच्चो के सरदार, करके खूब सत्य परचार।
धन्यवाद सुनते थे कर्जन, उतरी एक स्वर्ग से दर्जन।
उसने लेकर तागा सुई, जादू की एक खोदी कुई।
उससे निकली फौजी बात, चली तबेले में तब लात।
भिड गए जगी मुल्की लाट, चक्की से चक्की का पाट।
गुत्थम गुत्था धींगा मुश्ती, खूब हुई दोनों में कुश्ती।
ऊपर किचनर नीचे कर्जन, खडी तमाशा देखे दर्जन।
कलम करे कितनी चरचर, भाले के वह नहीं बराबर।
जो जीता सो मजे उडावे, जो हारा सो घर को जावे॥"[१]

सैनिक और सिविल शक्तियाँ भिडी। इसका फल भोगना पडा बेचारे बगाल को। मास्टर साहब स्कूल में प्रधानाध्यापक से गालियाँ खाकर जाँयें और घर पर जाकर अपने बच्चो पर उबल पडें। ठीक इसी प्रकार कर्जन जाते जाते बग-भग करके अपना रोष प्रकट कर गए—

"आहा, ओहो, हुर्रे हुर्रे, बग देश के उड गए धुर्रे,
रह न सका भारत का लाट, तो भी बग किया दो पाट।
पहले सब कुछ कर जाता हूँ, पीछे अपने घर जाता हूँ,
बेशक मिली उधर से लात, किन्तु यहाँ तो रह गई बात।
अफसर से खा लेना मार, पर अधीन को दें पैजार,
जबर्दस्त से चट दब जाना, जेरदस्त को अकड दिखाना॥"[२]

कर्जन के कृष्ण मुख कर जाने के बाद मार्ली मिन्टो आये किन्तु बग-भग ज्यो का त्यो रहा। लिबरल दल के मार्ले ने भी उसे यह कह कर टाल दिया—

---

१ गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ७१०
२ „ „ „ „ ७१०

"लिबरल दल की हुई वहालो, खुशी हुआ तब सब बगाली,
पीटें ढोल बजावें ताली, होली है भाई होली है।
नहीं कोई लिबरल नहिं कोई टोरी, जो परनाला सो ही मोरी,
दोनो का है पन्थ अघोरी, होली है भाई होली है।"[1]

कर्जन के चेले पूर्वी बगाल के लेफ्टीनेन्ट महोदय को लड़को के राजनैतिक आन्दोलन का दमन कर सकने के कारण नीचा देखना पड़ा। वे कुछ स्कूलो को यूनिवर्सिटी द्वारा अमान्यता दिलाना चाहते थे, किन्तु भारत सरकार उनके पक्ष में नहीं थी। अन्त में उसने त्याग पत्र दे दिया लेकिन इसका भी कोई असर नही हुआ। इस पर गुप्त जी का व्यंग्य देखिए—

"नानी बोली टेमू लाल, कहती हूँ तुझसे सब हाल।
मास नवम्बर कर्जन लाट, उलट चले शासन का ठाट।
फुलरगज को गद्दी देकर, चल दिये अपना सा मुंह लेकर।
फुलरगज ने की यह जग, सब बगाल हो गया दंग।
लड़को से की खूब लडाई, पुरखो की पल्टन बुलवाई।
अन्त तक लडको से लडे, आखिर को उल्टे मुंह पडे।
पकड़ा पूरा एक न साल, आप गये रह गया अकाल।
खूब वचन गुरवर का पाला, पर आखिर को हुआ दिवाला॥"[2]

गुप्त जी सनातन धर्मी थे। उनमें एक विचित्रता यह थी कि जहा वे पोंगा पन्थियो के विरोधी थे वहा वे जाति क्रान्तिकारी सुधारो के भी विरुद्ध थे। उनकी एक कविता "प्लेग की भूतनी" में कटु व्यंग्य है। यह व्यंग्य वृद्धो पर किया गया है जो कि अपने दकियानूसीपन से भारत की प्रगति मे रोड़े अटका रहे थे—

"कच्चे कच्चे लडके खाऊँ, युवती और जवान,
बूढो को नहिं हाथ लगाऊँ, बूढा बेईमान।"

प्लेग का जवानो के प्रति प्रेम एवं वृद्धो को जीवित रखने की चेष्टा में जो असगति है उसी से हास्य की उद्भावना हुई है। सर सैयद अहमद खा लोगो को कांग्रेस से अलग रहने की सलाह दिया करते थे। गुप्त जी इससे तिल-मिला उठे थे। उन्होंने अपना क्षोभ "सर सैयद का बुढ़ापा" नामक कविता में व्यक्त किया है—

१. गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ७१८
२. " " पृष्ठ ७१८.

"बहुत जी चुके बूढे बाबा, चलिए मौत बुलाती है,
छोड सोच मौत से मिललो, जो सब का सोच मिटाती है ।"[1]

मौत का सप्रेम निमन्त्रण कौन पाना चाहेगा ? सर सैयद का विरोध उर्दू साहित्य में महाकवि अकबर ने बडे जोर से किया था किन्तु हिन्दी कविता में यह विरोध शायद गुप्त जी ही की कविता में ध्वनित हुआ है । अकबर से गुप्त जी की समता और भी कई बातो को लेकर है । दोनो ही अग्रेजो के खिलाफ और उनके आलोचक थे । दोनो ही योरोप से आने वाली रोशनी को नापसन्द करते थे और दोनो ही सुधारो के नारो से घबराते थे तथा दोनो ही ने अपने मजामत के प्रकाशनार्थ कटूक्ति पूर्ण पद्यो का माध्यम चुना था । गुप्त जी जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सुधारो को शका की दृष्टि से देखते थे क्योकि उन्हे सुधारो के नारो के बीच में वास्तविकता लुप्त होती दिखाई देती थी—

"हाथी यह सुधार का लोगो, पूँछ इधर भई पूँछ उधर ।
आओ आओ पता लगाओ, मूँड किधर भई मूँड किधर ।
इधर को देखो, उधर को देखो, जिधर को देखो दुम की दुम ॥"[2]

प० प्रताप नारायण मिश्र की छाप श्री बालमुकन्द गुप्त पर स्पष्ट दिखलाई पडती है । यद्यपि अति आधुनिक व्यग्य उस समय से अधिक पैना और उन्नत है परन्तु भारतेन्दु काल के लेखको का सबसे बडा श्रेय इस बात में है कि उन्होने इन नई वस्तुओ का प्रारम्भ हिन्दी में किया है । श्री बालमुकन्द गुप्त के बारे में प० श्री नारायण चतुर्वेदी के इस कथन से हम पूर्णत सहमत है कि "गुप्त जी ने हिन्दी साहित्य में सामयिक प्रश्नो पर क्रमपूर्वक व्यग्य-विनोद लिखने की परम्परा प्रारम्भ की । उनकी चलाई परम्परा आज भी हिन्दी पत्रो में चल रही है । कहा है कि "अनुकरण सबसे बडी प्रशसा है", हिन्दी ससार उनका अनुकरण करके हृदय से आदर कर रहा है, अवश्य ही उनके व्यग्य में कमियाँ पाई जाती है जो प्रारम्भिक तथा परम्पराहीन कृतियो में मिलती है । उनके पास पूर्ववर्ती पडितो के बनाये मापदण्ड न थे । किन्तु यह एक अश में ही असुविधा थी क्योकि परम्पराओ से बचे रहने के कारण उनकी रचनाओ में ताजगी थी । उनमें एक विशेष प्रकार की स्पष्टता और सिधाई थी जो बाद की कृतियो की कृत्रिमता में बहुधा मन्द हो जाती है । आज का व्यग्य-साहित्य अधिक उन्नत, अधिक तीखा, अधिक "मखमल में लपेटा" और

---

१ गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ६२१
२ „ „ पृष्ठ ६२२

शर्करा, मण्डित है। उसकी ध्वनि अधिक गहरी है किन्तु गुप्त जी के व्यंग्य में कुछ बात ही अनोखी थी। उसमें जो स्वाभाविकता थी और हृदय में गुदगुदाने तथा मर्मस्थल पर हल्की चोट करने की जो शक्ति थी वह आज कम देखने को मिलती है।

इसी काल में पं० शिवनाथ शर्मा भी अच्छे व्यंग्य लेखक हुए हैं। उनकी पुस्तक "मिस्टर व्यास की कथा" हास्य-रस का सुन्दर ग्रन्थ है। "आनन्द' नामक साप्ताहिक पत्र में "मिस्टर व्यास की कथा" शीर्षक से आप हास्य-रस के लेख एवं कविता लिखा करते थे। ब्रिटिश काल में जहाँ सरकार की नीति पर व्यंग्य बाण छोड़ने वाले थे वहाँ खुशामदी और "जी-हुजूरों" की भी कमी नहीं थी। शर्मा जी ने ऐसे व्यक्तियों को आड़े हाथों लिया है। "तर्ज खुशामद या वशीकरण विधि" शीर्षक कविता में आप लिखते हैं—

"देखते साहब को हो जावे खड़ा,
टोपी जूता फेंक के होवे बड़ा।
कैसरशाही में झुके जिस तरह घास,
लोट आए दण्डवत कर बने लाम।
या झुकाए हाथ को दमकशी से,
फिर कहे, आदाब करता है गुलाम।
बंदगी का साथ छू ले जमीं से,
फिर कहे, आदाब करता है गुलाम।
चुप रहे गोया लगी मुंह में लगाम,
फिर अगर साहब कहे, सब चैन है?
तो कहे, सब चैन है सब चैन है॥[1]

उस समय लोग खिताब पाने के लिए तरह-तरह के अनैतिक कार्य करते थे, अंग्रेज कलक्टर एवं उनकी मेमों को देवताओं की तरह पूजते थे। ऐसे लोगों को आलम्बन बना कर शर्मा जी ने लिखा है—

मेमहिं कुलदेवी करि मानें,
बाबा-गन कहँ बावा जानें।
बैरा को गुरुसौंसनमानै,
पितामही आया कह जानै।"[१]

उनके लिए साहब कुलदेवता, मेम कुलदेवी बैरा गुरु और आया पितामही थे। ऐसे खुशामदियो के प्रति अपनी घृणा और अमर्ष के भाव इसी प्रकार व्यक्त किये जा सकते थे। प० प्रताप नारायण मिश्र की छाप उस युग के प्रत्येक कवि पर स्पष्ट दिखलाई पडती है। मिश्र जी लिखित "तृप्यन्ताम्" शीर्षक कविता का उल्लेख पीछे किया जा चुका है, शर्मा जी ने भी इसी शीर्षक से वडे मार्मिक व्यग्य लिखे—

"छापा सबै अचारजकीन,
घर-घर कलम लई छिरकीन।
फारम एक जबै लिखलीन,
बनि लिक्खाड भए परबीन।
अब आचार्य, रहै बेकाम,
गहु यह कोरी "तृप्यान्ताम्"।"[२]

अधकचरे लेखक जो कलम पकडना भी नही जानते हैं उन लोगो को इसमें आलम्वन वनाया गया है। शर्माजी ने खोखले समालोचको की भी अच्छी खबर ली है—

"बने समालोचक के रूप,
सुन्दरताहू गने कुरूप।
नकल करें उच्छिष्ट समान,
निन्दा करिबे के हित बान।
पुनि लिखिबे को कह्यो न काम,
बस अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।"[३]

उनकी एक कविता "स्वार्थ की सवारी" शीर्षक है इसमें उन्होने लाला, मुशी, पडित, साहव, वावा जी, वकील, एडीटर, आदि की स्वार्थपरता पर छीटे कसे हैं। सव लोगो का प्रारम्भ में सम्मिलित गान कराया है—

---

१ मिस्टर व्यास की कथा,—पृष्ठ २०१
२ " " १४४
३ " " १४८

"महाराज स्वारथ इधर आज आते।
अहा क्या मजेदार से यार आते।
जमाने के हाकिम हैं शागिर्द इनके।
ये कानून को रोज रद्दी बनाते।
सचाई शकल देख कोसो पै भागी।
धरम को ये धक्के व मुक्के लगाते।
तनज्जुल को मसनद के ऊपर बिठाते।
अहा इनकी बीबी है रिश्वत दुलारी।
इसी से कचहरी के हाकिम कहाते।
हिकारत मे है आपका दोस्ताना।
हया पर हजारो तबाह सुनाते।
डरो इनसे सब हिंद के खैर ख्वाहो।
है हिन्दू व हिन्दी को कोड़े लगाते॥"[1]

रिश्वतखोरी, झूठ, हिन्दी से घृणा आदि जो उस समय की प्रचलित बुराइयां थीं, उन बुराइयों के करने वालों की अच्छी तरह से खबर ली गई है। मिश्र जी की तरह इन्होंने भी आल्हा लिखे। एक आल्हा "राजनैतिक दंगल" शीर्षक से लिखा जिसके आलम्बन वे पढ़े लिखे लोग हैं जो कि राजनैतिक पहलवानी में दम भरते थे और जिनका काम सभा सुसाइटियों में झगड़ा पैदा करना होता था—

"सूरत नगर सुभग सूरत मह, तहां तापती पुण्य प्रवाह।
मची कांग्रेस दल की लीला, फैले पूर्ण रूप उत्साह॥"

×

"रास बिहारी बने सभापति, तिलक तिलक बिन सूने माथ,
यह लख नरम दल देख तर्क बस, बाताबाती चलिगै हाथ।
"हम मारिगे", "हम पीटिगे" कहि कहि गरम चले लठ तान,
जूता जूती सोटा डंडा, लगे चलन, मचिगो घमसान।
चली द्वन्द की झपटा झपटी, निपटहि कांग्रेस मैदान,
लगी चोट जब भागे भैया, प्रतिनिधि करि हाय हाय की तान।
सेठी कांपे, साहब नाचे, लै लै लम्प साज को नाम,
खन्ना खन्ना करें मुसल्ला, हिन्दुन परो राम से काम।
"गाड गाड" कहि भागे साहब, गहे सबै पतलून सभाल।"[2]

१. [illegible] —पृष्ठ १४८.

२. ,, ,, १०८

जो हो, श्री विश्वनाथ शर्मा एक अच्छे व्यग्य लेखक थे। उन्होंने परिमाण में अधिक लिखा किन्तु जहाँ परिमाण में अधिक लिखा जाता है उसमें स्तर का कुछ गिर जाना स्वाभाविक ही है। ऐसा प्रतीत है कि इन्हें सम्पादक होने के नाते कुछ न कुछ नित्य लिखना पडता था। इनके व्यग्य में अपेक्षित चोट का अभाव है। तुकवन्दी ही अधिक हैं। शब्द-जन्य हास्य है जो कि वहुत उच्च कोटि का नहीं है। उसमें साहित्यिकता कम तथा अस्वाभाविकता अधिक है।

भारतेन्दु युग में हास्य लेखको की जो एक वाढ आ गई थी वह द्विवेदी युग में क्षीण हो गई। द्विवेदी जी गम्भीर व्यक्ति थे और उनके युग के साहित्य में इसका प्रभाव स्पप्ट है। भापा-परिष्कार, खडी वोली की स्थापना आदि विपयो में लोगो की शक्ति का व्यय अधिक हुआ। द्विवेदी युग में गम्भीरता छाई रही। द्विवेदी युग में व्यग्य चित्रो का प्रचलन अवश्य हुआ। उस युग की पत्र पत्रिकाओ में "आज" की "अरवी न फारसी", "ससार" की "छेडछाड" या "देशदूत" की "भग की तरग" न थी। हिन्दी जनता में पठन का प्रचार वहुत कम था। शिक्षित वर्ग अग्रेजी पत्र का ही ग्राहक था। ऐसी परिस्थितियो में हिन्दी पत्रिकाओ को विशेष आकर्षक तथा रोचक वनाना अनिर्वाय था। द्विवेदी जी को आधुनिक "वेधडक" या "चोच" की प्रतिभा नहीं मिली थी। वे सरस्वती में निम्नकोटि की सामिग्री जाने भी नही देना चाहते थे। उनका लक्ष्य था हिन्दी पाठको की रुचि का परिष्कार। हिन्दी में ध्येय-पूरक वस्तु न पाकर उन्होंने सस्कृत का आश्रय लिया। "मनोरजक-श्लोक" खण्ड के अन्तर्गत सस्कृत के मनोरजक एव उपयोगी श्लोक नियमित रूप से भावार्थ सहित प्रकाशित होने लगे।

केवल मनोरजक श्लोको को ही पाठको की तृप्ति का अपर्याप्त साधन समझ कर द्विवेदी जी ने यथावकाश "विनोद और आख्यायिका" खड का समावेश किया। "हँसी-दिल्लगी" खड की एक-वर्पीय योजना सम्भवत स्वरचित "जम्वुकी न्याय", "टेसू की टाँग" और "सरगौ नरक ठेकाना नाहिं" को विशेप महत्व देने और उनके व्यँग्य तथा आक्षेप की अप्रिय कटुता को सह्य वनाने के लिए ही की गई थी। ऐमा भी हो सकता है कि यह खड प्रयोग रूप में समाविप्ट किया गया है परन्तु लेखको और पाठको की अरुचि के कारण वन्द कर दिया गया हो।

"द्विवेदी-युग" में हास्य की कमी पड़ गई। मिश्र जी (प्रताप नारायण) की भाँति सजीव तथा घर फूँक तमाशा देखने वाले लेखक उस समय नहीं रह गये थे। संघर्ष उस युग में बहुमुखी हो चला। फलतः लेखकों की प्रतिभा भी अनेक ओर बँट गयी थी। व्यंग्य का प्रयोग अब उतना अधिक न रह गया जितना भारतेन्दु-युग में था। तब भी हास्य रस के छींटे यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। द्विवेदी जी स्वयं पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वालों से चिढ़ते थे। ऐसे लोगों को आलम्बन बना कर उन्होंने "बरहू अलैहन" नाम से "सरगौ नरक ठिकाना नाहिं" शीर्षक व्यंग्य लिखा है—

"अचकनु पहिरि बूट हम डाँटा, बाबू बनेन डेरात डेरात,
लागे न जावे जाय समझ माँ, कण्ठु फूट तब बना बतात।
जब तक हमरे तन माँ तनिकौ, रहा गाँउ के रस का असु,
तब तक हम अखबार किताबें, लिख लिखउँकीन उजागर बंसु।"[1]

द्विवेदी जी ने अन्योक्ति के माध्यम से भी व्यंग्य की सृष्टि की—

"हरी घास खुरखुरी लगै अति, भूसा लगै करारा है,
दाना भूलि पेट यदि पहुँचै, काटै अस जस आरा है।
लच्छेदार चीथड़े कूड़ा, जिन्हें बुहार निकारा है,
सोई सुनो सुजान शिरोमणि, मोहन भोग हमारा है॥"[2]

इसमें उन सम्पादकों को जो रद्दी चीजों को छाप कर जनता की मनोवृत्ति बिगाड़ते थे और सुन्दर रचनाओं को लौटा देते थे, आलम्बन बनाया गया है। सत्साहित्य को हरी घास की उपमा तथा गन्दे साहित्य को, भैंसे की उपमा देकर अन्योक्ति को सुन्दर रूप से निबाहा गया है।

द्विवेदी युग के हास्य कवियों में नाथूराम "शंकर" का विशिष्ट स्थान है। शंकर जी आर्य समाजी थे। वे अन्ध विश्वास के कट्टर विरोधी थे। उनके पास विरोध प्रदर्शन का अस्त्र था, व्यंग्य। ब्राह्मणों को आलम्बन बना कर उनका लिखा एक व्यंग्य यह है—

"ठेके पर सेफट वैतरणी देकर दाटी मूँठ,
पाटर वाईसिकल के द्वारा बिना गाय की पूँछ,

---

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानुसिंह, पृष्ठ १८०.
२. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानुसिंह, पृष्ठ १८१.

मरों को पार उतारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।"[1]

इनके व्यग्य में ईर्ष्या तथा घृणा की मात्रा अधिक मिलती है। इनका व्यग्य फटकार तथा फब्तियो से ओत-प्रोत है। इन्होंने एक कविता में व्रजराज से पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने के वहाने भारतीय जनो पर व्यग्य किया है—

"भडक भुला दो भूतकाल के सजिए वर्तमान के साज,
फैशन फेर इण्डिया भर के गोरे गार्ड बनो ब्रजराज,
गौरवर्ण वृपभानु सुता का काढो काले तन पर तोप,
नाथ उतारो मोर मुकुट को सिर पै सजो साहवी टोप,
पाउडर चन्दन पोछ लपेटो, आनन की श्री ज्योति जगाय,
अजन अँखियो में मत पाओ, आला एनक लेहु लगाय।"[2]

फैशन परस्तो के तो वे पीछे ही पड गये थे। फैशन के गुलामो को आलम्बन वना कर लिखा हुआ उनका यह कवित्त बहुत प्रसिद्ध हुआ है—

"ईस गिरजा को छोड, ईश गिरजा में जाय,
शकर सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे।
बूट पतलून कोट कम्फर्टर टोपी डाट,
जाकट की पाकट में वाच लटकावेंगे।
घूमेंगे घमडी वने रडी का पकड हाथ,
पियेंगे वरडी मीट होटल में खावेंगे।
फारसी की छारसी उडाय अग्रेजी पढ़,
मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।"[3]

शकर के काव्य में तिक्तता का अश अधिक है और कही अश्लीलता भी आ गई है। सयम तथा शिष्टता की कमी खटकती है।

ईश्वरी प्रसाद शर्मा भी द्विवेदी-युग के व्यग्यकार थे। उनकी "लठ शिरोमणि" शीर्षक कविता में ऐसे लोगो का खाका खीचा गया है जो अपने रोव-दोव से लोगो को दवा देना चाहते हैं—

---

१ हास्य के सिद्धान्त—पृष्ठ १३२
२ सरस्वती—पृष्ठ २३, सन् १६०६
३ अनुराग रत्न—पृष्ठ २३६

"खोली जो जुबान है खिलाफ में हमारे,
हम मारे लात लात जूतों के कचूमर निकारेंगे।
फोरेंगे तुम्हारी खोपड़ी को खंड-खंड करि,
हो सके सम्हालो नहि जान तोरि डारेंगे।
पोल मत खोलना हमारी कबौ भूल करि,
हमहूँ तिहारे काज बहुत सवारेंगे।
झूमि-झूमि लायेंगे अपार धन चन्दा करि,
खाइ आप कछुक तुम्हारी जेब डारेंगे।"[1]

ईश्वरी प्रसाद शर्मा का व्यंग्य भी असंयत तथा परुषता लिए हुए है। इनके तथा शंकर के व्यंग्य में हास्य है। द्विवेदी-युग में "पढ़ीस" का व्यंग्य बहुत ही मार्मिक रहा है। ये "अवधी" भाषा में लिखते थे। उनकी मृत्यु पर "माधुरी" नामक मासिक पत्र में "पढ़ीस-अंक" निकाला था। आधुनिक शिक्षा की महत्त्व-हीनता पर "पढ़ीस" ने लिखा—

"नवि पट्टी विपकी असट्टियमा,
लरिकउनू ए० मे० पास किहिनि।
पुरखिन का पानी सुवयि मिला,
लरिकउनू ए० मे० पास किहिनि।
खल्ला-बल्ला सबु बेंचि खोंचि,
दुधि सडका मनिया-आडर किहिनि।
उद्दु उडिगा चाहिय पानी मा,
लरिकउनू ए० मे० पास किहिनि।"[2]

पिता जी ने सब कुछ बेचकर दो सौ रुपये लड़के को मनीआर्डर द्वारा विद्याध्ययन को भेजा और उसने सब नागवानी में बेकार खो दिया और उसके बाद—

"खालर नकटाई सूट हैट,
अगना पर पहुँचे सजे बजे।
नउकर न पायनि पोचनि फी,
लरिकउनू ए० मे० पास किहिनि।"[3]

१ [illegible]—पृष्ठ ७५
२. चकल्लस—पृष्ठ ३
३. ,, पृष्ठ ८८.

ए० मे० पास करने के बाद पाँच रुपये की भी नौकरी न मिलना कितना हास्यास्पद है। मुकदमेबाजी का रोग ग्रामीणों में बुरी तरह घर कर गया था। ऐसे लोगों को आलम्बन बना कर "मुग्हू चले कचेहरी का" शीर्षक कविता में "पढीस" जी ने अच्छा व्यगय कसा है—

"बट्टू बाबा की बिटिया का,
इनका प्याता गरियायि दिहिसि।
बसि बजी फउजदारी तिहिते अब,
पहुचे आप कचेहरी का।
दुयि बीसी रुपया उनन उम्रा,
लयि लिहिनि उकील बलहटरजी।
तारीख बढायनि पेसी की,
तब पहुँचे आप कचेहरी का।
युहु दीखु मुकदमाबाजी का,
नसनस मा पइठ पढ़ीसन के।
काली की किरपा कयिसि होय,
जो छुटिसि रोग, कचहरी का।"[1]

"हम कनउजिया बांमन आहिन" शीर्षक कविता में अनमेल तथा वृद्ध-विवाह पर व्यग्य किया गया है। तीन बीवियां हैं और तेरह लडके हैं लेकिन घर का क्या हाल है—

"दुलहिनी तीन, लरिका त्यारह,
सब मच्छा - भवनति पेटु भरवि।
घरमा मूसा डडयि प्यालयि,
हम कनउजिया बांमन आहिन।
विटिया बइछीं बत्तिस की,
पोती वर्स अठारह की झलकीं।
मरजाद का झडा झूलि रहा,
हम कनउजिया बांमन आहिन।"[2]

उस पर भी अभी विवाह की इच्छा है—

"चउथेपन चउथ बियाहे के,
विद्दकरा बइठ घर का घेरे।

---

१ चकल्लम—पृष्ठ ८६
२ चकल्लस—पृष्ठ ८६

चउथे दिन चउयो चालु चलीं,
हम कनउजिया बांमन आहिन ।"[1]

फ़कीर जी का व्यंग स्वाभाविक है। उनमें कटुता कम है। यह शर्करा-मंडित है।

१० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी इस काल के प्रतिभा-सम्पन्न हास्य लेखक हुए हैं। उनका अधिकतर हास्य वाणी-जन्य रहा है। उनको उस समय में "हास्यरसावतार" कहा जाता है। कहीं-कहीं इनकी कुछ प्रकाशित पंक्तियाँ मिल जाती हैं—

"किसी धर्म पर जब नहीं भक्ती, हुई मेम से तब अनुरक्ती।
ईसा पर विश्वास जमाया, क्रिस्तानी से नेह लगाया।
आय पिता ने लाट जमाई, फिरी राय तब मेरी भाई।
है मौका तब ऐसा आता, बदल विचार सभी का जाता।"[2]

इसमें आलम्बन ऐसा व्यक्ति है जो पाखंडी है, जो कहता कुछ है और करता कुछ है। जिन लोगों के कोई सिद्धान्त नहीं है, स्वार्थ ही जिनका एक-मात्र सिद्धान्त है। मेम से प्रेम हो गया तो साथ में ईसाई धर्म में भी लग गया और परिणाम-स्वरूप विचार बदल गये और हो गये ईसाई। इसी तरह से एक विधवा-विवाह के पक्के समर्थक का किसी क्वांरी लड़की से सगाई हो जाने पर उनके विचार कैसे बदल जाते हैं—

"फिर समाज को देखा भाला, नहीं यहाँ कुछ और कसाला।
केवल आँखें करके बन्द, खाओ पिओ करो आनंद।
विधवा से लेने की दिच्छा हुई चित्त में मेरे इच्छा।
पर क्वांरी से हुई सगाई, फिरी राय तब मेरी भाई।
है मौका जब ऐसा आता, बदल विचार सभी का जाता।।"[3]

इसी प्रकार श्री [illegible] ने "वैद्यों" की भर्त्सना की है—

"सेर भर सोने को हजार मन कण्डे में,
खाक कर छोड़ू वैद्य रस जो बनाते हैं।

१. [illegible]—पृष्ठ ६०.
२. प्रेमा (हास्यांक) अप्रैल १९३१—पृष्ठ ६३
३. ,, ,, ,, ,,

लाला उसे खाते तो यम को लजाते,
और बूढ़े उसे खाते तो देव बन जाते हैं।
रस है या स्वर्ग का विमान है या पुष्प रथ,
खाने में वे नहीं स्वर्ग ही सिधाते हैं।
सुलभ हुआ है खैरागढ़ में स्वर्गवास,
लूट धन छोटूं वैद्य सुयश कमाते हैं।"[1]

वैद्य लोग भोले मरीजो को किस प्रकार वहका कर धन लूटते है और किस प्रकार उस कीमती रस को पीकर शीघ्र ही स्वर्ग लोक की यात्रा को प्रस्थान कर जाते है। यह चित्रण स्वाभाविक है तथा इसमें कटुता की मात्रा भी कम है।

निराला जी यद्यपि हास्य-कवि के रूप में प्रसिद्ध नही है किन्तु उनके साहित्य के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि व्यग्य लिखने की जो असाधारण प्रतिभा उनमें विद्यमान है वह अद्भुत है। "परिमल" काल से ही कवि का इस ओर ध्यान रहा है। पचवटी-प्रसग में सूर्पणखा के चित्रण में गुप्त हास्य है। आगे कही-कही तीखे व्यग्य भी है। यथा—

"छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
देवी-भोगियों की तो बात ही निराली है।"[2]

यहाँ देवो के साथ भोगियो कह कर खूब फबती कसी गई है। इसमें कवि का तात्पर्य व्यग्य द्वारा दोनो से साभिप्रायत्व का आरोप करना है। "अनामिका" नामक उनके सग्रह में दम्भी और वगुला भगतो की खबर ली गई है—

"मेरे पडोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन,
झोली से पुए निकाल लिऐ,
वढते कपियों के हाथ दिए,
देखा भी नहीं उधर फिर कर,
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
चिल्लाया किया देर दानव,
वोला मैं "धन्य श्रेष्ठ मानव।"

---

१ प्रेमा (हास्यरसाक) अर्दल १९३१—पृठ १०२
२ परिमल—पृष्ठ १२

अथवा

"ढके हृदय में स्वार्थ, लगाये ऊपर चन्दन,
करते समयनदीश-नन्दिनी का अभिनन्दन।" [1]

वृद्ध विवाह को आलम्बन बना कर "सरोज-स्मृति" शीर्षक कविता में निराला जी ने कैसा तीखा व्यंग्य लिखा है—

"ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके वर-कन्या अर्थ खेद।"
× × ×
"ये जो जमुना के से कछार,
पद फटे बिवाई के उधार।
खाने के मुख ज्यों, पिये तेल,
चमरौंधे जूते से सकेल।
निकले, जी लेते, घोर गन्ध,
उन चरणों को मैं यथा अन्ध।
कल घ्राण-प्राण से रहित,
हो पूजूं ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से गिरजा विवाह,
करने की मुझको नहीं चाह।"

कवि का व्यंग्यात्मक कविता का पूर्ण विकास "कुकुरमुत्ता" में दिखलाई पड़ता है। सन् ४२ में जब यह रचना प्रथमबार प्रकाश में आई, लोग इसे देख कर चौंक पड़े। साम्यवाद का विपुल [illegible] [illegible] था, प्रगति-सम्प्रदाय जब नया-नया संगठित हुआ और अनेक पूंजीपति भी [illegible] उस सम्प्रदाय में सम्मिलित होने के लिए लालायित हो उठे, तभी "कुकुरमुत्ता" प्रकाशित हुआ। अपने ढंग की अनोखी कृति है यह। इसमें [illegible] [illegible]। इसमें उन धनीमानी व्यक्तियों के प्रति तीखा व्यंग्य है जो केवल शौक से साम्यवादी बनते हैं उसूल से।

साम्यवाद [illegible] से [illegible] चाहिये, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कर देती है। "कुकुरमुत्ता" के ही शब्दों में—

"कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता।"

---

1. अनामिका—पृष्ठ ६८

"कुकुरमुत्ता" सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि स्वरूप है। अस्तु, नवाब साहब ने अपनी पुत्री से "कुकुरमुत्ता" की तारीफ सुन कर माली को बुलाया और—

"बोले, चल गुलाब जहाँ थे, उगा,
हम भी सब के साथ चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।
बोला माली—"फर्माए मुआफ खता",
कुकुरमुत्ता उगायें नहीं उगता।"

कुकुरमुत्ता एक दुधारी तलवार है। इसका व्यग्य दो तरफ है। पहली ओर का सकेत ऊपर दिया चुका है। दूसरी ओर साम्यवादी नवयुवको के स्वभाव की अशिष्टता तथा अहकार पर व्यग्य किया गया है। समाजवाद की बुराइयो की कवि ने समासोक्ति के आवरण में बडी सुन्दर आलोचना की है। पूरा मजा तो आद्यन्त पढने पर ही आवेगा, अनुमान के लिए नीचे की पक्तियाँ पर्याप्त होगी—

"पहाडी से उठा सर ऐंठ कर बोला,
अबे, सुन बे गुलाव,
भूल मत गर पाई खुशबू, रगो आब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।
× × ×
तू नहीं मैं ही बडा।"[१]

निराला के व्यग्य के क्षेत्र अगणित हैं। गम्भीर पुस्तक "तुलसीदास" में भी निराला अपनी व्यग्यात्मिका प्रवृति को नही छोड सके है। रत्नावली का भाई जिस समय उसे लिवाने आया है, वह समझाता हुआ कह बैठता है—

"तुझसे पीछे भेजी जाकर,
आई वे कई वार नैहर,
पर तुझे भेजते क्यों ओवर जी डरते?"

रतन के प्रति तुलसी के अत्यधिक मोह के साथ ज्यादा उम्र में विवाहित स्त्रियो के नैहर में जाकर पापाचार करने की ओर इशारा है। "रानी और कानी" में तो विधि की विडम्वना का मर्मस्पर्शी व्यग्यात्मक विधान अपने

१ कुकुरमुत्ता—पृष्ठ ३३

ढंग का अकेला ही है। एक लड़की है कानी, ऐसी कानी कुरूप। पर मां ने प्यार से नाम रक्खा है, रानी—

> "मां कहती थी उसको रानी,
> आदर से जैसा था नाम,
> लेकिन उलटा ही रूप,
> चेचक-मुँ-दाग, काला नाक चपटी,
> गंजा सर एक आँख कानी।"

ऐसी कानी "रानी" का विवाह किससे हो? स्त्रियों में ही तो समाज समस्त गुणों को अपेक्षित मानता आया है। किसी सर्वगुणसम्पन्न नारी का विवाह कैसे भी चरित्रहीन व्यक्ति से हो, कोई बात नहीं। पर स्त्री में एक भी अवगुण रहने से उसका विवाह असम्भव प्राय है। मां की दुःखद चिन्ता देख कर रानी बेचारी रोने लगती है। उसके प्रति लोग हमदर्दी दिखलाते हैं लेकिन उससे विवाह कोई नहीं करता। यह एक कठोर व्यंग्य है। सहानुभूति के साथ ऐसी अवस्था में उसकी वेदना को कुरेद-कुरेद कर उभारते हैं। हाईकोर्ट के मदमस्त वकीलों की कैसी खबर ली गई है—

> "दौड़े हैं बादल काले-काले,
> हाई कोर्ट के वकले मतवाले,
> चाहिए जहाँ वहाँ नहीं बरसे,
> देखा धान सूखते नहीं तरसे,
> जहाँ भरा पानी वहाँ छूट पड़े,
> कहकहे लगाये टूट पड़े।"

आज के साहित्यिक भी रवि के व्यंग्य विषय बनने से न छूटे। अंग्रेज़ी साहित्य में टी० एस० ईलियट एक प्रयोगवादी कलाकार माने जाते हैं। कविता और आलोचना दोनों के क्षेत्र में उन्होंने एक क्रांति मचा दी है। कविता को भग्न लक्षणों का निर्जीव ढेर न मान कर एक जीवित पदार्थ मानने का श्रेय उनको ही सर्व प्रथम प्राप्त हुआ है। उनके नवीन प्रयोगों को लक्ष्य करके निराला ने कहा है—

> "कहाँ का रोड़ा कहाँ का पत्थर,
> टी० एस० ईलियट ने जैसे दे मारा,

पढ़ने वालों ने जिगर पर रख कर,
हाथ कहा लिख दिया जहां सारा।"

आधुनिक युग में हास्य के आलम्बन वदल गये है। लीडर, चुनाव, चुंगी, चन्दा, आदि विषयो पर पर्याप्त व्यग्य लिखा गया है। लाला भिखारी-मल के पैरोकार लाला को वोट दिलाने की वकालत करते हुए कहते हैं—

"बढ-बढ के लाला ने दावत खिलाई,
कोठी हवेली दुकानें बनाई।
सीधे हैं जाने न छल-बल को,
वोट दे दो रे भाई भिखारी मल को।"[1]

प० हरिशकर शर्मा ने भी प० प्रताप नारायण मिश्र की भाँति तृप्यन्ताम् पर एक कविता "अल्हडराम की रें रें" शीर्षक से लिखी है। हिन्दुओ की अकर्मण्यता एव लापरवाही पर व्यग्य करते हुए शर्मा जी ने लिखा है—

"हिन्दू सुनो खोलकर कान,
हो जाओ बिल्कुल वीरान।
ऋषि मुनियों को जाओ भूल,
काटो वैदिक धर्मबबूल, तृप्यन्ताम्।"[2]

लोगो में अपने धर्म तथा प्राचीन ऋषियो की वाणी का मजाक उडाने में आनन्द आने लगा था। ऐसे लोगो पर ही शर्मा जी ने व्यग्य कसा है। शर्मा जी ने समस्यापूर्ति के रूप में भी समाज के विभिन्न वर्गो के ऊपर व्यग्य करते हैं। समस्या है "आता है याद हमको गुजरा हुआ जमाना"। एक कवि जी दूसरो की कविता चुराकर अपने नाम से छपवाता है वही उसी के मुखारविन्द से कहलवाया है—

"ले लेख दूसरो के निज नाम से छपाना,
आता है याद हमको गुजरा हुआ जमाना।"

ऐसे ही कौंसिल कवि कहते हैं—

"वनकर प्रजा का प्रतिनिधि कुछ भी न कर दिखाना,
आता है याद हमको गुजरा हुआ जमाना।"

---

१ चिडियाघर—पृष्ठ २५
२ " " ५५

"चपर पच" शीर्षक कविता में स्थायी पचों की खबर ली गई है—

"रकम दूसरों की गटकते रहो,
सटासट माला सटकते रहो।
बनो धर्म के धाम संसार में,
अड़ाओ सदा टांग उपकार में।
पकड़ गाय दो चार चन्दा करो,
न पानी पिलाओ न चन्दा भरो।
स्वयं मौज मारो मजे में रहो।
भजो भोर गोपाल "शिव शिव" कहो।"[1]

उर्दू के कवि अकबर ने कहा था—

"लीडरों की धूम है और फौलोअर कोई नहीं"

यह धारा हिन्दी में भी बही। लीडर को आलम्बन बना कर बहुत से हास्य-लेखकों ने कविताएँ लिखीं। यह निर्विवाद सत्य है कि जिस प्रकार एक असफल कवि आलोचक बन जाता है उसी प्रकार एक असफल वकील लीडर बन जाता है। "अगुआ की आत्म कथा" शीर्षक कविता में शर्मा जी ने ऐसे ही एक असफल वकील पर व्यंग्य किया है। एक वकील साहब की जब न वकालत चली, न नौकरी मिली, न तिजारत चली तो अन्त में—

"अन्त में जगी देश की भक्ति,
मिली फिर मुझे अनोखी शक्ति।
देश दुर्दशा बखान बखान,
तोड़ने लगा निराली तान।"[2]

किन्तु सच्ची देश भक्ति हो तब तो ? यह तो बहाना था। देश-भक्ति का तो ढोंग मात्र था—

"मगर मैं चलता था वह चाल,
न होता बांका जिससे बाल।
दिया उपदेश किया आराम,
यही था बस मेरा प्रोग्राम।"[3]

---

१. निरियानन्द—पृष्ठ ९८.
२. „ „ १३३.
३. „ „ १३३

उन्हें कार्य कौन-सा करना पडता था—

"मिली है जनता रूपी गाय,
बडी भोली-भाली है हाय।
दुहा करता हूँ मै दिन-रात,
न कपिला कभी उठाती लात।"[1]

शर्मा जी का व्यग्य काफी मार्मिक है। कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। सदस्य बनने का चन्दा चार आना था। बहुत से लोग जो पहले अमन सभाई रह चुके थे वे भी कांग्रेस में घुस रहे थे। "चवन्नी का चमत्कार" शीर्षक कविता में शर्मा जी ने ऐसे लोगो की खबर ली है—

"जो देश भक्ति से द्रोह किया करते थे,
जो अमन-सभा की महिमा पर मरते थे।
जनता में निश-दिन भीरु-भाव भरते थे,
वे आज चवन्नी चदे को भुगता कर,
बन रहे तपस्या-पुंज सकल गुण आकर।"[2]

शर्मा जी के व्यग्य में निराला जी की गहराई और मार्मिकता तो नही है किन्तु साधारणत यह व्यग्य उच्चकोटि का कहा जा सकता है। छन्द पुराने और सरल हैं। भाषा भी मार्जित है। शर्मा जी का लक्ष्य समाज सुधार था और उसमें वह पर्याप्त मात्रा में सफल भी हुए हैं। जिस प्रकार भारतेन्दु जी रीति काल तथा भारतेन्दु काल के सधि-स्थल पर खडे दिखाई देते है ठीक उसी प्रकार शर्मा जी द्विवेदी काल तथा आधुनिक काल के सन्धि स्थल पर खडे दिखाई देते हैं। उनमें प्राचीन परिपाटी के छन्द कवित्त और सवैये मिलते हैं तो आधुनिक छायावादी ढग की कविता के छन्द भी मिलते है।

आधुनिक व्यग्य लेखको में बेढब बनारसी का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अँग्रेजी शब्दो के प्रयोग से हास्य उत्पन्न करने का प्रयास किया है। ये उर्दू छन्दो से अधिक प्रभावित है तथा गजल और शेरो में ही अधिक कविताएँ लिखी हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'बेढब की बहक" की भूमिका मे यह स्वीकार करते हुए कि हास्य से समाज में बडे-बडे सुधार और उपकार हुए हैं, लिखा है, "मेरा यह सब कुछ लक्ष्य नही है। जैसे कुछ लोग कला कला के लिए की दुहाई देते हैं, मै विनोद विनोद के लिए लिखता हूँ।" व्यग्य के बारे मे अपने विचार

१ चिडियाघर—पृष्ठ १३३
२. पिंजरापोल—पृष्ठ ११६

प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है, व्यंग्य हास्य की आत्मा है, बिना व्यंग्य के काव्य कानी सुन्दरी के समान है, इसलिए स्थल स्थल पर व्यंग्य का पुट इसमें मिलेगा परन्तु वह किसी ओर लक्षित करके नहीं लिखा गया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ ये रचनाएँ शिष्ट तथा श्लील हैं। हम बेढब जी के इस कथन को सत्य नहीं मानते। व्यंग्य सोद्देश्य होता है और उसमें निन्दा या सुधार की भावना अवश्य होती है, नहीं तो व्यंग्य-व्यंग्य नहीं रहता। जहाँ तक श्लीलत्व तथा अश्लीलत्व का प्रश्न है यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि बेढब जी अश्लीलता के दोष से बच नहीं पाये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अन्दर का यह चोर ही उनसे पेशगी सफाई दिलवा देना चाहता है। मर्म के क्षण व्यंग्य की जड़ है। अकबर का कलाम इसलिए इतना जोरदार हुआ कि उसमें अपने जमाने की छोटी से छोटी बात को भी भाँप लेने की अद्भुत शक्ति थी जिसके सहारे वह हमें चौंका देता था। बेढब में पर्यवेक्षण की अच्छी शक्ति है। उन्होंने समाज में प्रचलित दूषणों को आलोचक की पैनी निगाह से देखा है और फैशन परस्ती, बेकारी, नौकरी के लिए दौड़, हाकिमों की खुशामद, विदेशी सभ्यता की गुलामी आदि विषयों पर मार्मिक व्यंग्य लिखे हैं। नकली खद्दर-धारियों पर बेढब जी ने लिखा है—

"बाहर सभा में दीखिये खद्दर का ठाट है,
घर मे मगर विलायती सब ठाट बाट है।
मिलते है चुपके-चुपके गवर्नर से लाट से,
लेक्चर में मुँह पे रहता सदा बायकाट है।"[1]

जब से मिनिस्टरों का राज आया, व्यंग्य लेखकों के वे भी शिकार बने। अप्रत्यक्ष रूप से मिनिस्टरों पर तथा प्रत्यक्ष रूप से मिनिस्टर-पुत्रों पर बेढब जी ने ऐसी मीठी चुटकी ली है—

"उन्हें दुनिया मे क्या मतलब, मिनिस्टर के जो बन्दे हैं,
यहाँ वह आ गये तो पार्टी औ खूब चन्दे हैं।
किसी स्कूल विद्यालय का डेपुटेशन जो ले जाओ,
तो कहते हैं कि भाई आजकल व्यापार मन्दे हैं।"[2]

एक शेर में [illegible] में इसने जानदार छींटाकशी की है—

१. बेढब की बहक—पृष्ठ ८
२. " " " १८

"कुछ चाटने की चीज, वहाँ पर जरूर है,
हैं घुस रहे जो लोग असेम्बली के द्वार में।"[1]

वेढव जी अपने मिनिस्टर के साथ शीर्षक गज़ल में मिनिस्टर महोदय का परिचय तथा गौरवगान करते हैं—

"कैसे पहचानते भला मुझको,
वह मिनिस्टर के साथ आये थे।
आज वह हो गये मेरे मालिक,
जिनसे जूते कभी सिलाये थे।
हो गया अस्पताल घर उनका,
कितने रोगी वहाँ पे आये थे।"[2]

रोगी शब्द में कैसी सुन्दर व्यजना है। जिस प्रकार रोगी अपने रोग निवारण के लिए अस्पताल जाते हैं उसी प्रकार अपने अपने स्वार्थ लेकर मिनिस्टरो के घर पर लोग छा जाते हैं। अधकचरे साहित्यकार पर एक शेर देखिये—

"पढ़ के दर्जा तीन तक वे बन गये साहित्यकार,
और मम्मट से वह अपने को समझते कम नहीं।"

वेकार ग्रेजुएट को आलम्बन बना कर उसकी विचित्र वेष भूषा के सचारियो का पुट देकर आपने लिखा है—

"पहनकर सूट डिगरी लेके क्लर्की खोजते हैं हम,
पढी दस साल अग्रेजी, यही अजाम है इसका।"

फैशन के गुलामों को आलम्बन बना कर वेढव जी लिखते हैं—

"बडी इन्सल्ट है मेरी जो कहना बाप का मानूँ,
नहीं इगलिश पढी और रोब वह इतना जमाते हैं।
न बदरीनाथ जाते हैं, न अब जावें हैं वह काशी,
मिसों के दरशनों को लदनो पैरिस वह जाते हैं।"[3]

ब्रिटिश हुकूमत के समय जो सरकार-परस्त होते थे, वे साहब की चिलम भरते थे। उन्ही को ही टाइटिल दिये जाते थे और वे ही आनरेरी

---

१ वेढव की बहक—पृष्ठ ८६
२ ,, ,, ७४
३ ,, ,, ३३

मजिस्ट्रेट बनाये जाते थे। ऐसे लोगों पर बेढब जी ने कैसा करारा व्यंग्य कहा है—

> "पीके जूठी लाट साहब की शराब,
> आनरेरी वह मजस्ट्रर हो गए।"[1]

आज के नौजवानों की जनानी सूरत और आचार-हीनता पर बेढब जी लिखते हैं—

> "नजाकत औरतों सी, बाल लम्बे, साफ मूँछें हैं,
> नए फैशन के लोगों की अजब सूरत जनानी है।
> पता मुझको नहीं कुछ इंडिया में भी है लिटरेचर,
> मगर है याद सारा मिल्टनो-बेकन जवानी है।
> जनेऊ इनकी नेकटाई है पाउडर इनका टीका है,
> नये बाबू को ह्विस्की आजकल गंगा का पानी है।"[2]

कहीं कहीं पर बेढब जी अश्लील हो गये हैं। यथा—

> "हमारे नौजवाँ शैदा हुए इतने मिठाई पर,
> सुहाना भी मिसों के मुंह का उनको रामदाना है।
> नयी तालीम का बेढब यही निकला नतीजा है,
> चचा के सामने लेटी लिए लेटा भतीजा है।"[3]

कान्तानाथ पांडे 'चोंच' भी आधुनिक हास्य-लेखकों में अग्रगण्य हैं। चोंच ने भी आधुनिक कुरीतियों पर सामयिक व्यंग्य लिखे हैं। इनका हास्य स्वाभाविक है। इन्होंने बेढब जी की भाँति अंग्रेजी शब्दों के अत्यधिक प्रयोग का कृत्रिम साधन उपयोग में नहीं लाया। आज का युग आत्म विज्ञापन का युग है। 'अपनी आत्म विज्ञापन' शीर्षक कविता में ऐसे ही एक [illegible] की खबर ली गई है—

> "मेरा भाषण छपित करता अखबारों का है प्रथम पृष्ठ,
> मेरे चित्र, छपते कितने हैं पत्रपत्रिका में हैं घनिष्ठ।
> पर सचमुच क्या है बतला दूँ रखा है मैंने क्लर्क एक,
> जो एम. ए. है शास्त्री भी है, लिखता मेरे भाषण अनेक।

१. बेढब की बहार—पृष्ठ १७
२. ,, ,, १०
३. ,, ,, १०.

मुझको तो है हर भाँति अहो,
काले अक्षर भैंसे समान,
मैं हूँ लीडर मैं हू महान् ।"[१]

फैशन परस्त युवको को अधिकतर आधुनिक व्यग्य लेखको ने आलम्वन वनाया है—

"मूँछ की गायव निशानी खूव है,
कमर की पतली कमानी खूव है।
वाह मिस्टर मुलमुले भण्डारकर,
आपकी सूरत जनानी खूव है।"[२]

सार्वजनिक सस्थाओ में घुसकर चन्दा जमा कर अपने भवन वनाने वाले महानुभावो पर भी चोच जी ने व्यग्य वाण छोडे हैं—

"जब कि औरो ने गोलियाँ खायीं,
धूप में हो खड़े पिकेटिंग की।
मैं था चन्दा वसूलता जाकर,
घूस से घर जमी बना लिया मैंने।"[३]

इसी विपय को लेकर उन्होने एक और कटूक्तिपूर्ण दोहा लिखा है—

"चन्दा और पद ग्रहण की, जब लग मन में खान,
पटवारी और पन्त हैं दोनो एक समान।"[४]

पुरानी परिपाटी के काव्यो में वचनेश जी का स्थान मुख्य है। इन्होने कवित्त और सवैयो द्वारा काफी व्यग्य वाणो की वर्षा की है। एक महा मोटे अभिमानी सेठ का चित्रण देखिए—

"हाथ न उठाते न प्रणाम को नवाते माथ,
फूल गया पेट है न ठौर से हैं टरते।
गद्दी पर तकिया सहारे धरे रहते हैं,
न विना सवारी कभी एक पग धरते।

---

१ खरीखोटी—पृष्ठ ६९.
२ ,, ,, ८८
३ खरीखोटी—पृष्ठ १०३
४ ,, ९९

भासें वचनेश क्या न आवें उठा देखते हैं,
बोलते न कुछ मुँह से न बात करते।
मार गई लाला को मिजाज की बिमारी,
सिर्फ त्योरी बदले से जानदार जान परते।"[1]

वचनेश जी ने मनोभावों का चित्रण करके भी व्यंग्य लिखा है। लाला लोगों की कायरता प्रसिद्ध है। कांग्रेस की उग्र अवस्था का जब लोग तिरंगा झंडा देख कर गिरफ्तार कर लिये जाते थे, स्मरण करते हुए लाला जी की होली के अवसर पर की गई प्रार्थना सुनिये—

"झोंकि लेंइ धूरि और उलीचि लेंइ कीच चाहे,
फगुआ है तारकोल मुँह में चुपरि लेंइ।
बाजो हरि नगो करि स्वांग हूँ बनाइ लेइ,
वचनेश और जौन चाहे तौन करि लेंइ।
लाला कहें बरस भरे का तिउहार आज,
रोइहैं मेहरि लरिकन आप धरि लेंइ।
डारें मत पीरो हरो रंग धुतिया पै,
जानि झंडा है तिरंगा कुतवाल न पकरि लेंइ।"[2]

इनकी "बम का गोला" शीर्षक कविता में उत्कृष्ट व्यंग्य प्रस्फुटित हुआ है—

"बम बम का शब्द सुना बगले के पास ही में,
चौंक उठी मेम फिर साहब का तमका।
फोन किया लेन को तो वचनेश फौरन ही,
पुलिस समेत कप्तान आय धमका।
घेर कर बाबा की कुटी को ली तलाशी,
यहाँ छिपा पत्तियों में कुछ गोल गोल चमका।
हाथ ने टटोला तब जाना बम बोला साधु,
लिंग है ये भोला का न गोला यहाँ बम का।"[3]

ये चमत्कारवादी कवि हैं। इनके कवित्तों में अधिकतर चमत्कारपूर्ण उक्तियों में हास्य का सृजन किया गया है। बेढब बनारसी भी आधुनिक

१. [illegible]—[illegible] १९५[illegible]
२. [illegible]—[illegible] १९५८.
३. [illegible]—[illegible] १९५८

हास्य के लेखको में प्रमुख है। इन्होने भी सामाजिक एव राजनैतिक व्यग्य लिखे हैं। इन्होने भी रुबाइया, शेर, आदि उर्दू के छदो का प्रयोग किया है। बेढब बनारसी की तरह अग्रेजी शब्दो के प्रयोग में हास्य उत्पन्न किया है। आजकल के नौजवानो पर इनका व्यग्य देखिये—

"देखिए यह सीन कितना ग्रेंड है,
देह है या साइकिल स्टेंड है।
हो भले सूरत हमारी इण्डियन,
दिल हमारा मेड-इन-इगलैंड है।"

"हमारे नौजवानो की जवानी देखते जाओ" शीर्षक स्वतत्र कविता में आधुनिक नवयुवको पर और भी व्यग्य कसे गये है—

"हमारे नौजवानों की जवानी देखते जाओ,
नई चप्पल हुई जैसे पुरानी देखते जाओ।
हुए हैं सूखकर ऐसे गोया टेनिस के रैकेट हैं,
उछलती बाल जैसी जिन्दगानी देखते जाओ।
धँसी आखें हैं चिपके गाल निकली नार चिपटा मुँह,
यही सौन्दर्य की है चौमुहानी देखते जाओ।
लडे दिल से हुए घायल गिरे चौचक मरे कुछ कुछ,
यही बेघडक इनकी पहलवानी देखते जाओ।"[१]

"दिल में मेरे यह कसाला रह गया" शीर्षक कविता में इन्होने कई भयानक असगतियो पर व्यग्य कसे है—

बेकारी पर—"अब तो डिप्लोमा सभी बेकार हैं,
बाँधना उनमें मसाला रह गया।"

सिनेमा पर—"भीड मस्तों की सिनेमा में घुसी,
रह गई मस्जिद शिवाला रह गया।
जिन्दगी में यह सिनेमा का असर,
मार डाला मार डाला रह गया।"[२]

आजकल के स्वार्थी मित्रो से बेधडक जी परेशान है, अपने इस भाव को उन्होने एक शेर में व्यक्त किया है—

---

१ धर्मयुग होलिकाक—मार्च १९५३

२ ,, ,, ,,

"हास्य रस में ही लिखा करता हूँ मैं,
और यों मनहूसियत हरता हूँ मैं।
नाम मेरा हो भले ही बेधड़क,
दोस्तों से बहुत ही डरता हूँ मैं।
'एक्सक्यूज़ मी' कहते हुए घर में घुसे,
'प्लीज़' कह कर माँग ली मेरी किताब।
थैंक्यू कह कर वे चलते बने,
आजकल की दोस्ती ऐसी जनाब।"[1]

बेधड़क जी का व्यंग्य अधिकतर सामाजिक है। उसमें शिष्टता का अंश अपेक्षाकृत कम है। श्री गोपाल प्रसाद व्यास इस क्षेत्र में पत्नीवाद लेकर आये। उनकी अधिकतर कवितायें पत्नी पर आधारित हैं। पत्नी को आलम्बन बना कर हास्य कविता लिखना उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता। दूसरे उसमें नीरसता आने की भी आशंका बराबर बनी रहती है। एक ही आलम्बन, एक ही प्रकार की बातचीत, एक ही प्रकार के शब्द कुछ घिसे घिसाये से लगते हैं। उनके काव्य में ससुर-ससुराल के झगड़े ही अधिकतर मिलते हैं। यह देवर-भाभी के प्रचलित प्रकरण का रूपान्तर मात्र है। इनमें सहज हास्य न होकर कृत्रिमता अधिक है। स्नान न करने वाले आदमियों को लेकर उनका एक आत्मस्थ व्यंग्य देखिये। कवि अपनी पत्नी से स्नान न करने के औचित्य को सिद्धान्त रूप से बताता है—

"तो तुम कहती हो—मैं स्नान,
भजन पूजन—सब किया करूँ।
जो औरों को उपदेश करूँ,
उसको खुद भी व्रत लिया करूँ।
प्रियतमे, गलत सिद्धान्त,
एक कहते हैं दूजे करते हैं।
तुम स्वयं देख लो युद्ध भूमि में,
सेनापति कब मरते हैं?"[2]

आजकल के प्रगतिशील कवियों पर व्यंग करते हुए व्यास जी ने लिखा है—

१. [illegible]—मार्च १९५३.
२. पत्नी मनो—पृष्ठ १३१

"आखिर हिन्दी का लेखक था हो गई जरा सी वाह-वाह,
दो चार किताबें छपी कि बस, गुब्बारे जैसा फूल गया।
फिर क्या था बातों बातों में,
कवि कालिदास को मात किया।
खा गये सूर तुलसी चक्कर,
जब मैंने दिन को रात किया।
और इस युग के कवि अरे राम,
वह तो सब निरे अनाड़ी हैं।"[१]

कही कही इनकी कविता केवल तुकबन्दी और शब्दो के साथ खिलवाड़ लगती है, यथा—

"तो बन्दा कविता भूल गया,
मैं अपने में ही फूल गया।
सारा आदर्श फिजूल गया,
मैं कविता लिखना भूल गया।"[२]

इनकी कविता में रस ढूंढना रेगिस्तान में आम्रवृक्ष खोजना है। हास्य में नही, गम्भीरता से मैं उनकी भूमिका में लिखी हुई उनकी पत्नी की उनकी कविता के वारे में सम्मति से विल्कुल सहमत हूँ—

"मेरी पत्नी के विचार से कविता, खास तौर पर मेरी तुकबन्दी, बिल्कुल वाहियात चीज है।"

कही-कही पर व्यास जी ने हिन्दी में चिरकीन की याद दिलाने का प्रयास किया है, यथा—

"वे आठ बजे पर उठते हैं,
उठते ही चाय मगाते हैं।
फिर लेकर के अखबार,
"लैट्रिन" में सीधे घुस जाते हैं।
जब घड़ी बजाती साढ़े नौ,
तब कहीं पखाने जाते हैं।"[३]

१ अजी सुनो—पृष्ठ १७१
२ ,, ,, ३२
३ ,, ,, ७४

इधर रमई काका अवधी भाषा में अच्छा व्यंग्य लिखते हैं। "पढ़ीस" जी की "चकल्लस" की चर्चा पीछे की जा चुकी है। रमई काका ने इधर अधिकतर ग्रामीण समाज तथा शहरी समाज के वैषम्य पर व्यंग्य लिखे हैं। मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग से हास्य सृजन इनकी शैली की विशेषता है। "रमई काका" की एक प्रसिद्ध कविता है जिसका शीर्षक है "धोखा"। आधुनिक सभ्यता और फैशन परस्ती पर उसमें बड़ा चुटीला व्यंग्य लिखा गया है। एक ग्रामीण शहर में पहली बार जाता है। संस्कार से जिसे वह जनाना समझता है, शहर में वही उसे मर्दों का रूप दिखलाई देता है। तब उसे धोखा हो जाता है—

"म्याछन का कीन्हे सफाचट, मुंह पाउडर और सिर केश बड़े,
तहमद पहिने अंडी ओढ़े, बाबू जी बांके रहे खड़े।
हम कहा मेम साहब सलाम, उइ बोले चुप बे डैमफूल,
मैं मेम नहीं हूँ साहेब हूँ, हम कहा फिरिउ धोखा होइगा।"[1]

आगे उन्हें इसी प्रकार के धोखे और हुए हैं। इनकी व्यंग्य की अपनी शैली है और उसमें वे सफल हुए हैं। अंग्रेजी सभ्यता ने हमारे पारिवारिक बन्धन बहुत कुछ ढीले कर दिये। स्वतन्त्रता की शौक में पत्नी भी स्वतन्त्र हो गई और पति महाशय भी स्वतन्त्र हो गये। "रमई काका" ने ऐसे ही एक आधुनिक परिवार के नौकर से अपनी मालकिन का चित्रण करवाया है—

"मेम साहब के सुनो हवाल, चलैं उइ अउरौं उल्टी चाल।
न साहेब ते सूधे बतलायं, गिरौ पारो अइसी भन्नायं।
कबौं झण्डनु जइसी लहरायं, पटाका अइसी दगि दगि जायं।
धरे सरकार कचहरी जाय अकेले मां तब मगन दिखाय।
फूलमा पौधे ते बतरायं, कोयलिया मिठ-बोलनी ह्वै जाय॥"[2]

और जब नौकर उनसे इस व्यवहार का कारण पूछता है तब वे कहती हैं—

"सुनो यह नौकर है हरवाल, यहां उन डैमफूल बदमाश,
अरे तुम नौकर है महा गंवार, न जाने अंग्रेजी व्यवहार।"[3]

---

१. बौछार—पृष्ठ ६८
२. ,, ,, ६५.
३. ,, ,, ६५.

रमई काका ने अधिकतर आधुनिक फैशन परस्तों और पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने वालो पर ही छीटेकसी की है। पति अपटुडेट है और पत्नी सीधी-साधी भारतीय युवती, घर में क्या हाल होता है—

"लरिकउ कहिन वाटर दइदे,
बहुरेवा पाथर लइआइ।
यतने मा मचिगा मगमच्छस,
यह छीछाल्यादरि द्याखौतो।
बनिगा भोजन तब थरिया मां,
उन लाय धरे छूरी काटा।
डरि भागि बहुरिया चउकाते,
यह छीछाल्यादरि द्याखौ तो।"[1]

क्या गावो में और क्या शहरो में बूढे तो अपना विवाह रचा ही लेते है। ऐसे ही एक "बुढउ का वियाहु" शीर्षक कविता में रमई काका की उक्ति देखिए—

"दुलहा की दुलहा का बाबा,
जेहि मुडे मौरु घरावा है।
यहु करै वियाहु हियाँ कहू से,
मरघट का पाहुनु आवा है।
ओंठें पर याको म्वाछ नहिन,
यहि सफाचट्टु करवावा है।
बसि जाना दुसरी दुलहिनि कै,
यहु तेरहौं करकै आवा है।"[2]

आजकल के युग में क्या कोतवाली, क्या स्कूल, क्या अस्पताल, गरीब की सुनवाई कही नही होती है। इसी व्यवहार पर एक कठोर व्यग्य रमई काका ने 'पेट की पीर' नामक कविता में किया है। एक ग्रामीण अपने पेट के इलाज के लिए शहर के अस्पताल में दाखिल होना चाहता है तो उसे क्या उत्तर मिलता है—

"फिरि मेडिकल कालिज गयन,
डाक्टर कहिनि नहीं खटिया खाली।

---

१ बौछार—पृष्ठ ४१
२ बौछार—पृष्ठ २८

हम कहा अरे सरकारों मां का,
खटियन के हैं कंगाली।
उठइ देहाती कहि जरि लियिन,
फिर कहिनि हमारा जाव घरं।
बिन खटिया भरती नहीं होत है,
जिये चहै कोउ चहै मरे।"[1]

लेकिन जब वह "सिफारिशी" चिट्ठी लेकर पहुँचता है तब—

"चट लेटि गयन होइ कै निरास,
मुलु चिट्ठी लइ मलिकान वाली।
फिरि आमन तब भरती होइगेन,
और खटिया भै चटपट खाली।"[2]

आधुनिकतम व्यंग्य लेखकों में रमई काका का स्थान अद्वितीय है।

कुंज बिहारी पांडे ने भी आधुनिक विषमताओं पर सुन्दर व्यंग्य लिखे हैं। आजकल का युग नेताओं का है। "मन्त्री जी की जवानी" शीर्षक कविता में उनका व्यंग्य देखिये—

"कसम तुम्हारी खाकर कहता, मैं मन्त्री बन कर पछताया,
जितनी मांगें हुईं कभी उतने कम नहीं दिये आश्वासन।
एक-एक दिन में कितनी ही प्रदर्शिनी परिषदें सम्हालीं,
जहां-जहां पहुँचा दे भाषण उजली करदीं रातें काली।"[3]

नकली नेता के बोलने पर नया कुर्सी का पर्दा-फाश कर दिया गया। ये नेता कैसे हुए यह उनकी जबानी सुनिये—

"कभी दबाया पूंजीपति को, और कभी मजदूर दबाये,
इस प्रकार दोनों के बीच पड़ा हूँ अपनी टांग अड़ाये।
यह शोषक हैं और यहां मैं पोषक उनका किसे बनाऊं,
करता रहता यत्न सन्तुलन शोषक शोषित में रख पाऊं।"[4]

१. किसान—पृष्ठ ८३.
२. ,, ,, ,,
३. उलझन—पृष्ठ ३४
४. ,, ३३.

पाण्डेय जी में पर्यवेक्षण शक्ति यथेष्ट है। वह सामाजिक कुरीतियो को सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं और उन दूषणो को व्यग्य की पैनी छुरी से तराशते हैं। "दैनिक पत्र" की आत्म-रक्षा के व्याज से उन्होने अधकचरे सम्वाद-दाताओ पर महाव्यग्य प्रहार किया है—

"खाली हल्ला सुन कर तीन मरे नौ घायल" लिख सकता हूँ,
ज्ञात हुआ विश्वस्त सूत्र जी से जब उतर रहे थे "बस" से।
छगू की औरत ने पीटा एल० पी० शर्मा को चप्पल से,
कितनी उजली खादी पहिनों पर मैं धूल झाड सकता हूँ" [१]

पाण्डेय जी की मुहावरेदानी और भाषा की सजावट अपनी चीज है। सिनेमा गृह भी आधुनिक युग की देन है। देश के नवयुवको का सभी फिल्मो के प्रभाव से कैसा नैतिक पतन हो रहा है यह किसी से छिपा नही है। युग की गदगी दूर करने तथा समाज को स्वच्छ धरातल पर प्रतिष्ठित करने का व्यग्य आज आवश्यक है। "सिनेमा गृह" कविता में पाडेय जी ने क्या ही चुटकी ली है—

"पर्दे के भीतर की चीजें हैं पर्दे के ऊपर दिखती,
साथ रजतपट के कितने ही हृदय पटो में फिल्में चलतीं।
छूते नहीं, जलाते जलते अगारों से अग यहाँ हैं,
वैवाहिक स्वातत्र्य-सूत्र की गुप चुप यहाँ ग्रन्थियाँ लगती।
उमडे नीर भरे मेघों के दिल को चीर बिजलियाँ मिलती,
जहाँ काँपते हैं स्पन्दन और बिलखती मौन व्यथायें।" [२]

सिनेमा गृह पर व्यग्य लिखने वाले दूसरे प्रसिद्ध कवि है, "वशीधर शुक्ल"। एक देहाती सिनेमा में जाता है। पहले तो वह आश्चर्यान्वित हो जाता है लेकिन जब सिनेमा शुरू हो जाता है तो वह देखता है—

"कोइ नगी कोइ अधनगी, कोई सुघर कोई विसख परी,
कोइ उजलि-उजलि कोइ लालि-लालि, कोउ कागपरी कोइ सुवापरी।
कहुँ बहिनि चली भाई दौरा, सूने मकान मा मेल किहिसि,
कहुँ गुरू चले चेलो मिलिगै, देवर भाभी कस खेलु किहिसि।
कोई नद्दी कोई जगल मा, प्रेमी प्रेमिक मेलाय रहे,
इन पर ना कोई दफा लगै, सब हाकिम देखि सिहाय रहे।" [3]

---

१ उपवन—पृष्ठ ११
२ उपवन—पृष्ठ ११
३ माधुरी कविता अक

आगे चलकर सिनेमा से पड़ते बुरे नैतिक प्रभाव को देख कर कवि का व्यंग्य और भी तीखा हो जाता है और वह घृणा तथा क्रोध से कहने लगता है—

"जब ध्यान धरैं न तौ जान परा, यह छारि-छारि अंग्रेजी है,
भारतो धरमु मारे झौंकसि बस देखति कँपी करेजी है।
रहि-रहि मन मा गुस्सा आवै रहि-रहि दुगनी आगी भड़कै,
जो तनिक देर का होत नवाबी, करित हार दुइ-दुइ बढ़िकै।"[1]

वंशीधर शुक्ल की आस्था भारतीय संस्कृति में ही रही है। उन्होंने फैशन पर भी कठोर व्यंग्य लिखा है। अपनी "शंकर वेदना" कविता में पहले तो गम्भीरतापूर्वक शंकर का महत्व वर्णन है, तत्पश्चात् आधुनिक युग में उनकी स्थिति बता कर अंग्रेजी फैशन पर अप्रत्यक्ष रूप से कटूक्ति की गई है—

"सेतिव कोउ समाज, ऋषी की पदवी पैतिउ,
होतिउ शिक्षा विहीन, भलो आलिम कहवैतिउ।
गोरा होति सरुप लाहिकी गद्दी देतेन,
होतिउ डिग्रीदार चट बापू कहि देतेन।

सब गुन हुइ फैसन तजे, घूमि रहेउ फटहा बने,
को मानै नेता तुम्हें, नेहरू जी के सामने।"

इधर हास्य रस युक्त चुटकीले दोहे लिखने में देहाती जी ने यथेष्ट कीर्ति प्राप्त की है। फैशन पर उनका एक व्यंग्य देखिए—

"कारे मुख पर पाउडर की शोभा सरसाय,
मनो पुवाना भीति पै कलई दीन पोताय।"

लाला लोगों की अर्थ लोलुपता तथा गरीबों के खून चूसने की प्रवृत्ति पर कैसा तीखा व्यंग्य है—

"ढीले पेट ससुर के तो अति बाढत गोंद,
फाटे पेट गरीब के तो अति बाढत तोंद।"

इसी प्रकार धनिकों तथा मूर्खों पर जो फैशन के बल पर समाज में प्रतिष्ठा पाने की लालसा रखते हैं और अपने भोले भाइयों पर रोब जमाते हैं उनको लेकर देहाती जी लिखते हैं—

"नहि विद्या नहिं बुद्धि बल, बिन धन करत बखान,
घानी मूँछ मुड़ाय कै, बनत जवाहर खान।"

---

1. माधुरी पत्रिका पद्य

देहाती जी ने शब्दो की खिलवाड नही की है बल्कि उसमें उपमा अलंकार इत्यादि का अच्छा प्रयोग किया है। आपके दोहे चुभते हुए और उनकी पैनी दृष्टि के द्योतक है। कवि 'भुशण्डि जी' ने भी सामयिक प्रसगो पर सुन्दर व्यग्य लिखे है। उनकी कुण्डलियाँ बहुत प्रसिद्ध है। कण्ट्रोल के जमाने मे राशनकार्ड पर व्यग्य देखिए—

"आज अन्नदाता तुम्हीं, हमारे लार्ड,
बारम्बार प्रणाम है, तुम्हें राशनिंग कार्ड।"[1]

कण्ट्रोल के युग मे ऐसा अधेर खाता था कि जब रिश्वत और सिफारिश से सिनेमा और बडी बडी कोठियाँ तो आनन फानन मे बन जाती थी किन्तु गरीबो के चुचाते मकानो को सीमेन्ट भी नही मिल पाती थी—

"महलो पर होते महल खडे,
बन रहे सिनेमा बडे बडे।
पर कुटियो के सामान हेतु,
कानूनी रोडे अधिक अडे।"

आधुनिक शिक्षा पद्धति पर तथा पढाई के गिरते हुए स्तर पर भुशण्डि जी ने तीखा व्यग्य कसा है—

"अब बच्चों के कोर्स भी, ऐसा,
ज्यों चूहे की पीठ पर है गणेश भगवान।
जिसे देखकर गारजियन, बा देते हैं खीस,
होटल के बिल सी हुई, अब पढ़ने की फीस।
लडके तो स्कूल में छीला करते घास,
उनको ट्यूटर चाहिए, घर में बारह मास।"[2]

पडित श्रीनारायण चतुर्वेदी भी प्रसिद्ध व्यग्य लेखको मे है। उन्होने अधिकतर साहित्यिक व्यग्य लिखे है। उनकी पर्यवेक्षण शक्ति बहुत ही व्यापक है। आप साहित्यिक व्यग्य लिखने मे सिद्धहस्त है। प० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कविता में भविष्य शीर्षक एक लेख में कमल का फूल और करेले के फूल को कवि के दृष्टिकोण मे एक बताया गया था, उस पर उन्होने एक व्यग्य लिखा था "करेला-लोचनी"—

---

१ जमालगोटा—पृष्ठ २

२ जमालगोटा—पृष्ठ ६

"कैसे आज बताऊँ लोचन ?
कमल नयन यदि कहता हूँ,
तो कहलाऊँगा दकियानूसी।
मृगलोचनी बताता हूँ तो,
बन जाऊंगा भक्षक भूसी।"[1]

बहुत सोच विचार के बाद कवि आँख के लिए एक उपमा ढूंढ निकालता है—

"सदृश करेला आँख तुम्हारी,
वैसी कड़ई,
वैसी तीखी।
वैसी नोकें प्रिये तुम्हारी,
और जब कभी कोपित होती,
तब तुम नयन फाड़ हो देती।
नीम चढ़े तब निम्ब करेले की उपमा पूरी कर देती॥"[2]

हिन्दी के एक प्रसिद्ध पत्रकार पर व्यंग्य करते हुये उन्होंने लिखा है—

"मुझे उम्मीद है कि कामयाब होंगे,
ढोल निज कीर्ति का बजाते सदा जाइए।
मित्रों की सम्मति मंगा कर हजारों ही,
टेस्टिमोनियल की पूरी बैटरी लगाइये।"

अपने मित्रों की सम्मतियों से छाप कर अपने को ऊँचा बनाने की कुप्रथा पर करारा व्यंग्य है। 'घर डारेंगे कुशल बढ़ेंगे', "दिमागी ऐयाशी' लिख कर एक साहित्यिक महानुभाव ने आधुनिक कवियों पर काफी व्यंग्य कसे थे। चतुर्वेदी जी ने स्वयं उनकी पोल खोल कर रख दी है—

"सस्ती देश भक्ति पूर्ण हलकी सी कविता लिख,
वाह वाही लूटना क्या मानसिक ऐयाशी है ?
समयानुसार तुकबंदियां किसानों पै लिख,
दंगे पा कमाना क्या दिमागी ऐयाशी नहीं।"[3]

१. [illegible]—पृष्ठ ६२.
२. ,, ,, ४८.
३. ,, ,, ६३

हिन्दी में आलोचको की बाढ बहुत दिनो से आई हुई है। इन अधकचरे समालोचकों ने हिन्दी समालोचना का स्तर नीचा कर दिया है। आत्म-विज्ञान, सम्पादक मित्रो की कृपा, पुस्तक और लेख छपवाने की क्षमता, शुद्ध हिन्दी लिख सकने की योग्यता, बडे आदमियो के सार्टिफिकेट इनकी विशेषतायें हैं और ये ही इनके प्रधान अस्त्र हैं। ऐसे अधकचरे समालोचको को लेकर चतुर्वेदी जी ने लिखा है—

"अधकच्चरा जो वैद्य मिले तो हानि प्रान की,
अधकच्चरा गुरु मिले, यात्रा होय नरक की।
सब अधकचरो के वही लेकिन काटे कान,
अधकचरा साहित्य का होता जिसका ज्ञान।
तुलसी उससे डरें, सूर उससे घबरावें,
बूढ़े केशवदास विनय कर हा हा खावें।
सुकवि बिहारी लाल जान की खैर मनावें,
देव दबक कर रहे न भय से सम्मुख आवें।
करें अनर्थन अर्थ का यह भीषण विद्वान्,
इस भय से हैं कॉपते कवि कोविद के प्रान।"[1]

एक असाधारण तथा असामान्य गुण जो इनमें मिलता है वह है अपने ऊपर व्यग्य लिखने की विशेषता। दूसरो पर व्यग्य लिखने वालो की कमी नही है किन्तु अपने को हास्य का आलम्बन बनाने वाले शायद उँगली पर गिनने लायक भी न मिलें। इन्होंने बडे-बडे साहित्यिको की पेशी यमराज के यहाँ कराई है और उनको उचित दण्ड दिलवाया है। स्वय को उपस्थित करके अपना परिचय देते हैं—

"श्री विनोव शर्मा है नाम इस मानव का,
बोले चित्रगुप्त यह कवि है न पण्डित है।
रचक साहित्य का तो ज्ञान इसे है भी नहीं,
किन्तु टॉग अपनी साहित्य में अडाता है।"[2]

परिचय के बाद स्वय ही दण्ड दिलवाने का प्रस्ताव रखते हैं—

"रखकर समक्ष में करेला लोचिनो को ये,
बीस साल नित्य पाँच कविता लिखा करें।

---

१ छेडछाड—पृष्ठ ५७
२ छेडछाड—पृष्ट ६५

जिनमें हो प्रशंसा श्री प्रधान बाबूराम जी की,
और जो बनावे नहीं, काटें रटफोरा इसे ।"[1]

इस प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व श्री रामधारी सिंह "दिनकर" का आधुनिक खोखली मानवता पर जो कटु व्यंग्य हाल ही में लिखा गया है उसको उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते । अनैतिक तथा खुशामदी व्यक्ति को कुत्ते के बहाने खुलकर सुनाई गई है—

"राम जो तुम्हारा स्वान है,
कोढ़ी है, अपाहिज है, बड़ा बेईमान है ।
अयश में डालता है तुमको,
बनियों के सामने हिलाता सदा दुम को ।
जूंठी पत्तलें भी चाट लेता है,
राही जो मिले तो भौंकता है काट लेता है ।'[2]

ऐसे लोगों पर "दिनकर' का व्यंग्य बहुत ही तीखा हो गया है । इसमें घृणा तथा द्वेष के भाव बहुत प्रज्वलित हो उठे हैं । इसमें पित्त का अंश बहुत तीव्र हो उठा है । आगे वे कहते हैं—

"नरक में चौकड़ी है भरता,
औघड़ है वमन का पान नित्य करता ।
नाक दबी, गलने को कान है,
रोम झरे जा रहे जो पाप का निशान है ।
तुलसी के पास चल सोता है,
ध्यान भी ढकोसलों में तेज बड़ा होता है ।
प्रेम पुचकार सुनता नहीं,
जूते खाए बिना किसी को भी गुनता नहीं ।
राम ! मेरी जूतियों में नाल दो,
इसके गले में या निकोटी एक काट दो ।[3]

परिहास (Irony)

सूक्ष्म, [illegible] वैपरीत्य में ही परिहास है । प्रकृति और वस्तु, प्रकृति और [illegible], सत्य और [illegible] [illegible] के वैपरीत्य में ही [illegible]

१. [illegible]—पृष्ठ ६४
२. [illegible]—पृष्ठ ९, खादी कुमार ।

है । हास्य का विषय ध्वनि में से उत्पन्न होता है । व्याज-स्तुति, व्याज-निन्दा, आदि इसके प्रमुख भेद हैं ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सुन्दर परिहास लिखे हैं । मास-भक्षको पर उनका लिखा एक परिहास देखिए—

"धन्य वे लोग जे मास खाते,
हरना चिडा भेड इत्यादि नित चाव जाते ।
प्रथम भोजन वहुरि होइ पूजा, सुनित अतिहि सुखमाभरे दिवस जाते,
स्वर्ग को वास यह लोक में है, तिन्है नित्य एहि रीति दिन जे विताते ।"[१]

ऊपरी तौर पर मासाहारियो की स्तुति मालूम देती है किन्तु प्रच्छन्न रूप से उनका मजाक उडाया जा रहा है । इसी प्रकार शराबियो की स्तुति के व्याज से निन्दा की गई है—

"सुनिए चित्त धर यह बात ।
जिन न खायो मच्छ, जिन नहिं कियो मदिरा-पान ।
कछु कियो नहिं तिन जगत में यह सुनिस्चै जान ।"[२]

इसी प्रकार मास भक्षरण तथा "ब्राडी सेवन" पर दो कटूक्तिया और मनन करने योग्य हैं—

"अरे तिल भर मछरी खाइवो, कोटि गऊ को दान,
ते नर सीधे जात हैं, सुरपुर वैठि विमान ।"[३]

× × ×

"ब्राडी को अरु ब्रह्म को, पहिलो अक्षर एक,
तासों ब्राह्मो धर्म में, यामें दोष न नेक ।"[४]

मास भक्षरण करने पर स्वर्ग का मिलना तथा ब्रह्म-समाज में ब्राडी पीने में तनिक भी दोप न होना व्याज-स्तुति के सुन्दर उदाहरण है । प० प्रताप नारायण मिश्र ने भी वक्र-उक्तियो का प्रयोग अपनी कविता में यथेष्ट मात्रा में किया है । मनुष्य पुण्य कार्य करके अपना जन्म सुफल मानता है । वह ऐसे

---

१ भारतेन्दु नाटकावली—पृष्ठ ३६४
२ ,, ,, पृष्ठ ३६५
३ ,, ,, पृष्ठ ३७६

कार्य करता है जिससे उसे यश लाभ मिले किन्तु मिश्र जी ने "जन्म सुफल कब होय ?" शीर्षक कविता में सुन्दर वक्रोक्तियों द्वारा परिहास किया है। सेठ जी कहते हैं कि उनका जन्म सुफल जब होगा—

"बुधि विद्या बल मनुजता, छुवहिं न हम कहुँ कोय,
लछिमिनियाँ घर में बसैं, जन्म सुफल तब होय।"[1]

इसी प्रकार एक अमीर का जन्म सुफल कब होगा—

"हवा न लागै देह पर, करैं खुशामद लोय,
कोउ न खरी हमते कहै, जन्म सुफल तब होय।"[2]

वकील और पुलिस वालों का कल्याण इसी में है कि लोग आपस में लड़ें और मुकदमेबाजी करें—

"फूट बढ़ै सब घरन में, हारैं जीतैं कोय,
खुली अदालत नित रहै, जन्म सुफल तब होय।"[3]

इसी प्रकार पुलिस वालों की मनोकामना पूरी कब होगी—

"झूँठो साँचो फँसिहू, वारिदात में कोय,
आय भलो मानुस फँसै, जन्म सुफल तब होय।"[4]

पं० प्रतापनारायण मिश्र ने "कानपुर माहात्म्य" शीर्षक कविता में भी वक्र-उक्ति का प्रयोग किया है—

"मदिरा देवी हैजा ठाकुर, फूट भवानी मत महाराज,
सब के ऊपर स्वारथ राजा, नगरी नामवरी के राज।"[5]

बालमुकुन्द गुप्त ने भी हास्य के नव प्रभेद का उपयोग किया है। उनकी "कलियुग के हनुमान" शीर्षक कविता वक्र उक्तियों से भरी पड़ी है। हनुमान जी पहले अपने त्रेता युग के कर्तव्यों को बताते हुए बाद में कहते हैं—

"या कलि में कहा एतोइ बल हम मे नाहीं ?
बाँधि पूल करैं सेत पार सागर के जाहीं ?
मान समन्दर के पार सेत की उतै पनारा,

१. प्रताप लहरी—पृष्ठ ८७
२ ,, ,,
३ ,, ८८
४ ,, ,,
५ ,, ८६

रोकै पूछ पसार आन धर्म्मन को नाका।
यज्ञ मलेच्छन की सारी करकै भरभण्डा,
अपने मुख महँ डारि आहि सब मुर्गी अण्डा।
कूकर सूकर बीफ सीफ कछु रहे न बाकी,
स्वय होय तरु रूप करहि ऐसी चालाकी।
अहो भ्रातृगण ! बैठ करत क्या सोच विचारा ?
मारि एक छल्लांग करहु भारत उद्धारा।"[1]

कलियुग के हनुमान के व्याज से ऐसे व्यक्तियो का परिहास किया हैं जो देशोद्धार के वहाने दुनियाँ के कुकर्म करते है तथा भ्रष्टाचार फैला रहे है। इसी प्रकार 'जोरूदास' शीर्षक कविता द्वारा "पत्नी-भक्तो" पर वक्र-उक्ति कही गई है—

"अपना कोई नाहीं रे,
विन जोरू सिरताज जगत में कोई नाहीं रे।
मात पिता निज सुख लग जायो अपने सुख के भाई,
एक जोरू ही सग चलेगो ऐसी शिक्षा पाई।
मिले शिक्षिता सभ्या जोरू सुख का सार यही है,
राखे सदा ताहि काँधे पर सुख का सार यही है।
मूरख मात पिता ने पहले बहु सुख आदर पायो,
पै इस सभ्यकाल में सो सब चालें नाहि चलायो।"[2]

गुप्त जी ने एक "जोगीडा" लिखा है जिसमें वावा जी और उनके चेलो का वार्तालाप कराया है। चेलागण पूछते है—

"यती जी इसका खोलो भेद।
अण्डा भला कि रण्डा वावा, आँत भली या मेद,
विस्कुट भला कि सोहन हलवा, बक बक भला कि वेद।"[3]

इसका उत्तर वावा देते है—

"जो अण्डा सोही ब्रह्माण्डा, इसमें नाहीं भेद,
दोनो अच्छे समझो वच्चे सोई आत सोइ मेद।

---

१ गुप्त निवन्धावली—पृष्ठ ६७५

२ गुप्त निवन्धावली—पृष्ठ ६७८

३ मिस्टर व्यास की कथा—पृष्ठ ३९०

वेद का सार यही है, बुद्धि का पार यही है,
मिले तो अण्डा चक्खो, मिले तो मण्डा भक्खो।"[१]

प० शिवनाथ शर्मा ने लीडर की व्याज स्तुति लिखी है—

"लीडर के करि पांवन पूजो,
और न देव जगत में दूजो।
दिन जब लीडर रात कहावे,
कूद कूद कर चेलो गावे।
सत्य असत्य कहो डर नाहीं,
कारज सब योंही बन जाहीं।
अब स्वराज्य की चाल यह, हट्टी ओट शिकार,
नासहु कथन स्वतन्त्रता, परतंत्रता कि प्रचार।"

इसी प्रकार "मिस्टरस्तोत्रम्" शीर्षक से आजकल के फैशनेबुल युवक पर परिहास किया है—

"कोट बूट जाकटादिना सदैव शोभितम्,
मांग को सुधार हैट लोपटा महोदितम्।
कुरसियान टूल के लगे हमेश मिस्टरम्,
इस प्रकार के प्रभु नमामि देवविन्टरम्।"[२]

आज "खुशामद" और खुशामदियों का बोल बाला है। जीवन के अनेक कार्यों में खुशामद का प्रयोग किया जाता है। शिवनाथ शर्मा जी ने 'खुशामदियों' का स्तुति-गान करके कितना सुन्दर परिहास किया है—

"वन्दन करहुँ खुशामद चारी,
इनको प्रकट प्रभाव विचारी।
हाँ में हाँ करि जीते सबहीं,
हाकिम विमुख न इनको कबहीं।
साहब घर से डाली ढोवें,
गिड़गिड़ाय बतियाँ बोलें।
झुकि झुकि करें बंदगी ऐसी,
लागी लाग चोभ सुन जैसी।

---

१. मि० [illegible]—पृष्ठ ३६८
२. " " ३६८.

'जी हजूर' को मत्र उचारें
'खुदावन्द' के बहें पनारें ।"[१]

ब्रिटिश काल में अँग्रेज के घर जन्म होना एक बड़े सौभाग्य की बात थी उन्हे सुख और चैन था। "पढ़ीस" जी ने अँग्रेज के घर जन्म लेने का कितना चुटीला परिहास उपस्थित किया है—

"काकनि जब रामु घरयि जायउ,
इतनी फिरियादि जरूर किह्यउ।
जो जलमु दिह्यहु हमका स्वामी,
अँगरेजनि के बच्चा कीनह्यउ।"[२]

बच्चा अपने काका से कहता है कि मृत्यु के बाद आप अँग्रेज के घर जन्म लेने का वरदान माँगना। कैसा मार्मिक परिहास है! अपनी 'धमकच्चरु' शीर्षक कविता में एक वकील साहब के त्याग की प्रशसा कर उनकी आमदनी का विरोधाभास दिखाकर परिहास किया गया है—

"बडे भइया उकीली का अङ्गरखा ओढ़ि दीन्हिनि हयि,
इललु बी का कठिन कठारे मा बाँधि लिन्हिनि हयि।
रही कुछु हाँसियति, गहना गरीबी माँगि रउँ गाँठ्यन,
पढाई पूरि होययि दामु-दामुपि पूरि दीन्हिनि हयि।
कच्यहरी जाति हयि रोजयि यी हँसि हँसि बहँसि ब्यालपि,
मुलउ महिना कि म्यहनति पारु पयिना आठ पायिनि हयि।"[३]

प० हरिशकर शर्मा का परिहास भी सुन्दर होता है। वक्र वचन कहना ही परिहास की जान है। दीन दुखियो की सहायता करना, ब्राह्मणो को दान देना आदि भारतीय सस्कृति में श्लाघ्य माने गये है लेकिन अविद्यानन्द जी उपदेश देते है—

"सुखी साधु को मान खाना न दो,
किसी दीन को एक दाना न दो।
कभी गाय बूढ़ी नहीं पालना,
किसी मिश्र को दान दे डालना।"[४]

---

१ मिस्टर व्यास की कथा—पृष्ठ ३००
२ चकल्लस—पृष्ठ ५६
३ चकल्लस—पृष्ठ १८
४ चिडियाघर—पृष्ठ ४५

अन्धविश्वास, जातीय-संकोच आदि पर भी शर्मा जी ने लिखे हैं—

"रचो ढोंग पाखण्ड छूटे नहीं,
छुआछूत का तार टूटे नहीं।
× × ×
महामूढ़ता के सगाती रहो,
दुराचार के पक्षपाती रहो।
जुड़ें चौधरी पंच पोंगा जहाँ,
न बोला करो बोल वाले वहाँ।"

इसी प्रकार शर्मा जी ने अपने समय की वृत्तियों तथा स
कुसंस्कारों पर भी परिहास लिखा है। भगवान से आशीर्वाद म
मांगते हैं—

"नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद।
हो जायें हम भारतवासी, सब के सब बरबाद,
भारत पड़े भाड़ में चाहे, घटे न पद मर्याद।
रहे गुलामी के गड्ढे में, करें न दाद फिराद,
जरा जरा से वाक्यात पर बरसा करें फिसाद।"[1]

वे प्राचीन संस्कृति के पक्षपाती थे और आर्य समाजी थे
युवकों पर पड़ते हुए पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को सह नहीं सक
इनके परिहास में घृणा तथा भर्त्सना की मात्रा अधिक है। "अल्हड़
हैं रे" शीर्षक कविता में वे कहते हैं—

"हिन्दू हुओ गोरे कर कान,
हो जाओ बिल्कुल बेगान।
ऋषि मुनियों को जाओ भूल,
काटो मंदिर धर्म बबूल।"[2]

[illegible]

बेढव बनारसी "घूंस" की व्याज-स्तुति करते हुए लिखते हैं—

"खुदा से रात दिन हम खैरियत उनकी मनाते हैं,
निडर होकर मजे से घूस लेना जो सिखाते हैं।"[१]

इसी प्रकार आधुनिक तीर्थों का परिहास देखिए—

"न बदरीनाथ जाते हैं न अब जाते हैं वह काशी,
मिसों के दर्शनों को लदनों पेरिस वह जाते हैं।"[२]

आधुनिक साहित्य के गीतकारो पर रचा परिहास देखिए—

"रच रहे आप हैं साहित्य नया क्या कहना,
गीत का रूप है धुन उसमें है क़व्वाली की।"[३]

श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने भी परिहास लिखा है। "पत्नी-पूजको" को उपदेश देते हुए लिखते है—

"तुम उनसे पहले उठा करो,
उठते ही चाय तैयार करो।
उनके कमरे के कभी अचानक,
खोला नहीं किवाड़ करो।
उनकी पसन्द से काम करो,
उनकी रुचियों को पहिचानो।
तुम उनके प्यारे कुत्ते को,
बस चूमो चाटो प्यार करो।"[४]

इसी प्रकार आपने आलसियो के मुख से "आराम" शब्द का महत्व कहलवाया है—

"आराम शब्द में राम छिपा जो,
भव बन्धन को खोता है।
आराम शब्द का ज्ञाता तो,
विरला ही योगी होता है।
इसलिए तुम्हें समझाता हूँ,

---

१ बेढव की बहक—पृष्ठ ३३
२ ,, पृष्ठ ३३
३ ,, पृष्ठ ७८
४ अजी सुनो—पृष्ठ ८६

मेरे अनुभव से काम करो
ये जीवन यौवन क्षण भंगुर,
आराम करो, आराम करो।"[1]

और यदि कुछ करना ही पड़ जाए तो—

"यदि करना ही कुछ पड़ जाए,
तो अधिक न तुम उत्पात करो।
अपने घर में बैठे बैठे बस,
लम्बी लम्बी बात करो।"[2]

कान्ता नाथ पांडे "चोंच" की कविता में भी परिहास यथेष्ट मात्रा में मिलता है। ज्यों-ज्यों समय बदलता गया त्यों-त्यों हास्य के आलम्बन बदलते गये। जबसे कांग्रेस का राज्य हुआ, नेताओं का प्रभुत्व बढ़ा। चोंच जी अपनी "वन्दना" शीर्षक कविता में व्याज-स्तुति की शैली में परिहास करते हैं—

"वन्दौं कांगरेसी राज।
कृपा पाकर जाहि की सब ओर सुख का साज,
सब प्रजा इमि है सुखी ज्यों चटक पाकर बाज।
× × ×
बढ़ें यों नेता हमारे सभी बेअन्दाज़,
आजकल ज्यों मूलधन से बढ़ा करता ब्याज।"[3]

मुहर्रिर भी समाज का एक विशेष जन्तु होता है। उसकी महिमा का वर्णन "चोंच" जी करते हैं—

"तुम परिवर्तन करने वाले,
तुम नव-नर्तन करने वाले।
तुम कितनों को ही जेबों का,
हो फल कर्तन करने वाले।
पक्षिणि कपोत के हेतु बाज,
मद-मस्त मुहर्रिर महाराज।"[4]

विरोधाभास द्वारा भी परिहास की सृष्टि की जाती है। "उल्फत" शीर्षक कविता में "चोंच" जी ने इसी शैली द्वारा परिहास की सृष्टि की है—

"मुझको क्या तू ढूढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में,
ना मैं सिनेमा, न मैं थियेटर, न टिकट, ना फ्री पास में।
ना गांधी में, ना जिन्ना में, ना राजेन्द्र, सुभाष में,
ना खद्दर में, ना चरखा में, ना मोहर, चपरास में।
ना प्रोफेसर में, ना टीचर में, ना स्टूडेन्ट, ना क्लास में,
ना मलमल में, ना मखमल में, नहीं सिल्क या क्लास में।
× × ×
मुझे ढूंढना चाहे तो तू पल भर की तालास में,
तो तू जा ससुरार रे बन्दे, ढूंढ ससुर औ सास में।"[1]

कुज बिहारी पांडे ने भी परिहास सुन्दर लिखा है। भाषण का महत्व उनके शब्दो में—

"अच्छा भाषण दिये विना, थैली चन्दे की हजम न होती,
विना हार में पडे न सुन्दर, हो कितना ही सुन्दर मोती।
× × ×
स्मित-भृकुटि विलास विना, फीका लगता है प्रेम प्रदर्शन,
रगडे विना नहीं पीतल का, फीका लगता है प्रेम प्रदर्शन,
विना मंच पण्डाल, न अच्छा लगता गीता का भी दर्शन।"[2]

इसी प्रकार मत्री जी का पछतावा देखिए—

"कसम तुम्हारी खाकर कहता, मैं मत्री बनकर पछताया।
जितनी मागें हुईं कभी उससे कम नहीं दिये आश्वासन,
हैं इतने आदेश दे दिये बाकी रहा नहीं अनुशासन।
एक एक दिन में कितनी ही, प्रदर्शिनी परिषदें सम्हालीं,
जहाँ जहाँ पहुचा, दे भाषण उजली करदीं रातें काली।"[3]

भुशडिजी ने "हिजडा" शीर्षक कविता में अपनी वक्रोक्तियो द्वारा इस समाज के विशिष्ट व्यक्तियो को हास्य का आलम्बन वनाकर परिहास किया है। वे उनकी वीरता का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

---

१ खरीखोटी—पृष्ठ १०५

२ उपवन—पृष्ठ १३

"हे भारत के दिग्गज महान् !
तुम बृहन्नला के अनुयायी,
द्वापर युग के पक्के निशान।
तुम अवसरवादी नेता से,
गागर में सागर भरते हो।"

अपनी सुकीर्ति से पुरखों का,
तुम नाम उजागर करते हो।
तुम तीसमारखाँ बन कर भी,
ना मार सके कोई मक्खी।
अँग्रेजियत न अब तक हटा सके,
जो अपने घर में है रक्खी।
लेकिन तुमने तो बदल दिया,
निज बल से विधना का विधान।
हे भारत के दिग्गज महान् !"[1]

श्री वंशीधर शुक्ल ने परिहास 'वोटर' भगवान की स्तुति रूप में लिखा है—

"जय वोटर भगवान् !
आपकी टूटी फूटी मूक अविकसित वाणी पर,
नाचा करते हैं नूतन युग निर्माण।
जय वोटर भगवान् !
आप के नगन नील धूलि-धूसरित चरणों पर,
नत मस्तक, त्याग, तपस्या, सेवा।
साहस, बुद्धि, योग्यता, विद्याशिक्षा न्याय,
नीति, छल रीति, जाल तिकड़म, कूटनीति।
कुलरीति, धर्म, जातीय बंधुता, जेल-यातना,
गड्डों भरी तिजोरी खाता।
तन, मन, धन, सर्वस्व समर्पण,
जब तक वोट नहीं देते हो।
सब तब तुच्छ समान,
जय वोटर भगवान !"[2]

स्नेह हास (Humour)

स्नेह हास ही शुद्ध हास्य होता है। इसमें आलम्बन के प्रति ममता के भाव होते हैं। इसमें जो वक्रता, विकेन्द्रियता, असगति या आकस्मिकता देखने को मिलती है उसमें इतनी हार्दिकता रहती है कि आलोचना, उपहास या जुगुप्सा के लिए अवसर ही नही रह जाता। इसमें आत्मीयता रहती है, जिस पर हम हँसे वह हमारा प्रिय भी होता है, अत ऐसा हास तरल हो जाता है।

स्नेह हास के लिए प्रयोजन, सामान्यता, अतिवादिता, ईर्ष्या और अस्वीकृति घातक होते हैं। इस समाज-सुधार अथवा किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन से कोई सरोकार नही। ईर्ष्या से प्रेरित होकर कलाकार और सब कुछ कर सकता है, स्नेह हास को जन्म नही दे सकता।

यद्यपि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने व्यग्य तथा परिहास ही अधिक लिखा किन्तु तरल हास्य के छींटे भी उनके काव्य में यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। "मुशायरा" शीर्षक उनकी एक कविता में शुद्ध-हास्य की सुन्दर उद्भावना हुई है—

> "गल्ला कटै लगा है कि भैया जो हैं सो हैं,
> बनियन का गम भवा है कि भैया जो हैं सो हैं।
> कुप्पा भये हैं फूल कै बनियाँ बफते माल,
> पेट उनका दमकला है कि भैया जो हैं सो हैं।
> असवार नाहीं पच से बढ कर भया कोऊ,
> सिक्का वह जमगवा है कि भैया जो हैं सो हैं।"[1]

"कि भैया जो हैं सो हैं" इस तकिया कलाम के द्वारा हास्य उत्पन्न होता है, विशुद्ध हास्य है। किसी उद्देश्य से नही लिखा गया। बनियो की हँसी भी उडाई जा रही है किन्तु ममता तथा स्नेह से सिक्त होकर द्वेष अथवा घृणा के भाव से नही उनकी "पाचन वाला" चूरन के लटके में शुद्ध हास्य की उद्भावना सुन्दरता पूर्वक हुई है—

> "चूरन अमल वेद का भारी जिसको खाते कृष्ण मुरारी,
> चूरन बना मसालेदार जिसमे खट्टे की बहार।
> मेरा चूरन जो कोई खाय मुझको छोड कहीं नहि जाय,

१ हरिश्चन्द्रिका—अगस्त १८७६ (खण्ड ६—स० १४)

चूरन नाटक वाले खाते इसकी नकल पचा कर लाते।
चूरन खावें एडिटर जात जिनके पेट पचै नहिं बात।"[1]

सम्पादकों के पेट में बात नही ठहरती, यह तरल हास्य है—निरुद्देश्य एव स्नेहयुक्त। इसी प्रकार "चने जोर गरम" शीर्षक गीत भी शुद्ध हास्य युक्त है—

"चने बनावें घासी राम, जिनकी झोली में दूकान।
चना चुरमुर चुरमुर बोले, बाबू खाने को मुंह खोले।
चना खाते सब बंगाली, जिनकी धोती ढीली ढाली।
चना खाते मियां जुलाहे डाढी हिलती गाहे बगाहे॥"[2]

प० प्रताप नारायण मिश्र ने "बुढापा" शीर्षक एक कविता लिखी जो विशुद्ध हास्यात्मक है। बुढापे की दशा का वर्णन देखिये—

"हाय बुढापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन।
× × ×
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवति, मूंडुइ कहे न दै मारन।
कहा चहो कछु निकरत कुछ है, जीभ रांड का है यह हालु।
कोऊ याकी बात न समझै चाहे बीसन दांय कहन।
डाढी नाक याक मां मिलिगै, बिन दांतन मुंह अस पोपलान।
उदिहो पर बहि बहि आवति है, कबहुं तमाखु जो फांकन॥"[3]

भाव-व्यंजना एवं वस्तु-व्यंजना दोनों ही दृष्टि से कविता सफल बन पड़ी है। बुढापे की विवशताओं का सहारा हास्य के उद्रेक करने के लिए लिया गया है।

बालमुकुन्द गुप्त ने यद्यपि राजनैतिक एवं सामाजिक व्यंग्य ही अधिक लिखे किन्तु सरल हास्य की दृष्टि से उनकी 'भैंस का मरसिया" शीर्षक कविता सुन्दर बन पड़ी है। 'भैंस" के स्वर्गवास हो जाने के उपरान्त उनके दुःख में गुप्त जी गाते हैं—

"खड़ी देखती है यह पड़िया बेचारी,
मरी है यों ही नांद सानी की मारी।

१. भारतेन्दु नाटकावली—पृष्ठ ६६१.
२. ,, ,, ,, ६६३.
३. प्रताप लहरी—पृष्ठ ८०.

पड़ी है कहीं टोकरी और खारी,
वह रस्सी गले की रखी है सँवारी।
बता तो सही भैंस तू अब कहाँ है ?
तू लाला की आँखों से अब क्यो निहाँ है ?"[१]

"पढीस" की "हम और तुम" शीर्षक कविता में फैशन परस्त युवक का हास्यमय चित्रण किया गया है। यद्यपि युवक को आलम्बन बनाया गया है किन्तु उसमें ममता का होना तथा घृणा के भाव के न होने से व्यग्य नही बन पाया, शुद्ध हास्य रह गया है। देखिए—

"लरिका सब भाजयि चउकि चउकि,
रपटावाँय कुतवा भडकि भडकि।
तुम अजुभुतु रूप धरयउ भय्या,
जब याक बिलायिति पास किह्यउ।
बिल्लायि मेहारिया बिलखि बिलखि,
साथ की बदरिया निरखि निरखि।"[२]

"जय नलदेव हरे" शीर्षक कविता में प० हरिशकर शर्मा ने शुद्ध हास्य की व्यजना की है, क्योकि परोक्ष रूप से भी इसमें किसी के ऊपर कटाक्ष नही है। अतएव यह विशुद्ध हास्य की कोटि में आता है। देखिए—

ओम् जय नल देव हरे।
कहुँ झर झर झरना सम झरकें सुषमा सरसाओ,
कहुँ भादों की भाँति मेघ बनि पानी बरसाओ।
ओम् जय नल देव हरे।
चढ़े चढ़ायो तुम पै सब को पै न सबै पाओ,
दीनन की पुकार सुनि-सुनि के बहरे बनि जाओ।"[३]

वेढव जी ने भी शुद्ध हास्य लिखा है जो कि भाषा की रवानगी की दृष्टि से सुन्दर है—

"बहुत है "इनकम" दिलों की तुमको कहीं न लग जाय टैक्स देखो,
जनाब आया है वह जमाना कि इससे कोई बरी नहीं है।

१ गुप्त निबन्धावली—पृष्ठ ७२४
२ चकल्लस—पृष्ठ ६५
३ वेढब की बहक—पृष्ठ ११

"नहीं हुकूमत चलेगी उन पर फजूल हैं कोशिशें तुम्हारी,
यह है मुहब्बत की एक दुनियां जनाब यह "टीचरी" नहीं है।
दिखाया टूटा हुआ दिल अपना जो मैंने सरजन को तो वह बोला,
बनेगा लंदन में दिल तुम्हारा यहां यह कारीगरी नहीं है।"[1]

चोंच जी ने "स्वयं" को आलम्बन बना कर "निराशा का गान" शीर्षक कविता में शुद्ध हास्य की सृष्टि की है—

"क्या बताऊं?
"श्रीमती जी हैं गयी मैके चलूं खाना पकाऊँ,
भूख जोरों से लगी है वीरता सारी भगी है।
चलूं "नोट्स" तैयार करने की जगह चूल्हा जलाऊं।
क्या बताऊँ?
फूंक मैं चूल्हा रहा हूँ नहा स्वेदों से गया हूं,
पर डटा हूँ युद्ध में, कैसा अनोखा बेहया हूं।
लकड़ियां सब हैं सरस, इनको चलूं नीरस बनाऊं।
श्रीमती जी हैं गयी मैके, चलूं खाना पकाऊं।
क्या बताऊँ?"[2]

श्री बेधड़क जी ने अपने "प्रियतम से बजट पास कराने" के माध्यम से शुद्ध हास्य की सृष्टि की है—

"बिट्टी की शादी करनी है,
नन्नू का मुंडन करना है।
जो हुआ जनेऊ पन्नू का,
उसका भी कर्जा भरना है।
यह दो हजार का खर्चा है,
इसमें न कटौती हो सकती।
हां यह मकान मालिक भी तो,
देता रहता नित धरना है।
ये सारे काम जरूरी हैं,
मत चेहरा मेरी उदास करो।

करती हूँ घर का वजट पेश,
प्रियतम तुम इसको पास करो।"[1]

रमई काका ने "तैं कह्यौं वाह रे तोंद वाह" में तोंद की महिमा का वर्णन किया है—

"उइ उपरैं ऊपर खैंचि लिहिनि, तौ सव घरु पल्ले पार भवा।
मुलु तोंद न निकरा खिरकी ते, मैं कह्यों ग्राह रे तोंद ग्राह॥
जब सहर गयन रिक्सावाले, हमका द्यखतैं कलराय जाँय।
ग्रौ डबल केराया दिहे विना, ताँगा वाला भन्नाय जाँय।"[2]

कविवर "भुशडि" ने कुछ साहित्यिको के शब्द-चित्रो में सुन्दर हास्य का सृजन किया है। प० श्रीनारायण चतुर्वेदी का हास्य-रस शब्द-चित्र देखिए—

"गोरे से पतले दुवले पर हिन्दी में हैं गामा,
प्यारी रिस्टवाच से ज्यादा जिन्हें साइकिल श्यामा।
ग्रपटूडेट ब्रिटिश माडेल पर रोली तिलक लगाते,
एक साथ पडित मिस्टर का जो हैं नियम निभाते।
ग्रपनो से खुलकर मिलते हैं बाकी से तो मौन हैं।
जो 'वियना की सडक' सुनाते बावूजी ये कौन हैं।"[3]

श्री गोपाल प्रसाद व्यास की कलम खो गई। उसके विरह का हास्यमय वर्णन ग्रतुकान्त छन्द में देखिए—

"वह थी कलम,
फाउन्टेन कहा करता था,
लिखता था जिससे,
नित्य पत्र ससुराल को,
क्योकि श्रीमती जी के,
रिश्ते थे ग्रनेक,
ग्रौर उन सवको,
निवाहना जरूरी था।

---

१ धर्मयुग हास्यरसाक—मार्च १९५४
२ भिनसार—पृष्ठ ६३
३ जमालगोटा—पृष्ठ ४७

मेरी मुनीम,
जो रोज लिखा करती थीं
धोबी का हिसाब
नई लिस्ट खरीदारी की
कर्ज दोस्तों को
औ अशेष हाल वेतन का
सोते वक्त डायरी
रिफाउं गए जीवन का
हाय चिरसंगिनी
अजस्र मसि-धारिणी
जो भावों के बिना ही
नये गीत लिख देती थी
खुद न खरीदी
किसी मित्र की धरोहर थी
आज देखी जेब तो
प्रतीत हुआ खो गई।
खोगई—खोगई।"[1]

पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने "घंटाघर" शीर्षक कविता में शुद्ध हास्य की सृष्टि की है—

यू० पी० में एक प्रयाग नगर,
उसके बाजार में घंटाघर।
× × ×
यह गति-मुग्धा, यह प्रगतिशील,
प्रतिपल यह आगे चले बढ़ी।
लड़कों ने कहा बजे तीन
अब बजे चैन की मधुर बीन।
दफ्तरवालों ने कहे पांच,
कागज फाइल में लगे आंच।
सिनेमाप्रेमी ने कहे नौ,
साढ़े छः बजने होता जो"।[2]

कवि देहाती जी के इन दोहो में शुद्ध हास्य की अभिव्यक्ति है—

"पिय आवत मग विलमगे, मिली सौति वेपीर,
मानों चलती रेल की खेंची कोऊ जन्जीर।
नेही सों मिलिबे चली तबलों पिय गये आय,
बिना टिकट के सफर में ज्यों चेकर मिलि जाय।"

पैरोडी (Parody)

"पैरोडी" के साहित्यिक मूल्याकन के वारे में पिछले अध्यायो मे पर्याप्त विवेचन किया जा चुका है। यहाँ हमे हिन्दी में "पैरोडी साहित्य" का विवेचन ही अभीष्ट है। "पैरोडी" का जन्म भारतेन्दु काल में ही हो चुका था। श्री राधाचरण गोस्वामी ने अपने पत्र "भारतेन्दु" में एक "पैरोडी" लिखी—

"आज हरि हाईकोर्ट सिधारे।
पुरी द्वारिका मध्य सुधर्मा सभा मनों पग धारे।
परम भक्त साहव नौरिस को निज कर दर्शन दीनो॥
वहुत दिनन को ताप आपने पापसहित हरि लीनो।
आवत समै सुरेन्द्र नाथ कों कारागार पठायो॥
को कहि सकै विचार विवेचन यह मूरख मन मोरो।
सूरदास जसुदा को नन्दन जो कुछु करे सो थोरो॥"[1]

उक्त "पैरोडी" का सामाजिक पहलू उत्कृष्ट है। प० बालकृष्ण भट्ट ने सस्कृत में कुछ "पैरोडिया" लिखी। उर्दू तथा सस्कृत मिश्रित एक पैरोडी देखिए—

"दृष्ट्वा तत्र विचित्रता तरुलता मै था गया वाग में,
काचिन्तत्र कुरग शावनयना गुल तोरती थी खडी।
उद्यद्रम् धनुषाकटाक्ष विशिरवैधामिल किया था मुझे,
मज्जानी तवरूप मोह जलधौ हैदर गुजारे शुकुर।"[2]

वावू वालमुकुन्द गुप्त ने भी "पैरोडी" लिखी। सती अनुसुइया के सदुपदेश का परिहासमय अनुकरण देखिए। इसमें वर्तमान युग के पतिव्रत धर्म पर व्यग्य है—

---

१ भारतेन्दु मासिक—२० जून १८८८, ३पृष्ठ ४४

२ हिन्दी प्रदीप—दिसम्बर १९०६, पृष्ठ १३

"एकहि धर्म, एक व्रत नेमा, काय वचन मन, पति पद प्रेमा,
पै पति सो जो कहुं भावे, रोम रोम भीतर रम जावे।
बालकपन को पति जो कोई, तासों प्रीति करो मत कोई,
एक मरे दूसर पति करहीं, सो तिय भव सागर उतरहीं।"[1]

प० हरिशंकर शर्मा ने सुन्दर "पैरोडियां" लिखी। तुलसीदास जी की पैरोडी देखिए—

"सब यानन तें श्रेष्ठ अति, द्रुति-गति गामिनि कार,
धनिक जनन के जिय बसी, निस दिन करत विहार।
मंजुल मूर्ति सदा सुख देनी,
समुझि सिहावहिं स्वर्ग नसैनी।
× × ×
पों पों करति सुहावति कैसे,
मुनि मख शंख बजावहिं जैसे।
× × ×
वाहन-कुल को परम-गुरु, सब कहँ सुलभ न सोय
रघुवर की जिन पै कृपा, ते नर पावहिं तोय।"[2]

उपरोक्त पैरोडी में तुलसी दास जी का छन्द-साम्य ही नहीं है वरन् जो तुलसी की शैली की विशेषताएं हैं उन्हें भी हास्यमय बनाया गया है।

अतुकान्त कविता को लेकर "निराला" की एक पैरोडी और देखिए—

"खट्वा।
मोही, चतुष्पदी, निष्पदी तथा—
निर्भ्रान्त, अलक्षिता, एवम् सापेक्ष सत्ता, सुरम्या—
मत्कुणमय-मत्कुण सेविता
तक्षा, एवम्
रचना .... शयनाकार सयुक्ता
सम्पूर्ता—सुशोभिता।
नगेन्द्र, रज्ज—रचरी।

प० ईश्वर प्रसाद शर्मा ने तुलसीदास जी के एक दोहे की "पैरोडी" की है—

"चित्रकूट के घाट पर, भइ लठन की भीर,
बाबा खड़े चला रहे, नैन सैन के तीर।"[१]

बेढब जी ने कई सुन्दर "पैरोडियाँ" लिखी हैं। प्रसाद जी के प्रसिद्ध गीत "बीती विभावरी जाग री" की पैरोडी देखिए—

बीती विभावरी जाग री।
छप्पर पर बैठे काँव काँव,
करते हैं कितने कागरी।
तू लम्बी ताने सोती है,
बिटिया माँ कह कह रोती है।
रो रो कर गिरा दिये उसने,
आँसू अब तक दो गागरी।
बिजली का भोंपू बोल रहा,
धोबी गदहे को खोल रहा।
इतना दिन चढ़ आया लेकिन,
तूने न जलायी आग री।
उठ जल्दी दे जलपान मुझे,
दो बीड़े दे दे पान मुझे।
तू अब तक सोती है आली,
जाना है मुझे प्रयाग री।
बीती विभावरी जाग री।"[२]

बेढब जी ने "बच्चन" की "पैरोडी" भी की है—

"जीवन में कुछ कर न सका,
देखा था उनको गाड़ी में।
कुछ नीली नीली साड़ी में,
वह स्टेशन पर उतर गयीं।
मैं उन पर थोड़ा मर न सका,
वह गोरी थीं, मैं काला था।

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—पृष्ठ ५६
२ साहित्य सन्देश—अप्रैल १६४०, पृष्ठ ३६.

लेकिन उन पर मतवाला था,
मैं रोज रगड़ता साबुन पर,
चेहरे का रंग निखर न सका।"[1]

श्री श्यामनारायण पाण्डेय की "हल्दीघाटी" की सुन्दर "पैरोडी" "चूनाघाटी" शीर्षक से चोंच जी ने की है—

"नाना के पावन पाँव पूज,
नानी पद को कर नमस्कार।
उस अण्डी की चादर वाली,
साली पद को कर नमस्कार।
उस तम्बाकू पीने वाले के,
नयन याद कर लाल लाल।
डग डग सब हाल हिला देता,
जिसके लों-लो का ताल ताल।
घन घन घन घन घन गरज उठी,
घण्टी टेबुल पर बार बार।
चपरासी सारे जाग पड़े,
जागे मनीआर्डर और तार।
कविवर श्रीनारायण जागे,
दफ्तर में जगमोहन जागे।
घर घर कवि सम्मेलन जागे,
वेटर जागे, बचन जागे।" [2]

कबीरदास के दो दोहों की पैरोडियाँ भी 'चोंच' लिखित देखिए—

"नेता ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
चन्दा सारा गहि रहै, देय रसीद उड़ाय॥
यह घर थानेदार का खाला का घर नाहिं।
नोट निकारै पग परै, तब बैठे घर माहिं॥" [3]

बेधड़क बनारसी ने चन्द्रप्रसाद वर्मा "चन्द्र" के प्रसिद्ध गीत 'मेरे आँगन में भीड़ लगी मैं किसको कितना प्यार करूँ' की पैरोडी की है—

"मेरे आँगन में भीड़ लगी, मैं किसको किसको प्यार करूँ ?
ये सास-ससुर साली-साले,
बीबी बच्चे और घरवाले,
ये दिली दोस्त गोरे-काले,
सब मुझे "डियर" कहते हैं प्रिय, किसका किसका इतबार करूँ ?
कुछ कविवर हैं, कुछ शायर हैं,
कुछ डायर हैं, कुछ कायर हैं,
कुछ ट्यूब और कुछ टायर हैं,
भारत रक्षा का भय मुझको, कैसे इनका व्यापार करूँ ?" [१]

"बच्चन" की कविताओं की "पैरोडियाँ" विशेष लिखी गई हैं। "भैयाजी बनारसी" ने बच्चन के "तुम गा दो मेरा गान अमर हो जाये" की "पैरोडी" लिखी है—

"तुम रो दो मेरा गान अमर हो जाये।
मेरा हृदय बड़ा उच्छृंखल—
उछल उछल रह जाये।
दोनों हाथ दबाकर इसको,
मैंने छन्द बनाये।
किन्तु रेडियो सम्मेलन में,
मैं जाकर पढ़ आया—
तुम छू दो, मेरा कान अमर हो जाये।" [२]

उपरोक्त "पैरोडी" उच्च कोटि की नहीं कही जा सकती। इसमें न बच्चन की शैली का ही परिहास हो पाया है और न छन्द-साम्य ही है। केवल एक पंक्ति का उलटफेर कर देना अच्छी पैरोडी के लिए पर्याप्त नहीं होता।

श्री गोपालप्रसाद व्यास ने तुलसी तथा रहीम के दोहों की पैरोडियाँ लिखी हैं—

"रहिमन लाख भली करो, जिन्ना जिद्द न जाय,
राग सुनत, पय पियत हू, साँप सहजि धर खाय।

१ हास परिहास—पृष्ठ ४५
२ हास परिहास—पृष्ठ ८९

तुलसी या संसार में, कर लीजै दो काम,
भरती हूजै फौज में, वारफन्ड में दाम।"[१]

श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी जो मिस्टर चुकन्दर के नाम से हास्य-रस लिखते हैं, "रत्नाकर" के उद्धवशतक की पैरोडी में लिखते हैं—

"फौजैं देश-भक्ति को प्रचार गिरि-शृङ्गन पै,
हिय में हमारे अब नेकु सटिहै नहीं।
कहै "रत्नाकर" जे हँसिया हथौड़ा छाँड़ि,
हाथ में "तिरंगा झण्डा" आजु सटि है नहीं।
रसना हमारि चारु चातकी बनी है ऊधो,
"लेनिन" विहाय और रट रटि है नहीं।
लौटि पौटि बात को बवण्डर बनावत क्यों?
नैन ते हमारे अब रूस हटि है नहीं॥"[२]

पं० सोहनलाल द्विवेदी की "वासवदत्ता" शीर्षक कविता की उत्कृष्ट कोटि की पैरोडी पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने "महाश्वेता" शीर्षक में लिखी है। छन्द-साम्य एवं शैली के हास्यमय अनुकरण दोनों ही दृष्टि से यह सुन्दर बन पड़ी है—

"आतुर पुण्डरीक ने,
फेंकी निज साइकिल
और बैठा घुटनों के बल
देवी की प्रार्थना में भक्त जैसे बैठा हो,
बोला—
यौवन यह अर्पित पद-पद्म में है।
इसे स्वीकार करो,
यह न तिरस्कार करो।
रूप यह,
यौवन यह,
जिसने प्राण हरने को

अपनी कन्याओं के लिए
कितने कलक्टर और डिप्टी कलक्टरों ने,
× × × ×
चक्कर हैं काटे मेरे पिता के घर के।
× × × ×
अर्पित है यौवन यह
अर्पित कैरियर है यह
प्रणय निवेदित है।
हृदय निवेदित है।
करो स्वीकार मुझे
तृप्ति वरदान मुझे।
तप्त उर शीतल करो गाढ़ परिरम्भन दे।" [1]

श्री ऋषिकेश चतुर्वेदी ने बच्चन की "मधुशाला" की पैरोडी "विजय-वाटिका" शीर्षक लिखी।

अन्त में श्री बरसाने लाल चतुर्वेदी की "सुदामा चरित" की पैरोडी से इस प्रकरण को समाप्त करते हैं—

"सोने की कमानी को चश्मा सुलोचन पै,
खद्दर की टोपी को मुकुटधरे माथ हैं।
पहिने कारी अचकन औ पायजामा चूड़ीदार,
अभिनन्दन ग्रन्थन के पद्म धरे हाथ हैं।
मिडिल तक संग पढ़े आगे वे छोडि गये,
तुमही कहत जेल गये एक साथ हैं।
लखनऊ के गये दुख दारिद हरेंगे नाथ,
लखनऊ के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं।

आम की गुठली से मुख सो, प्रभु जाने को आय बसे केहि ग्रामा।
खद्दर को एक थैला है हाथ में, "बाटा" की चप्पल सोहत पामा॥
द्वार खरो स्वयं-सेवक एक रह्यो चकिसो, वसुधा अभिरामा।
पूंछत दीनदयाल को धाम औ कागज पै लिखि दीनो है नामा॥"

उपसंहार

भारतेन्दु काल में हास्यरस की कविता का अच्छा प्रचलन था। तत्कालीन पत्रों मे बराबर हास्य रसमय काव्य प्रकाशित होता था। सरकार के खुशामदी, सरकारी अफसर, हिन्दी के विरोधी आदि आलम्बन बनाये जाते थे। द्विवेदी युग में साहित्यिक वाद विवादों में हास्य रस की कविता का उपयोग किया गया। इसके अतिरिक्त धार्मिक पाखंडी एवं असामाजिक लोग, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, आदि आलम्बन बनाये गये। वर्तमान युग में राजनैतिक नेता, सरकारी योजनाएँ, फैशनपरस्त युवक, कालिज के छात्र, आदि आलम्बन बनाये गये। पैरोडी का प्रचलन भारतेन्दु काल में ही हो गया था किन्तु उसकी समृद्धि आधुनिक युग में ही हुई।

हास्य के प्रभेदों में सबसे अधिक व्यग्य ही मिलता है। सबसे अधिक कमी स्नेह-हास्य की कविताओं की रही है।

: ११ :

हास्य रस के पत्र-पत्रिकाएँ

भारतेन्दु-काल में ही हिन्दी-गद्य-साहित्य का विकास हुआ। समाचार-पत्र तथा साहित्यिक मासिक एव पाक्षिक पत्रो तथा पत्रिकाओ का प्रकाशन भी भारतेन्दु काल में हुआ। यद्यपि प्रमुख रूप से भारतेन्दु काल में हास्य-रस का कोई पत्र नही निकला किन्तु उस समय के अधिकाश पत्रो में हास्य एव विनोद का महत्वपूर्ण स्थान रहता था।

"हरिश्चन्द्र-मैगज़ीन" सन् १८७३ में निकली। पत्रिका का विवरण प्रथम पृष्ठ पर इस प्रकार छपा है—

"A monthly journal published in connection with the Kavivachan-Sudha containing articles on literary, scientific, political and religious subjects, antiquities, reviews, dramas, history, novels, poetical selections, gossip, humour and wit" हास्य एव व्यग्य भी उसके उद्देश्यो में से एक था।

हरिश्चन्द्र-मैगज़ीन का नाम वदल कर "हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" हो गया। इसके ही खण्ड १ सख्या ६ सन् १८७४ के अक में शिवप्रसाद गुप्त की उर्दू-प्रियता पर "है है उर्दू हाय हाय" शीर्षक "स्यापा" छपा था। भारतेन्दु वाबू की इच्छा थी कि अँग्रेज़ी के "पच" पत्र की भाँति हिन्दी में भी एक विशुद्ध हास्य रस का पत्र प्रकाशित किया जाये जैसा कि उनकी सूचना से स्पष्ट है—

> "मेरी वहुत दिनों से इच्छा है कि एक हास्य रस का हिन्दी भाषा में पच पत्र प्रचलित करूँ, सव हिन्दी के रसिको से सहायता की प्रार्थना है। अभी केवल १३ ग्राहक हुए हैं और १०० ग्राहक होने पर पत्र छपेगा।"[१]

---

१ श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—अक्टूबर १८७७ ई०, सख्या १

"हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में "चोज की बातें" शीर्षक से मनोरंजक चुटकुले बराबर प्रकाशित होते थे। इसी में उनकी "बन्दरसभा", "ठुमरी जुबानी शुतर-मुर्ग परी के", "चिड़ीमार का टोला" शीर्षक हास्य-कविताएँ भी प्रकाशित हुईं। इसमें हास्यमय "चित्रकाव्य" भी छपते थे, यथा—

"ABB GIO PK ढिग तजि CS
ठानिस YR मत करो E स सो T स।"[1]

"हिन्दी-प्रदीप" का सम्पादन प० बालकृष्ण भट्ट ने सन् १८७८ में प्रारम्भ किया। उस समय भारतेन्दु जी जीवित थे। इसके मुखपृष्ठ पर सूचना रहती थी—

> "विद्या, नाटक, समाचारावली, इतिहास, परिहास, साहित्य, दर्शन इत्यादि के विषय में।"

"हिन्दी प्रदीप" में तत्कालीन टैक्स इत्यादि पर स्यापे लिखे गये जो व्यंग्यात्मक हैं। भट्ट जी हिन्दी प्रदीप में हास्य-मय परिभाषा ही दिया करते थे, यथा—

"उत्तर—बेपरवाह वैद्य।

चुंगी—व्यापार का नफा चट कर जाने वाली डाइन।

टैक्स—जबरदस्त का ठेंगा सिर पर, दाल भात में मूसलचन्द, हो या न हो, सरकार का भरना भरो।

पुलिस—भले मानुसों के फजीहत की तदबीर।"[2]

'प्रश्नोत्तर' के रूप में भी भट्ट जी हास्य रस की सामग्री बराबर देते थे—

"स्वर्ग क्या है ?—विलायत।

महापाप का फल क्या ?—हिन्दुस्तान में जन्म लेना।

महापापी कौन ?—देशभाषा के अखबारों के एडीटर।"[3]

इसके अतिरिक्त हास्य रसमय विज्ञापन, उर्दू तथा संस्कृत मिश्रित पैरोडियाँ आदि बराबर इसमें निकला करती थीं। यहाँ तक कि वे समाचार भी हास्यमय भाषा में प्रकाशित देते थे—

---

१. श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—सितम्बर १८७४, खण्ड ६, संख्या १२.

२. हिन्दी प्रदीप—मार्च १८७९, पृष्ठ ७९

३. हिन्दी प्रदीप—सितम्बर १८७९, पृष्ठ ६.

"पुलिस इस्पेक्टर की कृपा से दिवाली यहाँ पन्दरहियों के पहिले से शुरू हो गई थी, पर अब तो खूब ही गली गली जुआ की धूम मची है। खैर, लक्ष्मी तो रही न गई जो दीपमालिका कर महालक्ष्मी पूजनोत्मक हम लोग करते तो पूजनोत्साह कर लक्ष्मी की बहिन दरिद्रा ही का आवाहन सही।"[1]

"ब्राह्मण" मासिक पत्र प० प्रतापनारायण मिश्र ने १५ मार्च सन् १८८३ को नामी प्रेस कानपुर से निकाला और जून सन् १८९१ तक बराबर इसे निकालते रहे यद्यपि इसके लिए उन्हे अनेक कष्ट सहने पडे। इसमें हास्य रस का प्रमुख स्थान था। प० प्रतापनारायण मिश्र अक्खड प्रकृति के थे। उनकी ग्राहकों से चन्दा न मिलने पर बराबर चलती रहती थी। वे उन पर मृदुल व्यग्य की वर्षा किया करते थे—

" हजरात नाविहद साहब अब तक तो हम समझे थे कि थोड़ी बात पर क्यों रंजिश हो पर आप अब तक न समझे तो खैर जनवरी में हम आपकी ईमानदारी, जमामारी और मान की ख्वारी करेंगे, क्षमा कीजिए।"[1]

उनका चन्दा माँगने का ढग भी हास्यपूर्ण था, देखिए—

हरगगा

"आठ मास बीते जजमान, अब तो करो दक्षिणा दान। हर०
आजु काल्हि जो रुपया देव, मानो कोटि यज्ञ करि लेव। हर०
मागत हमका लागै लाज, पै रुपया बिन चलै न काज। हर०
तुम अधीन ब्राह्मण के प्रान, ज्यादा कौन बकैं जजमान। हर०
जो कहुँ देहो बहुत खिझाय, यह कौनिउ भलमसी आय। हर०

× × ×

चार महीने हो चुके, ब्राह्मण की सुधि लेहु।
गगा माई जै करै, हमैं दक्षिणा देहु।

जो बिन माँगे दीजिए, दुहुँ दिशि होय आनन्द।
तुम निचित को हम करै, मांगन की सौगन्द।"

---

१ हिन्दी प्रदीप—नवम्बर १८७८, पृष्ठ १६

ब्राह्मण के प्रति अंक में "गपशप" शीर्षक स्तम्भ में मनोरंजक टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थी। "तृप्यताम" शीर्षक उनकी हास्य-रसात्मक कविता १५ दिसम्बर, १८८४ के अंक में प्रकाशित हुई थी। "ब्राह्मण" की फाइलों में सैकड़ों हास्य-व्यंग्य पूर्ण लेख एवं कविताएँ मिलेंगी जिनको एकत्रित कर प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

'भारतेन्दु' को पं० राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन से निकालते थे। यह मासिक छपता था। इसका प्रथम अंक २२ अप्रैल, सन् १८८३ को प्रकाशित हुआ। इसके पहले अंक की सूची इस प्रकार है—

मंगलाचरण	१
फौजदारी के कानून में संशोधन	२
राजा शिवप्रसाद कौन हैं ?	४
सर्वनाश उपन्यास	५
कविवर श्री दयानिधि की कविता	६
कृष्ण कुमारी नाटक	६
महामहा राक्षसी सभा	१२

इनके प्रत्येक अंक में हास्य रस की कोई कविता, प्रहसन, निबन्ध अथवा टिप्पणी अवश्य रहती थी। इसमें "समाचार" भी व्यंग्यात्मक छपते थे। वृंदावन में हैज़ा फैलने पर गोस्वामी जी ने सूचना निकाली है—

"इश्तिहार !!!

बहुत से आदमी दर्कार हैं

> जनाब नव्वाब हैजा खां बहादुर रिसालदार मलिकुल मौत इन दिनों शहर मथुरा में तशरीफ लाये हैं, और हर रोज चार बजे सुबह से चार बजे शाम तक अच्छे खूबसूरत जवानों को भरती करते हैं जिस किसी को इनके रिसाले में भरती होना हो इनके हैड क्वार्टर दशाश्वमेध घाट या ध्रुव घाट पर जाकर नाम दर्ज रजिस्टर करावे।"

(ध्रुव घाट पर मथुरा का श्मशान स्थित है)

इसी प्रकार इसमें "रेलवे स्तोत्र", "कलयुग राज्य का सर्कुलर", "इल-बर्ट बिल पर स्यापा" आदि अनेक हास्य रसात्मक कृतियां प्रकाशित हुई।

लखनऊ से **"रसिक-पच"** नामक हास्य रस का मासिक पत्र भी निकला। **"भारतमित्र"** कलकत्ते से सन् १८७८ में निकला इसमें बाबू बालमुकुन्द गुप्त के हास्य-रसपूर्ण लेख व कविताए प्रकाशित होती थी। "हिन्दी—बगवासी" में भी बाबू बालमुकुन्द गुप्त हास्य रस की कविता तथा लेख लिखते थे।

द्विवेदी युग में "मतवाला" हास्य रस का अत्यन्त प्रसिद्ध साप्ताहिक निकला। कलकत्ते से महादेव प्रसाद सेठ इसे निकालते थे। इसके सम्पादक मडल में थे बाबू नवजादिक लाल श्रीवास्तव, निराला एव आचार्य शिवपूजन सहाय। सन् १९२३ में यह निकला था। इसके मुख पृष्ठ पर यह दोहा प्रकाशित होता था—

"अमिय गरल शशि शीकर, राग विराग भरा प्याला,
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला'।"[1]

मूल्य इस प्रकार लिखा जाता था—

"एक प्याले का एक आना नगद, वर्षिक बोतल तीन रुपये पेशगी।"

सम्पादकीय के ऊपर यह दोहा छपता था—

"खींचो न कमानो न तलवार निकालो,
जब तोप मोकाबिल है तो अखबार निकालो।"

इसमें अधिकतर लेख गुप्त नामो से प्रकाशित होते थे। "चाबुक" शीर्षक स्तम्भ में साहित्यिक चोरो पर व्यग्य बाण बरसाए गये थे। "मतवाला की बहक" शीर्षक स्तम्भ में सामयिक विषयो पर हास्यमय टिप्पणियाँ दी जाती थी। "चलती चक्की" शीर्षक स्तम्भ में समाचारो के सार हास्यमय शैली में दिये जाते थे। इस शीर्षक को श्री चक्रधर शर्मा लिखते थे।

इस पत्र की अपने समय मे बडी धूम रही। इसके जवाब में कलकत्ते से "मौजी" नामक हास्य रस का पत्र निकला। इसकी तथा "मतवाला" की खूब नोक-झोक रहती थी। इसमें "भास्कतरानन्द" नामक लेखक प्रति अक में मनोरजक निबन्ध लिखा करते थे। "मतवाला" के "होलिकाँक" में तत्कालीन प्रसिद्ध लेखक एव कवि यथा प्रसाद, प्रेमचन्द आदि सब लिखते थे। उग्र जी का "दिल्ली का दलाल" तथा "चन्द हसीनो के खतूत" मतवाला में ही धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए।

---

१ भारतेन्दु—२२ अप्रैल सन् १८८३, मुख पृष्ठ का अन्तिम पृष्ठ।

कलकत्ते से "हिन्दू-पंच" निकलता था। इसके सम्पादक थे प० ईश्वरी प्रसाद शर्मा तथा प्रकाशक थे आर० एस० वर्मन। इसमें भी हास्य-रस की कविताएँ तथा लेख बराबर छपते थे।

आर्य समाजियों के मुखपत्र "आर्यमित्र" में भी हास्य-रस की सामग्री यथेष्ट मात्रा में निकलती थी। सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्त शर्मा "पंच-प्रपंच" शीर्षक प्रहसन इसमें लिखते थे जिनकी उस समय बड़ी धूम थी। "कण्ठी जनेऊ का व्याह" तथा "स्वर्ग में सबजेक्ट कमेटी" इसी में प्रकाशित हुए। प० हरिशंकर शर्मा भी "विनोद-विन्दु" स्तम्भ में "विनोदानन्द" के नाम से हास्य रस की चीजें इसमें बराबर लिखते रहे।

हरिद्वार से "सरपंच" नामक हास्य रस का एक पत्र थोड़े दिनों निकला। "प्रेमा" नामक मासिक पत्र लोकनाथ सिलाकारी के सम्पादकत्व में जबलपुर से निकलता था। उसका "हास्यरसांक" श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा के सम्पादकत्व में निकला जिसमें हास्य रस के अनेक लेख तथा कविताएँ निकलीं।

इलाहाबाद से "मदारी" नामक हास्य रस का साप्ताहिक कई वर्षों निकला। इसका मूल्य "फी तमाशा दो पैसे" था। इसके सम्पादक एस० पी० श्रीवास्तव थे। इसके मुखपृष्ठ पर यह दोहा छपता था—

"सोटा लेकर नये ठाठ से, सदा मदारी आवेगा,
जो भारत का अहित करेंगे, उनको पकड़ नचायेगा।"[1]

इसके स्थायी स्तम्भों के शीर्षक थे—"मदारी का सोटा", "बानर का नाच", "घटाघर के कंगूरे से", "डमरू की डिमडिम," आदि।

लखनऊ से अमृतलाल नागर तथा नरोत्तम नागर के सम्पादकत्व में "चकल्लस" हास्यरस का साप्ताहिक कई वर्षों निकला। अमृतलाल नागर "तस्लीम लखनवी" उपनाम से "नवाबी मसनद" शीर्षक कहानियाँ प्रति अंक में लिखते थे। इसके "फूल अंक" में प० गोविन्द वल्लभ पन्त, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन आदि ने हास्य रस के लेख लिखे। "गुस्ताखीनामा" तथा "कुकडूँ-कूँ" इसके स्थायी स्तम्भ थे।

"नोक-झोंक" मासिक जनवरी सन् १९२७ में आगरा से निकला था तथा पिछले १९ वर्षों से निरन्तर निकल रहा है। यह विशुद्ध हास्यरस का पत्र

१. मदारी—सितम्बर १९३२

है। केदारनाथ भट्ट इसका सम्पादन करते है। पिछले कई वर्षों से भगवत-स्वरूप चतुर्वेदी भी इसका सम्पादन कर रहे हैं। "हमारी-आपकी नोक-झोक" स्तम्भ में पाठको के प्रश्न तथा उनके मनोरजक उत्तर रहते हैं। सामयिक विषयो पर मनोरजक लेख एव व्यग्यपूर्ण कविताएँ निकलती हैं।

बनारस भी हास्यरस के पत्रो का केन्द्र रहा है। "तरग" पाक्षिक पिछले कई वर्षों से निरन्तर निकल रहा है। प्रारम्भ मे सम्पादक बेढव बनारसी थे, आजकल इसके सम्पादक "बेधडक बनारसी" हैं। कुज बिहारी पाण्डे, राधाकृष्ण, बेढब बनारसी, चोच, भैयाजी बनारसी, आदि इसमें बराबर अपनी हास्यमय कृतियाँ दिया करते हैं। इसमे व्यग्य चित्र भी बराबर निकलते हैं। प्रतिवर्ष होली के अवसर पर "होलिकाक" तथा १ अप्रैल को "फूल अक" प्रकाशित होते रहते हैं। "तरग के छीटे" शीर्षक में हास्य-रस की टिप्पणियाँ निकलती हैं। "अजगर", "करेला" तथा "भूत" नामक हास्य-रस के पत्र भी थोडे-थोडे दिन बनारस से निकल कर काल-कवलित हो गये। "खुदा की राह पर" काशी से मुशी खैराती खाँ के सम्पादकत्व में मासिक के रूप से कई वर्ष निकला। इसके मुख पृष्ठ पर एक व्यग्य चित्र निकलता था। "खैराती खाँ की झोली से" शीर्षक हास्य रस की टिप्पणियाँ इसमें बराबर निकलती थी। "बनारसी बैठक" शीर्षक स्तम्भ में हास्य-रस की कविताएँ निकलती थी। "बिखरे हुए फूल" स्तम्भ में उर्दू की हास्य रस की कविताएँ प्रकाशित होती थी। १५ जौलाई, सन् १९४० के अक के मुखपृष्ठ पर एक नवाब साहब का व्यग्य चित्र है और नीचे निम्नलिखित पद्य छपा है—

"सडा हुआ सामान सजा कर सन्मुख बैठे,
कसे कसाए देश-नाश का काठी कुमचा।
बदबू से है नाक फटी लोगों की जाती,
लेकिन "लीद नवाब" अकड कर बेचें खुमचा।"[1]

जनवरी सन् १९४१ से एक वर्ष तक "बेढब" मासिक हास्य रस का पत्र निकला जिसके सम्पादक श्री किशोर वर्मा "श्रीश" थे। इसमें हास्य-रस की कहानियाँ, कविता, आदि बराबर प्रकाशित होते थे। "बीबी और शौहर के खत" शीर्षक रत्ननाथ शरशार, लखनवी के पत्रो का उर्दू से अनुवाद क्रमश प्रकाशित होता था।

---

१ खुदा की राह पर—प्रेदी ४, भाग ९

"किसमिस" हास्य-रस मासिक कानपुर से सन् १९४८ से एक वर्ष तक निकला। इसके सम्पादक वागीश शास्त्री रहे। इसने हास्य-रस के प्रसिद्ध कवि रमई काका के सम्मान में "रमई काका विशेष अंक" फरवरी सन् १९५३ में निकाला। इसमें देहाती जी, भुशुण्डिजी, रमई काका, वंशीधर शुक्ल, हास्य-रस की कविताएँ बराबर लिखते रहे। इसमें अधिकतर अवधी भाषा की कृतियाँ ही निकलीं। प्रहसन भी इसमें पर्याप्त प्रकाशित हुए।

बँगला के प्रसिद्ध हास्य-रस पत्र "सचित्र भारत" का हिन्दी संस्करण "हिन्दी सचित्र भारत" में पाक्षिक रूप से बराबर निकलता है। श्रीनारायण झा इसके सम्पादक हैं। इसमें व्यंग्य चित्र भी बराबर प्रकाशित होते हैं। "चाचा उवाच" शीर्षक में सामयिक समाचारों पर हास्यमय टिप्पणियाँ छपती हैं। "ज्ञान से बाहर" शीर्षक स्तम्भ में कहानियाँ छपती हैं। "चकाचौंध" नाम से हास्य रस की कविताएँ प्रकाशित होती हैं। "लवड़ धौं-धौं" शीर्षक स्तम्भ में "सवाल वनाम" पाठकों के प्रश्नों के मनोरंजक उत्तर देते हैं।

पटना से पिछले दो वर्षों से मासिक पुस्तिका के रूप में "चाणक्य" प्रकाशित हो रहा है। इसके सूत्राधार "शिवनन्दन-सांस्कृत्यायन" एवं "सुरेन्द्र कौडिन्य" हैं। "कौमुदी महोत्सव" शीर्षक स्तम्भ में व्यंग्यात्मक कविता प्रकाशित होती है। "राक्षस-मान-मर्दन" में सामयिक प्रसंगों पर कटु आलोचना, तथा "शकटार-दर्प-दलन" शीर्षक स्तम्भ में साहित्यिक व्यंग्य, "आकाशवाणी" शीर्षक में रेडियो विषयक व्यंग्य, "शिक्षा-परीक्षा" में शिक्षा विषयक समस्याओं पर व्यंग्यात्मक आलोचना तथा "खूबी-खराबी" में पुस्तकों की हास्य-रसपूर्ण आलोचनाएँ निकलती हैं।

१५ जनवरी, सन् १९५६ को पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने "हिन्दी-पंच" नामक पाक्षिक हास्य-रस का अंक निकाला है। मुख पृष्ठ पर गणेश जी का मजदूर की टोपी लगाये व्यंग्य चित्र प्रकाशित हुआ है। "पंचायत" स्तम्भ में साहित्यिक एवं राजनैतिक समाचारों पर व्यंग्यपूर्ण टिप्पणियाँ हैं। "उल्टी-सीधी बातें" स्तम्भ में हास्य-रसपूर्ण कविताएँ हैं। "कसौटी" में साहित्यिक आलोचनाएँ हैं।

उपसंहार

अंग्रेज का "पंच" जो कि सैकड़ों वर्षों से अनवरत निकल रहा है, ऐसा पत्रों का हिन्दी में हास्य-रस का कोई पत्र नहीं निकला। "मतवाला" सम्पत्ता

बहुत समय तक निकला और उसकी खूब धूम रही। उसका स्तर भी ऊँचा था। बाद में मिर्जापुर से "मतवाला" उग्र जी के सम्पादन में पुन निकला, किन्तु वह भी काल-कवलित हो गया। "जोधपुर" से भी कुछ उत्साही साहित्य प्रेमियो ने "मतवाला" निकाला परन्तु वह भी बन्द हो गया। दिल्ली से "शकर वीकली" जिस प्रकार निकल रहा है उस प्रकार के पत्र निकलने की हिन्दी में आवश्यकता है।

: १२ :

अनुवादित गद्य साहित्य में हास्य

हिन्दी साहित्य में विदेशी लेखकों तथा प्रान्तीय भाषाओं की हास्य रस की कृतियों के अनुवाद मिलते हैं। फ्रांसीसी नाटककार मोलियर के अनुवाद तो कई लेखकों ने किये हैं। इसके अतिरिक्त साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों के होलिकांकों एवं हास्य-रस विशेषांकों में तथा कभी-कभी साधारण अंकों में भी अन्य भाषाओं के प्रसिद्ध हास्य-रस के लेखकों की कृतियों के अनुवाद भी प्रकाशित होते रहते हैं।

प्रसिद्ध विदेशी व्यंग्यकार "स्विफ्ट" के "गुलीवर ट्रेविल्स" का अनुवाद पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने "विचित्र विचरण" नाम से किया। इन्होंने ही प्रसिद्ध विदेशी हास्य-रस लेखक "मार्क ट्वेन" की रचना "डान क्युक्जोट" का अनुवाद "विचित्र वीर" नाम से किया।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने मोलियर के नाटक Le Mariage Force का अनुवाद "नाक में दम" नाम से किया था Law Jalousie Dn. Barhonille का अनुवाद "जवानी बनाम बुढ़ापा" नाम से तथा La Misan Thrope का अनुवाद "मार-मार कर हकीम" नाम से किया। श्रीवास्तव जी ने अनुवाद में मूल नाटकों के रीति-रिवाजों तथा नामों में परिवर्तन कर भारतीय वातावरण में ढालने का सफल प्रयत्न किया है। जैसे "नाक में दम" के पात्र हैं—मसीबत मल, अटपट राम, पं० नकोचानन्द, घर बिगाड़, मैडम कुल-च्छनी। "जवानी बनाम बुढ़ापा" में मुन्शी बरबाद मुन्शीवर, मिस्टर धरपकड़ तथा "मार-मार कर हकीम" में आनन्दराम, हरैया, नूसट बेग, आदि। Le Mariage Force का अनुवाद "रायबहादुर" नामसे पं० लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय ने किया है।

बंगला के विश्वकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर के "नाट्य कौतुक" का अनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेय ने "हास्य-कौतुक" के नाम से किया है। इसमें

छात्र की परीक्षा पेट और पीठ, अभ्यर्थना, आदि १५ हास्य-रस की कहानियाँ है। राजशेखर वसु जो बगला में "परशुराम" नाम से हास्य-रस की कहानियाँ लिखते है उनके दो कहानी-सग्रह "लबड धो धो" तथा "भेडिया धसान" नाम से हो चुके हैं। रवीन्द्र नाथ मैत्र की हास्य-रस की कहानियों के एक सग्रह का अनुवाद "चित्रलोचन कविराज" के नाम से हुआ है उसमें "प्रेम व्याधि", "आलस्टार ट्रेजेडी", "ज्वार-भाटा", "समाज सुधारक" नामक कहानियाँ हैं।

"धूर्ताख्यान" एक श्वेताम्बर भिक्षुक कृत सस्कृत ग्रन्थ का अनुवाद है इसमें "एलाषाड", "शस" तथा "खडवरणा" नामक पात्रो का मनोरजक वार्तालाप है।

मराठी के प्रसिद्ध लेखक स्व श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर के प्रसिद्ध ग्रन्थ "सुभाषित आणि विनोद" का अनुवाद हिन्दी रूपान्तर श्री रामचन्द्र वर्मा ने "हास्य-रस" के नाम से किया है। इसमें हास्य रस का शास्त्रीय विवेचन एव अनुशीलन है।

उर्दू के प्रसिद्ध लेखक "रत्ननाथ सरशार" का कथा-ग्रन्थ "फिसानये आज़ाद" का अनुवाद स्वर्गीय प्रेमचन्द जी ने "आज़ाद कथा" नाम से किया। उर्दू के प्रसिद्ध कहानी लेखक मिर्ज़ा अज़ीम वेग चगताई की कहानियो का अनुवादित सग्रह "चगताई की कहानियाँ" तथा उनका उपन्यास "कोलतार" का अनुवाद हिन्दी में "कोलतार" के नाम से हुआ है। शौकत थानवी के उपन्यास "राजा साहव" का अनुवाद भी "राजा साहव" के नाम से हुआ है।

प्रसिद्ध गुजराती हास्य-लेखक ज्योतीन्द्र दुवे की कहानियो के अनुवाद "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में प्रकाशित हुए हैं।

हिन्दी में विदेशी तथा प्रान्तीय भाषाओ की हास्य रस की कृतियो के अनुवादो की वहुत आवश्यकता है।

: १३ :

रेडियो-रूपक साहित्य

रेडियो-रूपक हिन्दी साहित्य में नवीन वस्तु है। साधारण नाटक एवं रेडियो रूपक में भेद है। दोनों के तन्त्र (टेकनीक) एवं प्रयोग भिन्न-भिन्न हैं। नाटक जहां दृश्य-काव्य है वहां रेडियो रूपक श्रव्य-काव्य है। रेडियो नाटक में ध्वनि ही प्रमुख साधन है। रंगमंच पर नृत्य एवं आंगिक अभिनय द्वारा रस की सृष्टि की जाती है जबकि रेडियो रूपक में इन साधनों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। रेडियो नाटक देश, काल एवं स्थान के बन्धनों से मुक्त होता है। रेडियो-रूपकों में स्वगत-भाषण, स्वप्न-सम्भाषण स्वाभाविक होते हैं किन्तु रंगमंच पर ये अस्वाभाविक लगते हैं। हृदय-गत भाव स्वगत कथन द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से व्यंजित किये जा सकते हैं।

दिल्ली आकाशवाणी केन्द्र से भगवतीचरण वर्मा के हास्य-रस प्रधान नाटक "सबसे बड़ा आदमी" एवं "दो कलाकार" प्रसारित हो चुके हैं। विष्णु प्रभाकर का "साहेब मैन बनो" तथा उदयशंकर भट्ट का "दस हजार" भी दिल्ली से प्रसारित होने वाले प्रसिद्ध हास्य-रस प्रधान नाटक हैं। [illegible] "चिरंजीत" के दो व्यंग्यात्मक नाटक दिल्ली आकाशवाणी से प्रसारित हुए हैं जिनमें "दफ्तर जाते समय" एवं "अखबारी विज्ञापन" सुन्दर हैं। दफ्तर जाते समय [illegible] बाबू साहब रूमाल न मिलने से घर में तूफान खड़ा कर देते हैं। अन्त में जब रूमाल मिल जाता है तो पता लगता है कि आज रविवार की छुट्टी है। "अखबारी विज्ञापन" में एक साहब नौकरी पाने के लिए विज्ञापन देते हैं, पोस्ट बाक्स नम्बर गलत हो जाने से विवाह योग्य लड़कियों के अभिभावकों के पत्र सब [illegible] के उनके पास दफ्तर के पते से भेज दिये जाते हैं और उनकी स्त्री [illegible] कि उनके पति दूसरा विवाह करने जा रहे हैं, घर में क्लेश मचाती है। [illegible] का निवारण करता

है। इस नाटक का कथोपकथन सजीव एव प्रभावोत्पादक है। मदनमोहन की स्त्री दुर्गा उससे कहती है—

"मदनमोहन (घबराया हुआ सा)—दुर्गा, मैं सच कहता हूँ मुझे इसका नहीं। मैंने विज्ञापन ।

दुर्गा (गुस्से से तिलमिला कर)—यों झूठ बोलने से अब कोई फायदा नहीं। आपका सारा षड्यत्र प्रमाण-सहित मेरे कब्जे में है। (एक चिट्ठी दिखाकर) यह देखिए, इलाहाबाद से आये इस पत्र के साथ इश्तिहार की कतरन भी नत्थी है। इस पर बक्स न० ३११ ही दिया हुआ है। इश्तिहार में आप लिखते हैं—"जरूरत है ४०० रु० मासिक वेतन पाने वाले सभ्रान्त कुल के एक सुयोग्य उन्नतिशील ३० वर्षीय वर के लिए एक सुन्दर पढ़ी-लिखी कुमारी कन्या की। जात-पात का कोई बन्धन नहीं। पत्र व्यवहार के लिए पता, बक्स न० ३११ मार्फत नेशनल पत्रिका। (सव्यग्य) ऐसे वर के चरणों पर कौन कुँआरी कन्या अपना तन मन धन अर्पण नहीं कर देगी ?"

—(अखबारी विज्ञापन)

रेडियो-रूपक में वार्तालाप का सजीव होना आवश्यक है क्योंकि वही प्रभाव डालने का एक प्रमुख साधन है।

लखनऊ आकाशवाणी केन्द्र से **"रमई काका"** के अवधी के प्रहसन लोकप्रिय हुए हैं। उनका "रतौंधी" नाटक तो कई वार विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रो से प्रसारित किया जा चुका है। नाटक के नायक "विरजू" को रतौधी आती है। वह अपने ससुराल एक विवाह में जाता है और साथ में अपने गाँव के नाई को ले जाता है। नाई की हाजिरजवावी विरजू की रतौंधी को ससुराल में छिपाने में वरावर सफल होती है। कई वार पोल खुलते-खुलते रह जाती है। ससुराल में खाने को विठाते हैं, विरजू खाने की तरफ पीठ तथा दीवाल की तरफ मुंह करके वैठ जाता है, नाई स्थिति को तुरन्त सँभाल देता है।

"अँगनू—अरे द्याखौ मालिक देवाल तन मुंह कीन्हे वइठ है।

नाऊ काका—वाह मालिक ! ससुरारिऊ माँ ठेहलाव कै आदति नहीं छुटि। भोजन पाछे धरा है औ मुंह देवाल तन कीन्हें वइठ हो।

विरजू—नाऊ काका हमका दुभाँति नहीं नीकी लागति। तुम हमारे आहिउ तौनु हम कहा जब तक भीतर न आय जइहौ तब तक भोजन खायकी को कहै हम आँखिन ते घाखव तक ना।"

इसी प्रकार की अनेक घटनाएँ घटित होती हैं किन्तु नाई उन्हे सँभालता जाता है और विरजू विवाह सम्पन्न कराकर वापिस लौटते हैं। इनके अन्य नाटक जो प्रसारित हुए हैं वे हैं—दुसाला, वहिरे बाबा, तीन आलसी, नटखट पूसी, अफीमी चाचा तथा 'का हम कोहू ते कम हन।

श्री रामउजागर दुबे के भी कई प्रहसन लखनऊ आकाशवाणी केन्द्र से प्रसारित हो चुके हैं। उनमे "सुर्जनसिंह-इन्टर क्लास में" अधिक लोकप्रिय हुआ है। इस नाटक में एक सफेदपोश बाबू की बेईमानी और असभ्यता की पोल खोली गई है जो स्वयं बिना टिकट सफर करते हुए भी ड्योढे दरजे का टिकट लेकर यात्रा करने वाले एक सीधे सादे ग्रामीण सज्जन को सताता है। साथ ही साथ उन ग्रामीण सज्जन की उदारता का भी चित्रण किया गया है जो उन सफेदपोश बाबू की लाज बचाते हैं। इसका रोचक वार्तालाप देखिए—

"(गाड़ी का सीटी देना तथा धीरे धीरे चलना। प्लेटफार्म की भीड कुछ कम। मुसाफिर अपने मित्रो से विदाई के संकेत कर रहे हैं)

सुर्जन सिंह—मुझे क्या देखने सुनने आवेंगे। दिखलाना है तो सुर्जनसिंह के लड़के को दिखलाइये। सुर्जनसिंह का तो अब चालीसा लगा है।

बाबूजी—तुम अपनी बेजा हरकतो से बाज नहीं आओगे? अभी भी टर्रा रहे हो।

सुर्जन सिंह—इसमें टर्र की कौन सी बात है। मैं कोई जनाना थोड़े ही हूँ कि अपनी मदद के लिए अपने आदमी को बुलाऊँ। मुझे तो अपने बलबूते पर भरोसा है। अगर टर्र-टर्र कर भी रहा हूँ तो इसमें किसी का क्या इजारा।"

इसमें रेल के सफर में ही सब घटनाएँ घटित होती हैं जो कि रेडियो द्वारा ध्वनि की सहायता से सुनाई जा सकती हैं। रंगमंच पर यह इतनी सफलतापूर्वक नहीं खेला जा सकता।

इलाहावाद आकाशवाणी केन्द्र से केशवचन्द्र वर्मा के दो रूपक जो प्रसारित हो चुके है, देखने मे आये—"शहनाइयाँ" तथा "जैसे कोल्हू मे सरसो"। दोनो ही प्रहसन सामाजिक है। "जैसे कोल्हू मे सरसो" मे चिरजीव, रेखा एव कैप्टेन प्रमुख पात्र है। रेखा को चिरचीव तथा कैप्टेन दोनो प्यार करते हैं। हास्य का सृजन कैप्टेन साहब के कुत्ते के माध्यम से किया गया हे जिससे चिरजीव वहुत भयभीत होते हैं। इसमे आजकल के उन नवयुवको पर व्यग्य किया गया है जो सस्ते प्रेम के चक्कर मे पड कर अपना जीवन नष्ट करते हैं। कैप्टेन के कुत्ते को देख कर प्रेमी चिरजीव दीवाल के ऊपर चढ जाते हैं—

"चि०—(घबडाते हुए) देखिए, वह कुत्ता अलग कर दीजिए, मिस्टर। (कुत्ता भौकता है) ये अरे बाबा। अजी साहब, आप इसे तो अलग कर दीजिए आप जो कहियेगा फिर समझ कर बताऊँगा (कुत्ता फिर भौकने लगता है) अजी साहब, भगवान् के लिए ।

कै०—देखो जी चिरौजी लाल मैं जो कह रहा हूँ उस पर गौर करो।

चि०—(कुछ बिगडते हुए से) देखिए जनाब, मेरा नाम चिरजीव है चिरौजी लाल नही है। You can correct yourself अपनी जबान दुरुस्त कर दीजिए What is this ? चिरौजी लाल?

कै०—Shut up This is non-sense (कुत्ता भौकने लगता है) दोनो एक ही वात हे।
(सहसा कुर्सी गिरने की आवाज होती है और चिरजीव मेज़ पर चढकर खडा हो जाता है और चिल्लाता भी है, "अरे वाप अरे !!)"

श्री विजयदेव नारायण साही का "एक निराश आदमी" शीर्षक रेडियो रूपक इलाहावाद आकाशवाणी केन्द्र मे प्रसारित हो चुका हे। इसमे राजशेखर अग्रवाल, मैनेजर गुप्ता एव शास्त्री तथा निराश आदमी आदि पात्र है। समाज में फैली हुई "सिफारिश" पर इसमें व्यग्य किया गया हे। एक व्यक्ति जिस की सिफारिश नही हे लेकिन एम० ए० पास हे वह नौकरी पाने से रह जाता है किन्तु एक कम पढा-लिखा व्यक्ति उसी स्थान को सिफारिश के वलवूते पर प्राप्त कर लेता हे। सिफारिश-पसन्द व्यक्ति "सिफारिश" का महत्व वतलाता हुआ कहता है—

"निराश आदमी—क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ। यह लीजिए मैं अपना एम० ए० का सार्टीफिकेट भी लेता आया हूँ क्योंकि आज इसके भी राख होने की बारी आ गई है।
(सार्टीफिकेट निकालकर फेंक देता है।)

गुप्ता—तो यह आधार है कि आप की योग्यता का जिस पर आप नौकरी चाहते हैं। अच्छा कारण है। मेरी समझ में नहीं आता कि किसी यूनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर का हस्ताक्षर किया हुआ यह सिफारिशी कागज किस तरह दूसरी सिफारिशों से भिन्न है। मिस्टर निराश आदमी, क्या आप कहना चाहते हैं कि अगर कोई वाइस-चांसलर या प्रोफेसर साहब अपने हस्ताक्षर से मुझे किसी की योग्यता के बारे में पत्र भेजें और जबानी सिफारिश करें इन दोनों में कोई मौलिक अन्तर हो जायगा।"

—(एक निराश आदमी)

श्री भारतभूषण अग्रवाल का "इन्ट्रोडक्शन-नाइट" शीर्षक रूपक आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र से प्रसारित किया जा चुका है। यह विशुद्ध हास्यात्मक है। कालिज-जीवन की रंगरेलियों को लेकर इसमें हास्य का सृजन किया गया है। इसमें गीत भी अच्छे हैं। नाटक इस "कोरस" से प्रारम्भ होता है—

"हम कालिज वाले हैं,
हम कालिज वाले हैं।
कदम कदम पर बिछे,
हमारे गड़बड़ झाले हैं।
हम कालिज वाले हैं,
हम बेकारी के डर से घर से पढ़ने जाते हैं,
फिर पढ़ने के डर से हरदम घूमने जाते हैं।
दिल में डाले हाथ हमारे मुंह पर ताले हैं,
हम कालिज वाले हैं,
हम कालिज वाले हैं।"

मनोभाव की सजीवता इस रूपक की विशेषता है—

"[illegible]—जिस व्यक्ति को कैसे जूते पसन्द हैं, वह आप कैसे पहचानेंगे?

उत्तर—उसके स्वभाव और व्यवहार से।

प्रश्न—आप कौन-सा जूता पहनते हैं ?

उत्तर—जब जो मिल जाय।

प्रश्न—आपकी रिसर्च कब समाप्त होगी ?

उत्तर—नौकरी मिलते ही।

प्रश्न—अगर आपको यह नौकरी मिल जाय तो सबसे पहिले आप क्या करेंगे ?

उत्तर—शादी करूँगा।"

—(इण्ट्रोडक्शन-नाइट)

रेडियो-रूपक साहित्य में हास्य-रस का विशेष स्थान है। भारतेन्दु बाबू, जी० पी० श्रीवास्तव के तथा उपेन्द्रनाथ अश्क के कई प्रहसनों का रेडियो-रूपान्तर हो चुका है तथा उनका प्रसारण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है।

❀

: १४ :

अँग्रेज़ी साहित्य में हास्य रस

हास्य रस की दृष्टि से अँग्रेजी साहित्य समृद्ध है। चौदहवी शताब्दी में इगलैण्ड में फ्रास निवासी नारमन लोगों का आधिपत्य था। उस समय में लिखी गई "उल्लू और बुलबुल" शीर्षक हास्य-रस पूर्ण कविता आज तक प्रसिद्ध है। इसमें हास्य की वह छटा है जो नन्ददास के "भ्रमरगीत" की याद दिला देती है। बुलबुल कहती है, "चल, चल तू क्या बहस करेगा, तेरा तो सिर ही तेरे शरीर से बड़ा है।" इसके बाद राज-दरबार में फ्रासीसी भाषा का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया। उस समय "चासर" हास्य-रस की कविता के जनक रूप से आये। जिस प्रकार "अमीर-खुसरो" की मुकरियो में जन साधारण की समस्याओ को लेकर हास्य का सृजन किया गया है उसी प्रकार इनके काव्य में साधारण मनुष्यो के विराग, हर्ष, और ग्लानि मिलती है।

शेक्सपीयर के नाटको में हास्य का सुन्दर सृजन हुआ है। उनकी कला में पद-पद पर मानवतावादी दृष्टिकोण और काव्योचित कल्पना का एक अद्भुत सम्मिश्रण मिलता है। उनके हास्य में कटुता नही है। उनके पुरुष-पात्र बहुत बातूनी मिलते हैं तथा स्त्रियाँ मितभाषी हैं। शेक्सपीयर का सबसे प्रसिद्ध नाटक है "मिडसमर नाइट्स ड्रीम"। उसमें "बाटम" महोदय नाटक करते हैं और इस कदर उत्साह दिखाते हैं कि प्रत्येक पात्र का अभिनय स्वय ही कर डालना चाहते हैं। आखिरकार "बाटम' महोदय का सिर गधे के सिर में परिवर्तित हो जाता है और अपने "[illegible]" में तन्मय होकर वह परियों की रानी "टाइटेनिया' की खिदमत में प्रेम निवेदन करते हैं। हिन्दी के हास्य प्रधान नाटको में शेक्सपीयर जैसा मानवतावादी हास्य का अभाव है। दूसरी बात जो कि शेक्सपीयर में अद्वितीय है, वह है उनके मसखरो का मूर्ख न होना। शेक्सपीयर के मसखरों की बाह्य मूर्खता के अन्तराल में अनन्त दार्शनिको की गम्भीरता [illegible] है। प्रसिद्ध नाटक "टाइमन आफ एथेन्स" में, जो वास्तव

मे एक गम्भीर रचना है, यह पूछे जाने पर कि कौन-सा समय है, उत्तर मिलता है "ईमानदार रहने का समय।"

जानसन का व्यग्य कटु होता था। अपने कोप मे जानसन ने वहुत-सी मनोरंजक परिभाषाओं का सकलन किया है। मछली पकडने के काँटे की परिभाषा को इस प्रकार कर देते हैं—"एक ऐसी डण्डी जिसके एक सिरे पर मछली और दूसरे सिरे पर मुर्ख हो।" भारतेन्दु युग मे प्रकाशित "हिन्दी-प्रदीप" एव "ब्राह्मण" मे इस प्रकार की हास्य-मय परिभाषाएँ पर्याप्त मात्रा मे मिलती हैं। जानसन हाजिर-जवाव भी थे। एक वार जानसन अपने एक मित्र से बाते कर रहे थे कि हज्जाम आ पहुँचा। जानसन बोले—"महाशय, कृपया मुझे छुट्टी दीजिए क्योकि मुझे कर्तन-कलाचार्य से भेट करनी है।" प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी भी अत्यन्त विनोदी प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके विनोदपूर्ण चुटुकुलो का सग्रह किया जाय तो वे हिन्दी के जानसन प्रमाणित होगे।

गोल्डस्मिथ सुधार-वृत्ति के उपन्यासकार थे। उनकी "वह जीतने को ही हारती है" हास्य साहित्य की अमर कलाकृति है। उसका नायक एक वग्घी मे वैठाकर अपनी माँ और वहिन को गाँव ले जाने का वायदा करता है। अघेरी रात मे वग्घी मकान के आस के वगीचे मे ही घूमती रहती है और उन्हे पता भी नही चलता। उपन्यास-साहित्य मे हास्य हिन्दी मे वहुत कम मिलता है और गोल्डस्मिथ-सी प्रतिभा अभी हिन्दी मे नही हुई।

एडीसन तथा **स्टील** ने तत्कालीन इगलैण्ड मे "छैला" वनकर भटकने वाले युवको पर करारे व्यग्य किये हैं। एक जगह तो एक छैला की खोपडी की शल्य-क्रिया की जाने पर उसमे से औरतो के हेअरपिन, वालो के स्मृति-रूप मे दिए गुच्छे और न जाने क्या-क्या उल-जलूल निकलता है। वालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा नाथूराम शकर शर्मा ने भी अपनी गद्यात्मक तथा पद्यात्मक कृतियो द्वारा तत्कालीन समाज के फैशन-परस्त युवक-युवतियो पर व्यग्य वाण छोडे थे।

ड्रायडेन के काव्य मे राजनीतिक व्यग्य का प्राधान्य था। वह राजा का समर्थक था तथा राजा के विरोधियो पर व्यग्य वाण छोडता था। इसके विपरीत वालमुकुन्द गुप्त मे भी ड्रायडेन की भाति राजनीतिक व्यग्य प्राधान्य था किन्तु उनके आलम्बन तत्कालीन राज्य के अधिकारी एव गवर्नर आदि थे।

ड्रायडेन के शिष्य **अलैक्जैन्डर पोप** ने "रेप आफ दी लोक" शीर्षक काव्य पुस्तक में महाकाव्यो का तथा समाज में फैली हुई फैशन की पोल खोली

है। एक युवती के बालों की एक लट कट जाने पर महाभारत का-सा संग्राम करवाया गया है। हिन्दी-साहित्य में भी "हल्दीघाटी" की पैराडी "चोंच" ने "चूनाघाटी" नाम से की है किन्तु उसमें पोप जैसा निर्वाह नहीं हो पाया है।

थैकरे तथा डिकेन्स भी हास्य-रस लिखने में प्रसिद्ध थे। "पिकविक-पेपर्स" डिकेन्स द्वारा हास्य-रस की अमर कृति है। "मिस्टर पिकविक" ऐसी कलाबाजियाँ दिखाते हैं कि उनकी तोंद पर तरस आता है। प्रेमचन्द ने "मोटे-राम शास्त्री" को नायक बनाकर हिन्दी में "मिस्टर पिकविक" के सृजन करने का सफल प्रयास किया था।

"डेविड कापरफील्ड" के मिस्टर मिकावर दीवार लाँघ कर घर के अन्दर पहुँचते हैं और घर वालों से मिलकर दीवार-दीवार ही चढ़कर बाहर निकल जाते हैं जबकि कर्जदार घर के बाहर ही खड़े रह जाते हैं। "दि ओल्ड क्यूरिओसिटी शाप" के "डिक स्विवलर" जिस गली से उधार लेता है उस गली से आना-जाना छोड़ देता है।

महारानी विक्टोरिया-युग में "जेरोम के जेरोम" हास्य-रस के प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक "थ्री मैन इन ए बोट" में स्वास्थ्य पर आवश्यकता से अधिक चिन्ता करने वालों पर व्यंग्य किया है। तीन व्यक्ति स्वास्थ्य-लाभ के हेतु नौका भ्रमण का एक लम्बा कार्यक्रम बनाते हैं। एक स्थान पर नाव कीचड़ में फँस जाती है। एक साहब चप्पू को कीचड़ में गड़ा कर जोर लगाते हैं। नाव निकल जाती है पर वह साहब चप्पू पर टँगे रह जाते हैं और वह चप्पू वहीं गड़ा रह जाता है।

आधुनिक युग में ऑस्कर वाइल्ड तथा बर्नार्ड शा सर्वप्रथम आते हैं। दोनों चमत्कारवादी थे। दोनों एक नज़र से ज़िन्दगी का मखौल उड़ाना जानते थे। शा ने "[illegible]" में दोनों की [illegible] का अच्छा विश्लेषण किया है। शा में 'ह्यूमर' प्रधान है। उनका व्यंग्य भी गहरा है। उपन्यासकार "[illegible]" ने सामाजिक समस्याओं पर शा की पद्धति पर सुन्दर हास्य व्यंग्य-प्रधान नाटक लिखे हैं। चेस्टरटन ने सामाजिक हास्य सृष्टि किया। "चेस्टरटन" की भाँति हिन्दी में प० [illegible] ने सामाजिक हास्य सृष्टि किया है। "पंच" भी अंग्रेजी साहित्य का प्रमुख [illegible] था। '[illegible]' इसकी [illegible] थी। [illegible] में 'सामाजिक [illegible]' ने [illegible] में [illegible] [illegible] तथा [illegible] के [illegible] में लिखा है।

निबन्ध साहित्य में **ए० जी० गार्डिनर** तथा **चार्ल्स लेम्ब** छोटे-छोटे विषयो पर सुन्दर हास्य-रस पूर्ण निवन्ध लिखने में प्रसिद्ध है। गार्डिनर ने अपने एक लेख में प्रश्न उठाया है कि जब पुरुषो के वस्त्रो में इतनी जेबें होती हैं तब स्त्रियो के वस्त्रो से जेब का फैशन ही क्यो उठ जाना चाहिए। जेबो के फैशन उठ जाने के कारण ही उन्हे इतने बडे बटुए की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार भारतेन्दु काल में वालकृष्ण भट्ट ने दांत, भौं, आँख, इत्यादि छोटे-छोटे शीर्षको से सुन्दर हास्य-रस के लेख लिखे थे तथा आधुनिक युग में बेढब बनारसी तथा प्रभाकर माचवे ने स्नेह-हास्य युक्त निवन्ध लिखे हैं।

"पी० जी० वुडहाउस" हास्य-रस के प्रसिद्ध उपन्यासकार है। उनके उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए हैं। उन्ही की शैली में हाल ही में श्री द्वारका प्रसाद लिखित उपन्यास "गुनाह बेलज्जत" प्रकाशित हुआ है। अमेरिकन लेखक **"स्टीफेन ली काक"** भी हास्य के सुन्दर निबन्ध लेखको में गिने जाते हैं। उनके निवन्ध भी आधुनिक समाज में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। रूस का **"गोगोल"** अपने व्यग्य के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है।

वास्तव में देखा जाय तो हास्य-रस की दृष्टि से अँग्रेजी साहित्य हिन्दी साहित्य से कही अधिक समृद्ध है। जैसाकि पूर्व अध्यायो में बताया जा चुका है कि हास्य स्वाधीन तथा धनाधान्य से पूर्ण देशो में न पनपेगा तो कहाँ पनपेगा, किन्तु हिन्दी साहित्य में भी पिछले वर्षो में हास्य-रस की जो कृतियाँ निकली है उनमें यह आशा होती है कि शीघ्र ही हमारे यहा का हास्य-रस का साहित्य भी दिन प्रति दिन अधिक समृद्ध होता जा रहा है।

: १५ :

कार्टून कला

"कार्टून" शब्द का शाब्दिक अर्थ चित्र का कच्चा खाका या "रफ डिज़ाइन" बनाना है। सन् १८४३ में इंगलैंड की पार्लियामेंट के भवनों की भित्तियों पर अंकित करने के लिए चित्रों के कच्चे खाकों की एक प्रदर्शिनी की गई थी। इंगलैंड के प्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रकार (कार्टूनिस्ट) श्री "लीच" को यह काम सौंपा गया था। ये चित्र इंगलैंड के सुप्रसिद्ध हास्य-पत्र "पंच" में प्रकाशित हुए थे। उसी समय से कार्टून शब्द का महत्व लोगों ने समझा तथा इसका व्यापक प्रयोग होने लगा। कार्टून-कला हमारे जीवन की मूक आलोचना है। व्यंग्य-चित्रकार अपनी तूलिका के सहारे समाज और मानव के पट से कड़वी आलोचना को हँसी-हँसी में उतार देते हैं। लोकतन्त्रीय देश में ये जनता की आवाज बुलन्द कर मोटे विरोधी दल का काम करते हैं। इन व्यंग्य चित्रकारों ने राजनीति में एक रस की सृष्टि की है। हमारे बहुरंगी जीवन पर प्रकाश डालने वाली इनकी व्यंग्य-रेखाएँ यथार्थ और आदर्श का अनोखा सम्मिश्रण हैं। भारतीय जनता की रुचि इस ओर बढ़ती जा रही है। आज उन समाचार पत्रों को अधिक पसन्द किया जाता है जिनमें व्यंग्य-चित्र प्रकाशित होते हैं।

प्रारम्भिक काल में व्यंग्य चित्रों में हास्य और व्यंग्य का समन्वय बहुत सफल ढंग से नहीं होता था। एक चित्र के नीचे कुछ हास्योत्पादक बातें लिख दी जाती थीं। इस तरह कि साधारण कहानी के चित्रों में और इन कार्टूनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं होता था। राजनीतिक कार्टूनों [illegible] थी। व्यंग्य चित्रकार [illegible] का उपयोग करते हैं। [illegible] व्यंग्य चित्रकार भी [illegible] का प्रयोग कर [illegible] [illegible] करने के लिए [illegible] 'जान बुल' और [illegible]। [illegible]।

राजनैतिक व्यक्तियो के व्यक्तिगत जीवन और आदतो से परिचित होना चाहिए। राजनैतिक व्यग्य चित्रकार सदा व्यापक प्रभाव डालने वाले विपय ही चुनता है। कलाकार एक समानान्तर परिस्थिति की खोज में साहित्य, इतिहास और पौराणिक कथाओ का सहारा लेता है। राजनैतिक व्यग्य चित्र-कार को चित्र वनाने के लिए वहुत कम समय मिलता है और यही कारण है कि उसे वडी तेज़ी से काम करना पडता है।

सामाजिक कार्टून

इनमें समाज की परिहासपूर्ण आलोचना रहती है। इस क्षेत्र में उदीयमान व्यग्य चित्रकार सैमुएल और प्रकाश का कार्य विशेष सराहनीय है। सैमुएल ने "मुसीवत है", "दिल्ली के स्वप्न", "यह दिल्ली है" शीर्षक से जो हमारे जीवन पर व्यग्य किये है वे हंसाये विना नही रहते। सुनील चट्टोपाध्याय ने अति आधुनिकता के "तिकोनिया फैशन" पर अच्छे व्यग्य चित्र वनाए है। अनवर ने पाकिस्तान में फैले भ्रष्टाचार पर वडी गहरी चोटें की है। एक वालक यात्री को कहते दिखाया कि मैं उस कुली को लूंगा जिसके पास मिनिस्टर की सिफारिश का पत्र होगा।

व्यग्य पट्टियाँ

इनके वनाने का प्रचार भी खूव हो गया है। "खूरो की वडी-वडी मूंछें", "चन्दू की पगडी" और "पोपट का वडा पेट" नित्य पाठको को हँसाते हैं। ये अधिकतर कथा-प्रधान होती हैं। वे वालको के लिए वहुत आकर्षक होती है।

हिन्दी की साहित्यिक मासिक पत्रिकाओ में भी समय समय पर व्यग्य चित्र प्रकाशित होते रहते है। "सरस्वती" में द्विवेदी जी ने कई वर्षो तक सामयिक विपयो पर व्यग्यचित्र प्रकाशित किये। माधुरी, सुधा, मतवाला, नोक-झोक आदि में भी व्यग्य चित्र छपे है। प्रसिद्ध व्यग्य चित्रकार "शिक्षार्थी" ने हास्य-प्रधान "मुसकान" मासिक में अपने व्यग्य चित्र प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया है। पुराने मासिक एव साप्ताहिक पत्रो के देखने से प्रतीत होता है कि साहित्यिक क्षेत्र में व्यग्य चित्रकारो के शिकार अनाडी आलोचक, छायावादी कवि, प्रेमी तथा फैशनेविल नवयुवक नवयुवतियाँ रहे है। "नवभारत टाइम्स" दैनिक एक छोटा-सा व्यग्य चित्र प्रतिदिन मुख पृष्ठ पर प्रकाशित करता है और उसका विपय सामाजिक अथवा राजनैतिक रहता है।

हमारे देश मे कटाक्ष-चित्रण-कला के विकास की बडी सम्भावनाएँ है। चित्रमय विनोदपूर्ण सामयिक पत्र तो देशी भाषाओं में नही के बराबर है। कार्टून कला से लोकमानस को विनोदप्रिय और प्रबुद्ध बनाया जा सकता है। सरकारी कलाशालाओं में जहा चित्र विद्या के अन्य अगो की शिक्षा दी जाती है वहां कार्टून और कटाक्ष-चित्रण का व्याकरण भी सिखाना चाहिए, क्योंकि स्वाधीन भारत में देशी भाषा के पत्रो का विकास हो जाने पर कार्टूनकारो की बडी आवश्यकता है।

: १६ :

उपसंहार

मानव जीवन में हास्य का विशिष्ट स्थान है। जातीय सजीवता के साथ साथ यह सुधार का माध्यम भी है। मनुष्य और पशु में एक विशेष अन्तर यह है कि मनुष्य हँस सकता है, व्यग्य समझ सकता है और हास्य पर मुस्करा सकता है। जो मनुष्य जितना अधिक "प्रकृत" होगा उसमें हास्य से आनन्द उठाने की उतनी ही मात्रा अधिक होगी। हमारा साहित्य प्रारम्भ से ही प्रकृतस्थ रहा है क्योकि भारतेन्दु काल की कृतियो ही से हमें व्यग्य-विनोद के छीटे मिलने लगते हैं।

शास्त्रीय-विवेचन

सस्कृत के आचार्यो ने शृङ्गार-रस को ही प्रधान माना है। सस्कृत साहित्य में हास्य-रस की कृतियाँ भी अपेक्षाकृत कम मिलती हैं। अँग्रेजी साहित्य में हास्य-रस का विवेचन अधिक मिलता है। "हम क्यो हँसते हैं ?" इस प्रश्न पर विदेशी विद्वानो ने विशद विवेचन किया है। यद्यपि असगति हास्य का मूल सर्वमान्य रहा है। हमने प्रतिपादित किया है कि हास्य रस भी रसराज माना जा सकता है। वास्तव में हास्य रस आचार्यो की दृष्टि से अब तक उपेक्षित रहा है। भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक सभी आचार्यो ने हास्य रस के लक्षण तथा उदाहरण देकर इसको समाप्त कर दिया है। हास्य के प्रभेद विदेशी साहित्य में स्पष्ट मिलते हैं। उनका अलग अलग विवेचन भी मिलता है, किन्तु हमारे यहाँ जो वर्गीकरण किया गया है वह हसन-क्रिया का है, हास्य का नही।

अभाव के कारण

पराधीनता, शृङ्गार रस का प्राधान्य, अद्वैतवादी दार्शनिक दृष्टिकोण आदि ही हिन्दी में हास्य रस के अभाव के कारण रहे हैं किन्तु यह धारणा गलत मालूम पडती है कि हिन्दी साहित्य हास्य रस की दृष्टि से बहुत पीछे है।

अमीर खुसरो से आज तक पद्यात्मक साहित्य में हास्य रस प्रमुख मात्रा में मिलता है, हां गद्य मे हास्य विदेशी साहित्य की अपेक्षाकृत कम है किन्तु भारतेन्दु काल से इस दिशा में भी समृद्धि हो रही है।

नाटक

भारतेन्दु काल मे हास्य रस के प्रहसनो का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। उनके जमाने में प्रचुरमात्रा में प्रहसन लिखे गए। उनमें वार्तालाप प्रधान था। धार्मिक रूढियां, विधवा विवाह, बाल विवाह, बहुविवाह, नशेबाजी के दुष्परिणाम, आदि सामाजिक विषय प्रधान रहे। एक एक समस्या पर कई लेखको ने प्रहसन लिखे। कलात्मक दृष्टि से वे उच्च कोटि के नही थे। उस समय के कई प्रहसनकारो ने भारतीय एव पाश्चात्य—दोनो प्रकार की नाट्य-शैलियो का मिश्रण किया तथा अपने प्रहसनो को उसी मिश्रित शैली में लिखा। द्विवेदी युग में प्रहसनो की गति मन्थर रही द्विवेदी युग के बाद प्रहसनो की पुन. बाढ आई। रेडियो पर प्रहसनो के प्रसारण ने भी प्रहसनो की सृजन को प्रोत्साहित किया। कलात्मक दृष्टि से आधुनिक युग के प्रहसनो में निखार आया। आलम्बन धार्मिक रूढियो से बदल कर फिल्मी जीवन, घरेलू समस्याएँ तथा राजनैतिक नेता हो गए।

कहानी

भारतेन्दु काल में हास्य रस प्रधान कहानियो का प्राय अभाव ही रहा। द्विवेदी युग में हास्य रस प्रधान कहानियो का श्री गणेश हुआ किन्तु शिल्प की दृष्टि से वे अपरिपक्व ही रहीं। वर्तमान युग में हास्य रस की कहानियो से हिन्दी साहित्य सन्तोषजनक रूप से पल्लवित हुआ। भाषा, कथावस्तु एव चरित्र चित्रण की दृष्टि से हास्य रस प्रधान कहानियां अब प्रचुर मात्रा मे मिलती हैं।

उपन्यास

हास्य रस प्रधान उपन्यासों का अभाव भारतेन्दु काल से ही रहा है। यद्यपि द्विवेदी काल के उपरान्त कुछ प्रयास इस ओर हुआ है किन्तु वह नगण्य है अंग्रेजी साहित्य के 'वुडहाउस', "डिकेन्स', "जेरोम" की सी प्रतिभा अभी हिन्दी में नहीं है।

निबन्ध

भारतेन्दु काल से ही हास्य-रस के सुन्दर निबन्धो का सृजन प्रारम्भ हो गया था। द्विवेदी युग में भी इस ओर लेखको का झुकाव रहा। आधुनिक युग में भी हास्य रस के सुन्दर निबन्ध मिलते हैं। हास्य रस की दृष्टि से हिन्दी का निबन्ध साहित्य पर्याप्त मात्रा में समृद्ध रहा है।

कविता

हास्य रस पूर्ण काव्य हिन्दी के प्रारम्भिक काल से ही मिलता है। भारतेन्दु काल के काव्य में हास्य रस प्रचुर रूप में मिलता है। "स्यापा" उस समय की हास्य रस कविता की विशिष्ट शैली थी। फैशनेबुल युवक युवतियाँ, टैक्स, अग्रेजी राज्य के अधिकारी गण, कजूस कविता के आलम्बन थे। उस समय का हास्य प्रकट हास्य था। उसमें स्नेह हास्य का अभाव था। व्यग्य में कटुता विशेष थी। द्विवेदी युग के वाद हास्य रस की कविता कम लिखी गयी। वह समय ही गम्भीरता एव भाषा परिष्कार का था। द्विवेदी युग के वाद हास्य रस की कविता की एक वाढ सी आई। भारतेन्दु काल तथा द्विवेदी युग में मुक्त छन्द ही हास्य रस के अधिक मिलते हैं। किन्तु पिछले ५० वर्षो में ऐसे कवि वहुत मिलते हैं जिन्होने केवल हास्य रस में ही अपनी कविताएँ लिखी तथा वे हास्य रस के कवि के रूप में ही प्रख्यात हैं।

हास्य के प्रभेदो में व्यग्य ही कविता में अधिक मिलता है। यह वात जो भारतेन्दु काल के लिए लागू होती थी वह आज भी है। परिहास उससे कम मिलता है। विशुद्ध हास्य का अभाव हिन्दी कविता में प्रारम्भ से ही रहा है जो आज तक चला आ रहा है। वैसे हास्य रस की कविता में प्रौढता एव परिष्कार दृष्टिगोचर अवश्य होता है किन्तु वौद्धिक हास्य की कमी खटकती है यही कारण है कि आधुनिक गौरव प्राप्त मासिक पत्र तथा पत्रिकाओ में हास्य रस की कविताओ के दर्शन दुर्लभ हैं। हाँ, होलिकाको में अवश्य प्रतिवर्ष हास्य रस पूर्ण कवितायें देखने को मिल जाती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि अभी पाठको में हास्य रस की कविता में आनन्द लेने की रुचि उचित मात्रा में जाग्रित नही हो सकी है। लोग हलके से व्यग्य के छीटे से तिलमिला जाते हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

हास्य रस प्रधान पत्र-पत्रिकाएँ भारतेन्दु काल में नही थी। हास्य रस की कृतियाँ अवश्य हर पत्र में निकलती थी। द्विवेदी युग में इनका प्रारम्भ

हुआ। आजकल लगभग पाँच छः हास्य रस प्रधान पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं किन्तु उच्च कोटि की एक भी नहीं कही जा सकती। व्यंग्य चित्र के बिना हास्य रस का पत्र कुछ मूल्य नहीं रखता। वर्तमान पत्र पत्रिकाओं में व्यंग्य-चित्रों का अभाव है, यदि निकलते भी हैं तो दूसरे पत्रों से उद्धृत करके या किसी नवसिखिए व्यंग्य चित्रकार के प्रयोगावस्था में बनाए हुये। इंग्लैंड के "पंच" तथा भारत के "शंकर वीकली" (अंग्रेजी) जैसे हास्य एवं व्यंग्य चित्र पत्र की अत्यन्त आवश्यकता है।

अनुवाद

विदेशी साहित्य एवं प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य के हास्य रस के ग्रन्थों के बहुत कम अनुवाद हिन्दी में मिलते हैं। कम से कम प्रसिद्ध अंग्रेजी के हास्य रस की कृतियों का अनुवाद तो हिन्दी में शीघ्र हो जाना चाहिए, जिससे नए लेखकों को इस बात का ज्ञान हो जाय कि हास्य का स्तर कैसा होना चाहिए।

रेडियो-रूपक साहित्य

आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से हास्य रस पूर्ण नाटक प्रसारित होते रहते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककारों के अतिरिक्त रेडियो-टेकनीक से प्रहसन लिखने वालों का एक नया लेखक-मण्डल तैयार हो गया है। इन नाटकों में ध्वनि की सहायता से प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।

कार्टून-साहित्य

हास्य रस का "व्यंग्य-चित्र" एक प्रमुख रूप है। आज के युग में इसका महत्व बहुत अधिक है। राजनैतिक एवं सामाजिक विषयों को लेकर अनेकों कार्टून समाचार पत्रों में प्रतिदिन निकलते हैं। "व्यंग्य-पट्टिकाएं" आधुनिक युग की विशेषता है।

आज का हास्य-साहित्य हँसने हँसाने के कार्य की सीमा को लांघ चुका है। आज के हास्य में सामाजिक चेतना सुरक्षित हो चुकी है। "शुद्ध हास्य" का स्थान "बौद्धिक हास्य" ने ले लिया है। साहित्य के अन्य अंगों की समृद्धि के साथ साथ हास्य-रस के भण्डार को पूर्ण करने की ओर भी विद्वानों का तथा लेखकों का ध्यान गया है और अब यह आशा होने लगी है कि शीघ्र ही हिन्दी साहित्य का हास्य साहित्य पूर्ण समृद्ध हो सकेगा।

O
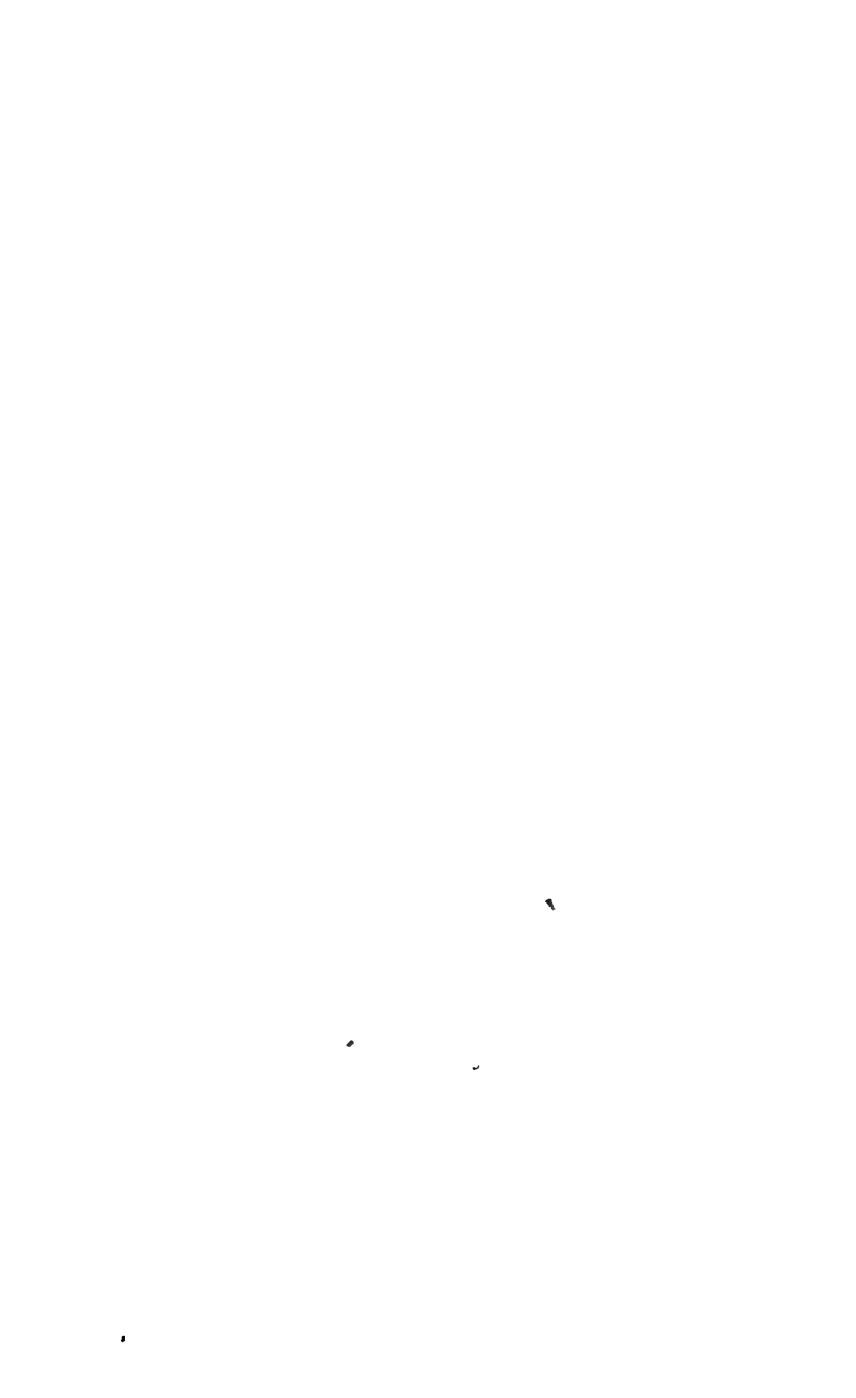
परिशिष्ट—१

उर्दू में हास्य की परम्पराएँ

काव्य मे

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में "भडौए" लिखे गये थे। "भडौओं" में उपहास-पूर्ण निन्दा रहती थी। कवि-गण जब अपने आश्रयदाताओं से बिगडते थे, तो उन पर "भडौए" लिखते थे। उधर उत्तर-रीतिकाल में उर्दू-साहित्य में "हजोएँ" लिखी गई थी। 'हजो' उर्दू में उपहास-पूर्ण निन्दा काव्य को कहते हैं। हिन्दी और उर्दू में इस प्रकार से साम्य मिलता है। बेनी कवि को किसी ने मरियल घोडा दे दिया, वे उस पर लिखते हैं—

"घोडा गिर्‌यो घर बाहर ही,
महाराज कहूँ उठवावन पाऊँ।
ऐंडो परे बिच पंडोई मांझ,
चलै पग एक ना कैसे चलाऊँ।
होय कहारन को जु पै आयसु,
डोली चढाय यहाँ तक लाऊँ।
जीन धरौं कि धरौं तुलसी,
मुख देउँ लगाम कि राम कहाऊँ।"

"सौदा" उर्दू साहित्य में 'हजो' लिखने में माहिर थे। उन्होंने भी एक मरियल घोडे पर 'हजो' लिखी है—

"ना ताकती का उसकी कहाँ तक करूँ बयाँ,
फाकों का उसके अब मैं कहाँ तक करूँ शुमार।
मानिन्द नक्शे नाल जमीं से बजुज़ फना,
हरगिज न उठ सके वह अगर बैठे एक बार।
है इस कदर जईफ कि उड़ जावे बाद से,
मेखें गर उसकी पास की होवें न उस्तवार।

है पीर इस क़दर कि जो बतलावे उसका सिन,
पहले वह ले के रेगे बयावाँ करे शुमार।
लेकिन मुझे जरूए तवारीख याद है,
शयताँ इसी पे निकला था जन्नत से हो सवार।"

एक दूसरा ढग और था। आपस में भी कवियो द्वारा एक दूसरे पर छीटाकशी की जाती थी। बेनी कवि ने लखनऊ के ललकदास महत पर एक कवित्त लिखा—

"घर-घर घाट-घाट बाट-बाट ठाट ठटे,
बेला औ कुबेला फिरैं चेला लिए आस-पास।
कविन सो बाद करैं, भेद बिन नाद करैं,
महा उन्माद करैं धरम करम नास।
बेनी कवि कहै बिभिचारिन को बादसाह,
अतन प्रकासत न सतत सरम तास।
ललना ललक, नैन मैन की भलक,
हँसि हेरत अलक रद खलक खलकदास॥"

सौदा के मित्र मीर जाहिक पेटू थे। अपने किसी मित्र के यहाँ दावत खाने गये। लोग बातचीत ही कर रहे थे कि मीर जाहिक भण्डारे में जा पहुँचे—

"जाके मतबख़ पे यह पडा इस तरह,
मैं बयाँ उसका अब करूँ किस तरह।
लाठियाँ ले ले हाथ पीरो जवाँ,
करते ही रह गये, सभी हाँ! हाँ!
गोश्त, चावल, मसाल, तरकारी,
सब समेट उसने एक ही बारी।
रख के कल्ले में कर गया सब चट,
मुतलक उसने न मानी डाँट-डपट।
जिन हैं या आदमी है या क्या है,
या कोई देव बौखलाया है।
नहीं डरता वह लाठी पाठी से,
क्या करे लाठी इसकी काठी से।"

उस समय हास्य की प्रवृत्ति व्यक्तिनिष्ठ थी। निन्दा एव घृणा की मात्रा मुखर हो उठी थी। शब्द-जन्य हास्य ही अधिक लिखा जाता था। 'सौदा'

का कार्यकाल सन् १७१३ ई० से १७८१ ई० तक रहा। सन् १७५० से १८५० ई० तक ही भडौवे अधिक सख्या मे लिखे गये। १८७० ई० से भारतेन्दुकाल मे हास्य-काव्य की प्रवृत्तियो ने मोड लिया।

सन् १८१७ ई० के लगभग आते है इशा अल्ला खाँ। ये मस्त तबियत के शायर थे। इन्होंने हास्य और मेवस का समन्वय करके कवितायें लिखी—

"ख्याल कीजिए क्या आज काम मैंने किया,
जब उसने दी मुझे गाली सलाम मैंने किया।"

उर्दू में व्यग्य को 'तन्ज' कहते है। इशा साहब ने किसी महन्त को आलम्बन बना कर ये शेर लिखा—

"यह जो महन्त बैठे हैं राधा के कुंड पर,
अवतार बन के गिरते है, परियो के झुंड पर।"

मच्छर हास्य-रस के कवियो के प्रिय आलम्बन रहे है। हिन्दी साहित्य में भी मच्छरो पर हास्य-रस की कविताएँ बहुत मिलती है। इशा साहब को भी मच्छरो ने परेशान किया और उन्होंने लिखा—

"मच्छरों को हुआ है अबके ये ओज।
दब गई जिनसे मरहठो की फौज॥
सूखे सहमें है काले काले है।
यह भी पर कोई घोटे वाले है॥
× × ×
हुए मच्छर बहुत से जो साथी।
जितने भैंसे थे हो गए हाथी॥
आगे क्या लिखे कोई उनका भेद।
पड़ गए कागजो में लाखों छेद॥
जिस से रखता है मच्छर उनका नाम।
इनको चाहिए तो कहिए मच्छरे शाम॥
यों हुई शाम, जो ये था लागे,
आदमी इनसे बच कहां भागे?"

इशा के काव्य में विनोद की मात्रा अधिक है। भाषा सरल एवं बोध-गम्य है। उर्दू में [illegible] हास्य-रस के रसिकों [illegible] है जिन्होंने स्वतन्त्र रूप से हास्य-रस की कविताएँ लिखीं। इनमें [illegible] है जिन्होंने '[illegible]'

लिखते-लिखते भूले भटके कोई 'हज़ल' भी लिख दी। नज़ीर अकबराबादी दूसरे स्कूल के शायर थे। इनका आलम्बन इनका माशूक था। इनके कुछ शेर देखिए—

"कल शबे वस्ल में क्या खूब कटी थीं घड़ियाँ,
आज क्या मर गए घड़ियाल बजाने वाले।
हमारे मरने को हाँ तुम तो झूठ समझते थे,
कहा रकीब ने लो अब तो एतबार हुआ।

× × ×

सुबह जब बोल उठा मुर्गे—सहर कुकडूँ-कूँ,
उठ गए पास से वह रह गया मैं टुटरूँ टूँ।

× × ×

आदम एक दमड़ी की हुकिया को रहे आजिज सदा,
हमको क्या-क्या पेचवाँ और गुड़गुड़ी पर नाज़ है।
ग़ौर से देखा तो अब यह वह मसल है बे नजीर,
बाप ने पिदड़ी न मारी बेटा तीरदाज है।"

नज़ीर साहब ने विनोदात्मक काव्य ही अधिक लिखा। इनके आलम्बन सामान्य व्यक्ति होते हैं।

महाकवि 'गालिब' के काव्य में भी यत्र तत्र हास्य-रस के छींटे मिलते हैं। वैसे उनका काव्य दार्शिनकता से ओत-प्रोत है। गालिब लिखते हैं—

"इश्क ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया,
वर्ना हम भी आदमी थे काम के।

× × ×

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन,
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख्याल अच्छा है।

× × ×

कर्ज की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ,
रंग लाएगी हमारी फाकामस्ती एक दिन।

× × ×

पूछते हैं वह कि ग़ालिब कौन है,
कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या ?"

'गालिब' का हास्य परिष्कृत एवं उच्चकोटि का है। वह गुदगुदाता भर है, चिकोटी नही काटता। गालिब के बाद 'दाग' आते हैं जिन्होंने हास्य रस पूर्ण शेर लिखे। इन्होंने भी प्रेम को लेकर हास्य-रस की सृष्टि की। 'सेक्स' इनके भी हास्य में प्रधान है। दाग फरमाते हैं—

"यह तौर दिल चुराके, हुआ उस निगाह का।
जैसे क़सम के वक्त हो झूठे गवाह का॥

× × ×

जिसमें लाखों बरस की हूरें हों।
ऐसी जन्नत का क्या करे कोई॥

× × ×

आके बाजार मुहब्बत में जरा सैर करो।
लोग क्या करते हैं, क्या लेते हैं, क्या देते हैं॥

× × ×

आ गया कुछ याद, दिल भर आया आंसू गिर पडे।
हम न ऐसे थे तुम्हारे मुस्कराने के लिए॥

× × ×

रहता है इबादत में हमें मौत का खटका।
हम याद खुदा करते हैं कर ले न खुदा याद॥"

'दाग' के हास्य में व्यंग्य की मात्रा अधिक है। व्यंग्य मृदुल है तीखा नहीं। इनके हास्य में मौलिकता है। आसी गाजीपुरी ने भी कुछ हास्य रस के शेर लिखे हैं—

"हाय क्या बोझ बुढ़ापे में भरा था अल्लाह,
सर तो सीने में घुसा पीठ कमर तक खम है।

× × ×

दर्द दिल इतना पसन्द आया उसे,
मैंने जब की आह उसने वाह की।

× × ×

बुरा क्यों मानें हम जो भेस चाहो शौक से बदलो,
हमारी ही नुमायश है तुम्हारी खुदनुमाई में।"

फानी में चमत्कार है, स्वाभाविक हास्य-सृजन की क्षमता कम दृष्टिगोचर होती है।

अकबर "इलाहाबादी" को हम उर्दू-साहित्य का हास्य रस सम्राट् कह सकते है। इनमें विलक्षण प्रतिभा थी। इन्होने सामयिक विषयो पर मर्म-स्पर्शी शेर लिखे। फैशन-परस्ती, स्त्री-शिक्षा, बेकारी, धर्मान्धता, राजनैतिक विद्रूपताएँ आदि इनके आलम्बन थे। इनके शेर निशाने पर चोट करते थे। अपने समय के ये अत्यन्त लोकप्रिय शायर थे। अकबर इलाहाबादी के कुछ चुने हुए शेर मुलाहिज़ा फरमाइये—

"मेंबरी से आप पर तो वार्निश हो जायगी,
कौम की हालत में कुछ इससे जिला हो या न हो।

× × ×

कौम के ग़म में 'डिनर' खाते हैं हुक्कामों के साथ,
रंज 'लीडर' को बहुत है मगर आराम के साथ।

× × ×

महबूबा भी रुखसत हुईं साक़ी भी सिधारा,
दौलत न रही पास, तो अब 'हीं' है न 'शी' है।

× × ×

हुए इस क़दर मुहज्जब कभी घर का मुंह न देखा,
कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर।

× × ×

बूट डासन ने बनाया, मैंने एक मजमूं लिखा,
मुल्क में मजमूं न फैला, और जूता चल गया।

× × ×

ज़ान शायद फरिश्ते छोड भी दें,
डाक्टर फीस को न छोडेंगे।

× × ×

शेख जी के दोनों बेटे बाहुनर पैदा हुए,
एक है खुफिया पुलिस और एक फांसी पा गए।"

अकबर इलाहाबादी की भाषा में अंग्रेजी शब्दो के सहज प्रयोग से विनोद उत्पन्न हो जाता है। इनका हास्य एव व्यग्य सोद्देश्य था। उसमें सुधार की भावना थी। तत्कालीन परिस्थितियो में इनके काव्य ने समाज सुधार का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया।

जरीफ लखनवी ने भी सामयिक विषयों पर मधुर छींटे कसे हैं। आज कल चुनावों का बड़ा महत्व है। 'शामते इलेक्शन' शीर्षक उनकी प्रसिद्ध कविता में एक 'वोटर' का खाका खींचा गया है—

> "उस जगह से उठ कर घर पर एक साहब के गए,
> दस बरस नाकाम रहने पर हुए थे जो बी ए।
> रेलवे में थे मुलाजिम, खुद भी थे चलते हुए,
> आपकी तन्ख्वाह तो कम, ठाठ थे लेकिन बड़े।
> इंग्लिश स्टाईल पै रहने का जो इनको शौक था,
> बूट बेडी पांव की कालर गले का तौक था।
> फूस के छप्पर में रहते थे, यह इस सामान से,
> और फरनीचर तो खारिज इनके था इमकान से।
> टूटी फूटी कुरसियां लेकर किसी दूकान से,
> बैठते थे इनपै छप्पर में निहायत शान से।
> नाम इक तख्ती पै लिख रक्खा था यूं बहरे विकार,
> मिस्टर अब्राहम बी.ए. टी० टी० सी० ई० आई० आर०।"

रियाज खैराबादी की गजलों में भी हास्य रस का समावेश हुआ है। शराब पीने से सम्बन्धित उनकी एक हास्यपूर्ण उक्ति देखिए—

> "नीची दाढ़ी ने आबरू रख ली,
> कर्ज पी आए इक दुकान से आज।
> बड़े नेकनीयत, बड़े साफ़ बातन,
> रियाज आपको कुछ हमीं जानते हैं।"

वर्तमान युग में कवि 'जोश' मलीहाबादी का उर्दू-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। राजनैतिक व्यंग्य लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। आपने [illegible] के समान अर्धदग्धों एवं पाखंडियों की भी खूब खबर ली है। पाश्चात्य शिक्षा का कुप्रभाव जो नवयुवकों पर पड़ा, उन पर एक तीखा व्यंग्य देखिए—

> "कौन सी तुमने नेचराईज्म से ली शीरीं अदा,
> मरहबा ! ऐ नाज़ुकान दामाने पार्वेज मरहबा।
> [illegible] से [illegible] हाए [illegible] नाज़ुक [illegible],
> फर्जी चेहरों में जन बनाने के अरमां बेकरार।
> नाज़ुकी का [illegible] [illegible] [illegible] बांधे हुए,
> और [illegible] का [illegible] पर [illegible] बांधे हुए।

देर से तोपों के मुँह खोले हुए हैं रोजगार,
सीनए गेती में है जिसकी धमक से खल्फेशार।
दागले जीनत से तुम्हें फुरसत मगर मिलती नहीं,
क्या तुम्हारे पाँव के नीचे जमीं हिलती नहीं।"

आधुनिक हास्य-लेखकों में श्री अता हुसैन भी अग्रगण्य हैं। सामयिक विषयों पर उनकी कतिपय उक्तियाँ पठनीय हैं—

"ग्रेजुएट के मुकद्दर में नौकरी न हुई,
निकाह जैसे हुआ और रुख़सती न हुई।
महीने तब थे बराबर बराबरी न हुई,
कभी जमाने में इकतीस की फरवरी न हुई।
नहीं जवाल है उलफत के कारनामे को,
वह जूये शेखी जो आज तक वरी न हुई।
सफेद जुल्म दवासे सियाह हो न सकी,
जो घास सूख गयी फिर कभी हरी न हुई।"

"विस्मिल इलाहावादी" ने भी हास्य रसपूर्ण कुछ शेर लिखे जो काफी पसन्द किये गये। कुछ देखिए—

"कुछ लिख नहीं सकते हैं, बेकार निकलते हैं।
किस वास्ते फिर इतने अखबार निकलते हैं॥

× × ×

आज कल बदला हुआ मजमून है।
हर कदम पर एक नया कानून है॥

× × ×

बात यह मुझको पसंद आई जनाबे पोप की।
इस जमाने में हुकूमत रह गई है तोप की॥"

इनके अतिरिक्त हास्य रस की शेर लिखने वालों में श्री "शौक" बहराइची माचिस साहब, 'जलाल' मशहूर हैं। श्री नर्मदेश्वर जी भी "अहमक जौनपुरी" के नाम से उर्दू की मजाहिया कविता करते हैं।

गद्य में

महाकवि गालिब के कुछ पत्रों में व्यंग्य एवं विनोद मिलता है। उर्दू साहित्य में गद्यात्मक हास्य का विकास समाचार पत्रों द्वारा हुआ। देश गुलाम

था। लोग अपने असन्तोष की अभिव्यक्ति हास्य एव व्यंग्य के माध्यम से ही कर सकते थे। 'जी हुजूरों' का बोलबाला था।

लखनऊ से 'अवध पच' निकला। ये हास्य रसपूर्ण साप्ताहिक था। सम्पादक थे श्री सज्जाद हुसेन साहब। 'अवध पंच' के लेखकों में श्री रतननाथ सरशार बहुत प्रसिद्ध हुए। इस पत्र में सामयिक विषयो पर व्यंग्यपूर्ण लेख प्रकाशित होते थे। रतननाथ सरशार का "फिसानए आजाद" काफी प्रसिद्ध हुआ। उसका एक नमूना देखिए—

"चोबदार—(हाथ जोडकर) जाँ-बख्शी हो, तो अर्ज करूँ। बटेर सब उड़ गये।

नवाब—(हाथ मलते हुए) सब !! अरे सब उड़ गये ! हाय मेरे वीर योधा को जो ढूँढ़ लाये हज़ार नकद गिनवा ले। इस वक़्त मैं जीते जी मर मिटा, उफ, भई अभी सांडनी सवारों को हुक्म दो कि पचकोसी दौरा करे। जहाँ वह बांका वीर मिले समझा बुझाकर ले ही आयें।"

उर्दू के वर्तमान हास्य-लेखकों में फरहत उल्ला बेग, सुलतान हैदर जोश, पितरस, मुल्ला रमूजी, शौकत थानवी, रशीद अहमद सिद्दकी, कन्हैयालाल कपूर तथा स्वर्गीय मिर्जा अजीमबेग चगताई हैं। इन लेखकों ने उपन्यास, कहानी, लघु निबन्ध आदि साहित्य के अनेक रूपों के माध्यम से राजनैतिक, सामाजिक एव पारिवारिक विद्रूपताओं पर व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। मुल्ला रमूजी गुलाबी हास्य लिखने में सिद्धहस्त है।

फरहतउल्ला बेग के "ऊँह' शीर्षक लघु निबन्ध का एक अंश देखिए—

"घरवाली की ऊँह ! सबसे ज्यादा भयानक ऊँह होती है। किसी दासी पर रुष्ट हो रही है। वह बराबर जवाब दिये जा रही है। वह 'ऊँह' ! करके चुप हो जाती है। लीजिये नौकर ढीठ हो गया। घर का सारा प्रबन्ध अस्त-व्यस्त, उनके अधिकार छिन गये ......अब क्या है पिटारी में से कत्था, डलियाँ गायब, फंटा बगल से रुपये गायब, सन्दूकों से कपड़े गायब। बच्चों ने कोयलों से दीवारों पर लकीरें खींचीं, दरवाजों पर पेन्सिल से कीड़े-मकोड़े बनाये, पहले तो श्रीमती जी कुछ रोष बहुत बिगड़ीं। फिर 'ऊँह' करके चुप हो गईं। अब जाकर देखो तो थोड़े दिनों में सारा मकान भाँति-भाँति की चित्रकारी से अजन्ता की गुफाओं को मात कर रहा है।'

प्रो० रशीद अहमद सिद्दकी के हास्य में मधुरता अधिक मिलेगी। उनकी अपनी शैली है जो प्रसाद गुण युक्त है। "जीने का सलीका" शीर्षक लेख का प्रारम्भ देखिए—

"एक साहब पिटते भी जा रहे थे और हँसते भी जा रहे थे। जिस क़द्र बेतहाशा पिटते थे उसी कद्र बेतहाशा हँसते थे। दरियाफ्त करने पर मौसूफ ने बडी मुश्किल से बताया कि पीटने वाला गलत आदमी को पीट रहा था। इसलिए वह उसकी हिमाकत से लुत्फन्दोज हो रहे थे। तो हजरत यह तो रहा पिटने का तरीका ··।"

मिर्जा अजीमबेग चगताई ने पारिवारिक समस्याओ को विषयवस्तु बना कर मजेदार कहानियाँ तथा लेख लिखे है। ये परिस्थियो के निर्माण में अत्यन्त कुशल है।। भाषा चुस्त व सीधी सादी है। दुर्भाग्य है कि वे इस दुनियाँ से बहुत जल्दी कूच कर गये। चगताई साहब की 'पट्टी' शीर्षक कहानी का एक अश देखिए—

"पट्टी एक तो होती है जो चारपायी मे लगाई जाती है दूसरी वो जो सिपाहियो के पैरो पर बाँधी जाती है फिर और भी बहुत किस्म की पट्टियाँ हैं, लेकिन मेरा मतलब यहाँ उस पट्टी से है जो फोडा, फुन्शी और चोट चपेट के सिलसिले में डाक्टरो के यहाँ बाँधी जाती है।

× × ×

घरेलू बीबी हिन्दुस्तानी बीबी है जिसको फरीक़ैन के वालदैन ब्याहते हैं, फरीक़ैन निबाहते हैं और मुल्क और मिल्लत सराहते हैं। दूसरी तरफ तालीमयाफ्ता रौशन खयाल बीवी है जिसको फरीक़ैन के अहबाब ब्याहते हैं, अहबाब ही निबाहते हैं और सोसायटी सराहती है।"

चगताई का हास्य परिस्थिति-जन्य अधिक होता है। हिन्दी में इनकी कृतियो के अनुवाद बहुत प्रचलित है। यह इनकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

पितरस विनोदपूर्ण लेख लिखने में प्रवीण है। पहले ये आकाशवाणी के डायरेक्टर जनरल थे। पाकिस्तान बनने पर आप वहाँ के डायरेक्टर जनरल होकर चले गये। 'कुत्ते' शीर्षक उनके एक हास्यमय लेख का ये अश देखिए—

"कल ही की बात है कि रात के कोई ग्यारह बजे एक कुत्ते की तबियत जो जरा गुदगुदाई तो उन्होंने बाहर सडक पर आकर तरह का एक मिसरा दे दिया। एक आध मिनट के बाद सामने के बँगले में से एक कुत्ते ने "मतला

अर्ज कर दिया। अब जनाब एक पुराने कवि सम्राट को जो गुस्सा आया एक हलवाई के चूल्हे में से बाहर लपके और भिन्ना के पूरी गजल मकता तक कह गये। इस पर उत्तर पूरब की ओर से एक काव्य मर्मज्ञ कुत्ते ने जोरो की दाद दी। अब तो हज़रत वह मुशायरा गर्म हुआ कि कुछ न पूछिये, कम्बख्त बाज़ तो दो ग़ज़ले सेह गज़ले लिख लाये थे, बहुतोने तो आशु कविता कही और क़सीदे पे कसीदे कह गये। वह शोर मचा कि ठंडा होने में न आता था। हमने खिड़की में से हज़ारो दफ़ा "आर्डर-आर्डर" पुकारा लेकिन ऐसे मौको पर सभापति की भी कोई नहीं सुनता अब इनसे कोई पूछे कि 'मियाँ' तुम्हे ऐसा ही ज़रूरी मुशायरा करना था तो दरिया के किनारे खुली हवा में जाकर "काव्य की सेवा" करते। यह घरो के बीच में आकर सोतो को सताना कौन सी शराफत है?"

शौकत थानवी ने हास्य कम, व्यग्य अधिक लिखा है। इनमें शब्द-जन्य हास्य की अधिकता है। उनका व्यग्य मृदुल होता है। इनके कई उपन्यास एव कहानी-सग्रह हिन्दी में भी अनुवादित हो चुके है। उनकी "स्वदेशी" शीर्षक कहानी का एक अश देखिए—

"इस वक्त तमाम मोहज्जब अकवाम का यह हाल है कि वह अपने को मोहज्जब साबित करने के लिए कुत्ता जरूर हमराह रखती हैं। कोई जैण्टिल-मैन बगैर कुत्ते के कभी मुकम्मिल जैण्टिलमैन नहीं हो सकता। कोई लेडी बगैर कुत्ता बगल में दबाए कभी लेडी नहीं हो सकती। कोई मोटर बगैर कुत्ते के मोटर नहीं होता और कोई मकान बगैर कुत्ते के दौलतख़ाना नहीं होता।"

आधुनिक लेखकों में कन्हैया लाल कपूर अग्रगण्य है। उनके हास्य में गुदगुदाने का प्रभाव है। जहाँ उपहास किया है वह भी कटु नहीं है, आलम्बन के प्रति स्नेह के भावों से आप्लावित है। ये जीवित हैं किन्तु "अपनी याद में" शीर्षक लेख में लिखते हैं—

"उर्दू के इस मशहूर तनज निगार की मौत दिल के सदमे से हुई... प्रोफेसर कन्हैयालाल कपूर बड़ी दिलचस्प शख्सियत के मालिक थे। उन्हें देख कर एक दम अब्राहीम लिंकन, कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्हा और आर० एल० स्टीवेन्सन का ख्याल आ जाता था। वह हद से ज्यादा लम्बे और दुबले थे। जब बैठे होते तो मालूम होता कि खड़े हैं और जब खड़े होते तो ऐसा लगता कि खड़े नहीं बल्कि गिर पड़ने की तैयारी कर रहे हैं।.... .रिमानचन्द

के क़ौल के मुताबिक उन्होंने कभी किसी से मुहब्बत नहीं की। दुनियां में किसी ने उनको मुहब्बत करने के क़ाबिल ही नहीं समझा। इस लेहाज से वह सिर्फ नाम ही को कन्हैया थे। हैरत इस बात पर नहीं कि उन्हें उम्र भर कोई राधा नहीं मिली बल्कि इस पर है कि उन्हें कभी कोई सुदामा भी नहीं मिला।"

वास्तव में उर्दू में भी हमें हास्य की स्वस्थ परम्परा मिलती है। गद्य तथा पद्य दोनो में प्रचुर मात्रा में हास्य रस की सामग्री उपलब्ध है।

परिशिष्ट—२

हास्य-साहित्य के विगत सात वर्ष

(१९५०—१९५७)

हिन्दी साहित्य में हास्य रस उपेक्षित रहा है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आधुनिक हिन्दी के आलोचको ने सर्वसम्मति से इस कथन को दोहराया है कि हिन्दी में हास्य रस का अभाव है। मेरा यह मत है कि यह भावना साहित्यिक विद्वानो के मन में इतनी गहरी पैठ गई है कि वे इस ओर से प्राय उदासीन हो बैठे है। यह धारणा यथार्थ से परे है। हास्य रस के साहित्य का सृजन भी द्रुतगति से हो रहा है। हास्य रसपूर्ण काव्य, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध बराबर लिखे जा रहे है। इन कृतियो का स्तर क्या है? यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। आज स्थिति यह है कि हास्य रस की कृतियो का लेखा-जोखा करना आधुनिक "आचार्य" अपनी शान के खिलाफ समझते है। क्या वास्तव में हास्य रस इतना उपेक्षणीय है? क्या इसी उपेक्षा के बल पर हम यह आशा कर सकते है कि भविष्य मे हम अपने साहित्य के इस निर्बल अग को शक्तिशाली बना सकेंगे? यदि उच्चकोटि का हास्य रस लेखक प्रशसित न होगा तथा निम्नकोटि के "कवि सम्मेलन ब्राड" लेखक अपनी निम्नस्तरीय रचनाओ से हास्य रस को बदनाम करने के लिए निरकुश छोड दिये जायँगे तो स्थिति गभीर हो जायगी।

गत वर्षों में हास्य-साहित्य का सृजन सन्तोषजनक रहा है। काव्य, नाटक, कहानी, निबन्ध, आलोचना, प्रत्येक क्षेत्र में नवीन कृतियो का प्रकाशन हुआ है।

काव्य

बेढब बनारसी का नया सकलन 'बिजली' नाम से प्रकाशित हुआ है। बेढब जी का हास्य [illegible] है किन्तु इस सकलन की कविताओ में अश्ली-लता नहीं कहीं आने पाई है। शिष्ट एव परिष्कृत हास्य का ही सृजन हुआ है।

"जज्वाते ऊँट" के रचयिता है, 'ऊँट विरहलवी'। इसमें सकलित हास्य-कविताएँ सामयिक विपयो पर लिखी गई है। इस सग्रह में रचयिता की उर्दू तथा हिन्दी दोनो भापाम्रो की कविताएँ सग्रहीत है। कविताम्रो के नीचे पाद-टिप्पणियाँ दी गई है जो कविताम्रो में म्राये हुए प्रयोगो को स्पप्ट करती है। कविताएँ चमत्कार-प्रधान है। प्रौढ शिक्षा-म्रान्दोलन पर एक मृदुल व्यग्य देखिए—

"समुझायो है सेर छटाँक तुम्हें,
मन तो तुमहू समझावो करौ।
दिखराई तुम्हें दुनिया सिगरी,
तुम म्रानन तो दिखरावो करौ।
तुम्हें पाठ पढाए म्रनेक भटू,
तुम प्रेम को पाठ पढावो करौ।
कबहूँ तो सिलेट-किताबें लिये,
तुम 'ऊँट' की गैलिन म्रावो करौ।"

सम्भवत कवि म्रध्यापक प्रतीत होते है जिन्हे प्रौढ शिक्षा में जोत दिया गया हो। वे म्रपनी शिष्या को गणित, भूगोल तथा हिन्दी-रीडर पढाकर उसे म्रपने यहाँ पधारने का निमन्त्रण दे रहे है। हृपिकेश चतुर्वेदी कृत "छेड-छाड" उनकी विनोदपूर्ण कविताम्रो का सग्रह हास्य-काव्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हृपीकेश जी स्थायी हास्य साहित्य की रचना करते है। 'वारात या डाका' शीर्षक उनका एक कवित्त देखिए—

"शस्त्र-साज-बाज से सुसज्जित स-दल-बल,
म्राकर उन्होने चट, घेर लिया नाका है।
माँग है सहस्त्रों की, न चिन्ता से है काम उन्हें,
द्रव्य म्रापका है, किसका है, या, कहाँ का है।
भूषण, वसन, पात्र, म्रन्न, पशु, वाहनादि,
हाथ लगा जो भी, सब उनके पिता का है।
खातिर जमाई जैसी सभी चाहते हैं, भला,
म्राप ही वताइये, बरात है कि डाका है?"

भीष्मसिह चौहान कृत "गुटरगूँ" तथा चन्द्रमोहन 'हिमकर' कृत "विडम्वना" दोनो ही हास्य-काव्य-सग्रह है। दोनो लेखको में हास्य रस की कविता लिखने की प्रतिभा है किन्तु म्रभी भापा तथा भाव-व्यजना, दोनो में ही सावना म्रपेक्षित है।

विन्ध्य प्रदेश के हास्य कवि चतुरेश की कविताओं का संकलन "चटनी" शीर्षक प्रकाशित हुआ है। कुटिलेश की "गड़बड़ रामायण" में तुलसीकृत रामायण की हास्यानुकृतियाँ हैं। पैरोडी निम्नस्तरीय है। "खिचड़ी" निर्भय कवि की हास्य-कविताओं का संग्रह है। कहीं-कहीं इनकी कविताओं में अश्लीलता एवं कटुता आ गई है जो रसाभास कर देती है। इनके हास्य रसपूर्ण लोकगीत पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। एक लोक गीत देखिए—

"टेढ़ी टुपिया लगावें, कुरता खादी को सिमावें,
सखि! मौज उड़ावें, हो हमारे बालमा,
हो हमारे साजना।
जब ते भयो स्वराज्य सखि, बालम के हैं ठाटि,
कुरता के ऊपर लई, नेहरू जाकट डाट,
अबतो नेता जो कहावें, खूब बोलत सभा में,
अपनो काम बनावें।
हो हमारे बालमा, हो हमारे साजना।"

श्रीमती कमला चौधरी की हास्य रस की कविताओं का संग्रह "आपन मगन जगत कै हाँसी" शीर्षक प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में उनकी अवधी, हिन्दी एवं उर्दू की हास्य कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं में राजनैतिक एवं सामाजिक व्यंग का मधुर समावेश हुआ है। "बहुपत्नी प्रथा" शीर्षक इनका एक राजनैतिक व्यंग देखिए—

"है प्रजातन्त्र का प्रथम नियम पार्टियाँ बहुत सी होती हैं,
जैसे राजों महराजों के रानियाँ बहुत सी होती हैं।
राजघराने में आते ही, सब पटरानी कहलाती हैं,
इसी भाँति से राजनीति में पार्टी भी मानी जाती हैं।
पर एक बात में एक सभी इन सब में सब लासानी हैं,
प्रेम जोग है लिया सभी ने सब जनता पर दीवानी हैं।
पर किसी एक की पाँचो घी में, शेष भाग को रोती हैं,
है प्रजातन्त्र का प्रथम नियम पार्टियाँ बहुत सी होती हैं।"

रमनाथ [illegible] 'काका' का नया [illegible] नाम से निकला है। इसमें अन्य कवियों की कविताएँ भी संकलित हैं। 'काका' ने [illegible] के गानों की पैरोडियाँ लिखी हैं। इनकी हास्य-कविताओं में सुरुचि का अभाव है।

इधर कुछ वर्षो से सशक्त व्यग्य लिखने में नागार्जुन ने यथेष्ट कीर्ति अर्जित की है। ये 'निराला' की व्यग्य-परम्परा में से हैं। यद्यपि निराला की भाँति कविवर पन्त ने भी 'ग्राम्या' में व्यग्य लिखे किन्तु मुख्यत पन्त जी ने व्यग्य रचना को विशेष महत्व नही दिया। नागार्जुन के आलम्बन कल्चर-वर्णी बाबू-वर्ग, एम एल ए, नेता आदि रहे हैं। नागार्जुन का व्यग्य अत्यन्त तीखा है। कटूक्ति लिखने में वे सफल हुए हैं। उनका एक राजनैतिक व्यग्य देखिए—

"अजादी की कलियाँ फूटीं,
पाँच साल में होंगे फूल।
पाँच साल में फल निकलेंगे,
रहे पन्त जी झूला झूल।
पाँच कम खाओ भैया,
ग़म खाओ दस पन्द्रह साल।
अपने ही हाथों तुम झोको,
यों अपनी आँखों में धूल।"

अथवा

"बेच-बेच कर गाँधी जी का नाम
बटोरो वोट
हिलाओ शीश
निपोडो खीस
बैंक बैलेंस बढाओ
राजघाट में बापू की वेदी के आगे अश्रु बहाओ।
तैसे घी के चहबच्चों में अमृत की हौदी में,
बाबू खूब नहाओ
हमें छोड दो राम भरोसे
जिएँ तो भले
मरें तो भले
क्या बिगडेगा अजी, तुम्हारा।"

विहार के जानकीवल्लभ शास्त्री ने भी कुछ उत्तम व्यग्य कविताएँ लिखी हैं। यद्यपि वे हास्य रस के कवि के रूप में प्रख्यात नही है। उनकी व्यग्य रचना का एक नमूना देखिए—

"सोने का बाजार मन्द है लोहे का है तेज,
पाठ यही इतना है बच्चा, उलट रहा क्या पेज।
अगर काटनी है चांदी तो ले सोने से लोहा,
फिर क्या तुलसी की चौपाई क्या रहीम का दोहा।"

शास्त्री जी के व्यग्य में चोट देने की शक्ति है। भवानी प्रसाद मिश्र ('गीत-फरोश' शीर्षक कविता में लोगों की हीन रुचि पर मधुर व्यग्य मिलता है। एक गीतकार अपने गीतों को लेकर एक रईस के पास जाकर उनका परिचय देता है—

"जी, छन्द और बेछन्द पसन्द करें,
जी, अमर गीत औ 'वे जो तुरत मरें'।
इनमें से भाएँ नहीं नए लिख दूं,
जी, नए चाहिए नहीं गए लिख दूं।
जी, गीत जन्म का लिखूं, मरण का लिखूं,
जी, गीत जीत का लिखूं, शरण का लिखूं।
कुछ और डिजाइन भी हैं ये इल्मी,
ये लीजे चलती चीज नई फल्मी।"

प्रगतिशील कवियों में व्यंग्य लिखने वाले कवि हैं डॉ० रामविलास शर्मा, शंकर शैलेन्द्र, केदार तथा भारत भूषण अग्रवाल। शंकर शैलेन्द्र के काव्य में वचन विदग्धता प्रमुख है—

"जिन्दगी भर काव्य ही रचता रहा हूँ,
जगत के कर्म से बचता रहा हूँ,
बड़ा ही मूर्ख हूँ पढ़ता रहा हूँ।"

डा० रामविलास शर्मा ने अधिक व्यंग्य रचना अपने छद्म नामों (गोरा बादल, या अगिया बैताल) में लिखी है—

"झूला झूलें जवाहर लाल,
नानी दें-दें ताल मिलावें मायी मन्मायेदार,
इनके पिया परदेश बसत हैं डालर भेजें उधार।"

भारतभूषण अग्रवाल ने विनोद, हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण कविताएँ नये दृष्टिकोण में लिखी हैं। उनकी कविताओं में शिष्ट हास्य का सृजन हुआ है। अग्रवाल की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"पहिले बिके धर्म पर
फिर बिके शील पर
रूप पर मध्य युग में बिके—
बिकना तो अपनी परम्परा है।
आज इस सकट की बाढ में
जब कहीं धर्म नहीं
शील नहीं
रूप नहीं,
हार कर हम बिके चाँदी के टुकडो पर,
हम प्रसन्न,
हम कृत कृत्य है
हमने अपने पुरखों का आन
अक्षुण्ण रक्खी है!!"

विजयदेव नारायण साही की "माड, चमगादड और मैं" शीर्षक कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस कविता के माध्यम से इन्होने विभिन्न काव्य रूपो की पैरोडी की है। अवधी भाषा में इसका रग देखिए—

"मुल अवतो माड चली आओ
मुल घिर्ररउआ केर बगंचा में,
हम घण्टन ताकेन टुकुर-टुकुर
डर लागै गजब अधेरिया में,
मुल होय करेजा धुकुर-धुकुर
ई रात माघ कै जस पाला,
ददई ई कौन भई साँसत
का कही कुलच्छन आँख लडी,
कल जिउ न जाय खाँसत-खाँसत!
हम ठाढे इहाँ सुभीते से—
घर भर को छांड चली आवो,
मुल अब तो माँड चली आवो।"

आधुनिक व्यग्य लेखको में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मनोहर प्रभाकर, लक्ष्मीकात वर्मा तथा केशव चन्द्र वर्मा प्रमुख हैं। इनके हास्य में बौद्धिकता का प्रमुख स्थान है। हास्य-काव्य को इन कवियो ने नई दिशा में मोडा है, एक

गति दी है। केशव चन्द्र वर्मा की एक हास्य-कविता का एक अंश देखिए जिसमें वे धोखे में अपनी 'शार्ट साइटेड' प्रेयसी से प्रणय निवेदन किये चले जाते है—

"जब-जब मैंने कनफुसकियो में
पार्क की बेंच पर साथ बैठ
गुनगुनाया।
'हाय प्रिया! तूने तो जिया लिया।
तब तब तुम बराबर ही मुस्कराती ही रहीं
हाय राम!
तब मैं कहाँ जानता था कि—
यह मुसकराना
तो सिर्फ शिष्टाचार है!
तुम तो 'शार्ट साइटेड' हो!
और
काफी ऊँचा सुनती हो!"

बम्बई के भरत व्यास की हास्य कविताओ का संकलन 'ऊँट पटांग' के नाम से प्रकाशित हुआ है। हास्य के उन कवियो में जिनके संकलन प्रकाशित नहीं हुए हैं उनमें बालमुकुन्द चतुर्वेदी रामलला, कृष्णगोपाल शर्मा, बाबूराम-सारस्वत, चिरंजीत, गोपालकृष्ण कौल, विनोद शर्मा, देवराज 'दिनेश', राधेश्याम शर्मा 'प्रगल्भ', परमेश्वर 'द्विरेफ', चोंच अलीगढ़, गंगासहाय 'प्रेमी', राजेन्द्र दीक्षित, शान्ति सिघल, प्रमुख हैं। श्री रामनारायण अग्रवाल का भी आधुनिक हास्य रस लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कहानी

हास्य रस के कथा साहित्य में मोहन लाल गुप्त "भैया जी बनारसी" का संकलन "मखमली जूती" उल्लेखनीय है। कहानियो की विषय-वस्तु सामाजिक एवं राजनैतिक विषमताएँ हैं। भाषा विषय के अनुकूल है। शिल्प की दृष्टि से भी सभी कहानियाँ उत्कृष्ट बन पड़ी है। "महिला-शासन" चिरंजीलाल पाराशर की हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण कहानियो का संकलन है। 'शरियत का [illegible]', 'मौसी मार्के' एवं 'प्यार का बुखार' इस संकलन की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। इनमें निहित व्यंग्य मनोरंजक है। श्री अलबर्ट अली के "ऊँट-पटांग" संग्रह में [illegible] हास्य का अच्छा परिपाक हुआ है। इसकी शैली ऊटपटांग

ढग की है। हास्य का उभार स्वाभाविक नही हो पाया, यत्नज है। स्वर्गीय वल्देवप्रसाद मिश्र के दो कहानी-मग्रह प्रकाश में ग्राये हैं। प्रथम है "उलूक तत्र" तथा द्वितीय है "मौलिकता का मूल्य"। हास्य के सृजन के लिए 'स्वप्न' का सहारा स्थान-स्थान पर लिया गया है। "मालिश" एव "प्रोफेशनल" इस सग्रह की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। हास्य शिष्ट एव परिष्कृत है। "अमृतराय" के "हाथी के दाँत" में राजनैतिक एव सामाजिक विपमताओ पर श्रेष्ठ कहानियाँ सग्रहीत हैं। इनमें ढोगियो की तथा पाखण्डियो की कलई खोली गई है। "उग्रसेन नारग" का "ग्राह वकरा" भौंडे हास्य की कहानियो का सग्रह है। इसका हास्य मुँहफट है। अशिष्ट एव निम्नस्तरीय उपहास सर्वत्र व्याप्त है। धर्मदेव चक्रवर्ती का कहानी सग्रह "कगला और वगला" उत्कृष्ट कोटि की हास्य-रस की कहानियो का सुन्दर सग्रह है। कहानियाँ कलापूर्ण एव तरल हास्य से पूर्ण है।

निवन्ध

मोहन लाल गुप्त 'भैया जी वनारसी" के विनोदपूर्ण लेखो का सग्रह "वनारसी रईस" नाम से प्रकाशित हुआ है। "असत्य के प्रयोग", "खुशामद करिये", "वीवियाँ" शीर्षक लेखो में हास्य का सृजन उत्कृष्ट हुआ है। शैली विपय के सर्वथा अनुकूल है। हास्य स्वाभाविक है। "खुशामद करिये" शीर्षक लेख का एक अश देखिए—

"खुशामद कोई बुरी चीज नहीं। अपनी तारीफ न कर दूसरों की प्रशसा करना, अपने को नगण्य समझ दूसरों को बडाई देना आपके हृदय की महाशयता और महानता प्रगट करेगा। आप खुशामद नहीं कर सकते — इसका मतलब है आप दूसरों से खुशामद करवाना चाहते हैं। अपने को इतना ऊँचा समझते हैं कि दूसरे लोग आकर आप के पैर चूमें, आपकी प्रशसा के गीत गायें। समझदार लोगों की राय है कि शिखर पर पहुँचने के लिये नीची सीढी से चढना चाहिए, इसलिए घमण्ड और गरूर को ताक पर रखकर मेरी वात मानिये—खुशामद करिये।"

श्री वासुदेव गोस्वामी कृत "वुद्धि के ठेकेदार" में उनके विनोदपूर्ण निवन्धो का सग्रह है। लेखो की भाषा दुरुह है। हास्य शब्द-जन्य है। यत्न करके हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा दृष्टिगोचर होती है। हास्य का सहज उभार नहीं है।

श्री हर्षदेव मालवीय के हास्य पूर्ण लेखों का संकलन "टुलकते डाके पाके आम" में सामयिक विषयों पर मृदुल व्यंग्य किये गये है।

श्री तिलक 'खानाबदोश' के हास्यपूर्ण निबन्धों का संकलन "बीवी के नेश्चर" के नाम से प्रकाश में आया है। लेखक उर्दू शायरी एवं उर्दू शैली से अधिक प्रभावित है। पारिवारिक समस्याओं पर अच्छे व्यंग्य है। सस्ते प्रेम, नेतागीरी आदि समस्याओं को आलम्बन बनाया गया है। "वरना हम भी आदमी थे काम के" शीर्षक लेख का यह अंश देखिए—

"आखिर हम कोई वाजिदअली शाह तो थे नहीं, जो इन सब के नाज उठाते। न दिल को 'लेबोरेटरी' बनाना चाहते थे और उसका "पोस्टमार्टम" कराते भी डर लगाता था। वह इसलिये कि एक तो "सइयाँ दिल लेगए बटुवे में" वाले भजन से ही हमें दिल की कीमत का कुछ कुछ अंदाज हुआ। और दूसरे हम यह भी बखूबी समझते थे कि "बहुत शोर सुनते हैं पहलू में जिसका, जो चीरा, तो एक कतरए खूँन निकला।"

नाटक

संस्कृत साहित्य में प्रहसन बहुत कम मिलते है। पाश्चात्य "कामेडी" के "पेटर्न" पर हिन्दी में भी हास्य-एकांकी तथा हास्य-नाटक लिखे जाने लगे है। पाश्चात्य "कामेडी" को हम हिन्दी में "कामेदी" नाम से यदि पुकारे तो असंगत न होगा। "प्रहसन" तो वास्तव में "अंग्रेजी साहित्य के 'फार्स' (Farce) का रूपान्तर है। प्रहसन में बिलकुल ऊटपटांग घटनाएं एवं चरित्र होते है। भारतेन्दु कालीन हास्य-नाटकों एवं हास्य-एकांकियों को हम प्रहसन ही कहेंगे किन्तु आधुनिक-युग में "कामेडी" का सृजन भी यथेष्ट हुआ है। डा० रामकुमार वर्मा के [illegible] "कामेडियों" का संग्रह "रिमझिम" नाम से प्रकाशित हुआ है। पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों को लेकर इन हास्य-एकांकियों का गठन हुआ है। चरित्र चित्रण स्वाभाविक है। विशुद्ध हास्य का सफल सृजन हुआ है। हास्य-एकांकियों के क्षेत्र में "रिमझिम" का प्रकाशन मील के पत्थर के समान है।

रामनरेश त्रिपाठी के '[illegible]' तथा "[illegible]" [illegible] हास्य-नाटक हैं। सेठ गोविन्ददास के [illegible] हास्य-एकांकियों में हास्य के साथ साथ [illegible] मिलती है। व्यंग्य भी तीखा है। "[illegible]", '[illegible]', "[illegible]", '[illegible]', सेठ गोविन्द दास के उल्लेखनीय हास्य एकांकी हैं।

उदयशकर भट्ट प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार हैं। गम्भीर नाटको एव एकाकियो के सृजन के साथ-साथ जहाँ उन्होने हास्य-प्रधान नाटक नाटिकाएँ लिखी हैं, वे भी उच्चस्तरीय स्थायी हास्य का सृजन करती है। "दस हजार", "गिरती दीवारें", 'दो अतिथि", "नये मेहमान", एव "वर-निर्वाचन" में सामाजिक विद्रूपताओ पर मृदुल व्यग्य कसे गये है। शिष्ट एव परिष्कृत हास्य के सृजन में भट्ट जी की हिन्दी साहित्य को यह अमूल्य देन है।

विष्णु प्रभाकर हिन्दी के यशस्वी नाटककार है। इनके हास्य-प्रधान नाटको का प्रसारण आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रो से प्राय. हुआ करता है। "कॉंग्रेस मैन वनो", "व्यग्य", "भूख" तथा 'जीत के वोल" इनके प्रसिद्ध हास्य-रेडियो-रूपक है। "भूख" में एक पत्नी के होते हुए दूसरे विवाह करने के इच्छुक व्यक्तियो पर करारा व्यग्य किया गया है। "पुस्तक-कीट" में विद्यार्थियो के रटने की आदत का मजाक वनाया गया है। "सरकारी नौकर" में क्लर्क जीवन पर सहानुभूतिपूर्ण व्यग्य है। विष्णु प्रभाकर हास्य-एकाकियो के सृजन करने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। स्वाभाविक चरित्र-चित्रण, सरल भाषा एव स्थायी प्रभाव डालने में इनके एकाकी उच्च कोटि के है।

प्रभाकर माचवे ने भी इस क्षेत्र में यथेष्ट यश अर्जित किया है। "अदालत के पास होटल", "गली के मोड पर" तथा "यदि हम वे होते" उनके श्रेष्ठ हास्य-नाटक है। जयनाथ "नलिन" के "लोमडियो का शिकार" "लखनवी वहादुर" "नवाव का इसराज" उत्कृष्ट हास्य प्रधान एकाकी है।

उपन्यास

हास्य-रस प्रधान उपन्यासो की हिन्दी में वहुत वडी कमी है। राधाकृष्ण के "सनसनाते सपने" में हास्य निर्जीव है। चरित्र-चित्रण भी अस्वाभाविक हो गया है। परिस्थितियो का निर्माण ठीक नही हो पाया।

उर्दू-लेखक कृष्णचन्द्र का "एक गधे की आत्मकथा" उच्चस्तरीय राजनैतिक व्यग्य-प्रधान उपन्यास है। लेखक ने आधुनिक समाज एव राजनीति के विकृत अगो पर करारी चोट की है। समाज एव राजनीति में फैली भ्रष्टाचारिता एव अराजकता पर गहरे व्यग्य किये गये हैं। आधुनिक फैशन-परस्त नारी समाज की धन लोलुपता, दफ्तरो की लालफीताशाही का भी पर्दाफाश लेखक ने अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। भाषा मुहावरेदार एव प्रसाद- गुण युक्त है। कही कही पर हास्य 'मुहफट' हो गया है यथा गधे का नेहरू जी के यहाँ इटरव्यू को जाना। उनकी वातचीत देखिए—

द्वारा लिखी हुई "हास्य के सिद्धात तथा आधुनिक हास्य साहित्य" भी उल्लेखनीय है। पाश्चात्य विचारको के सिद्धातो के स्पष्ट उद्घाटन की दृष्टि से डा० एम० पी० खत्री का ग्रन्थ "हास्य की रूप रेखा" उच्च कोटि का है। इसमें हास्य के सिद्धातो का विवेचन एव विश्लेषण पाडित्यपूर्ण ढग से हुआ है। हास्य लेखक जी० पी० श्रीवास्तव के सिद्धान्त-विषयक लेखो का तथा भाषणो का सग्रह "हास्य-रस" के नाम से प्रकाशित हुआ है जो उनके हास्य-सम्बन्धी विचारो का द्योतक है। मराठी के विद्वान स्व० न० चि० केलकर के "हास्य आणि विनोद," का हिन्दी रूपान्तर प्रसिद्ध विद्वान श्री रामचन्द्र वर्मा द्वारा "हास्यरस" (द्वि० स०) के नाम से हुआ है। विवेचन की गहराई तथा विश्लेषण की स्पष्टता की दृष्टि से यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट है।

उपसहार

उपरोक्त विवेचन से इतना स्पष्ट है कि हास्य रस सम्बन्धी मौलिक एव अनुवादित ग्रन्थो का सृजन हिन्दी में यथेष्ट मात्रा में हो रहा है। गुण की दृष्टि से भी अब यह निसकोच रूप से कहा जा सकता है कि हम हिन्दी के हास्य-सम्बन्धी कृतियो को किसी भी विदेशी अथवा प्रान्तीय भाषा की हास्य-कृतियो के समुख गौरव के साथ रख सकते हैं।

अनुक्रमणिका

पुस्तक-सूची

लेखक-सूची